Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्ड ज्योति

VOl. 48 1985 No. 7, 11

G.K.V. Lib.
Hardwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 079523

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्ड ज्योति

Vol. 48
No. 7, 11
1985
079523
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार
100
079523
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
१९८५

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ें और पायें

१- आत्मा की आवाज	—	१
२- ईश्वर की प्राप्ति प्रेम से	—	२
३- निखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त एकात्मता	—	३
४- साधना तपश्चर्या का स्वरूप एवं प्रतिफल	—	७
५- आत्मिकी की प्रगति एवं सुनियोजन की आवश्यकता	—	९
६- तृष्णा घटाये बिना न शान्ति न सन्तोष	—	१३
७- समर्पण का सुख	—	१६
८- आरोग्य रक्षा की तीन दीवारें	—	१७
९- भौतिक प्रगति के सुनिश्चित आधार	—	१९
१० जो शरीर के खोखले में प्रखर मस्तिष्क है	—	२२
११- पशु पक्षियों में पारिवारिक भावनाएँ	—	२३
१२- आकांक्षा एवं सामूहिकता की धुरी पर टिका जीवन शकट	—	२५
१३ देव पूजा का स्वरूप और प्रतिफल	—	२८
१४ दृश्य एवं अदृश्य शरीर	—	२९
१५- हमारी प्रसुप्त एवं जागृत अतीन्द्रिय क्षमताएँ	—	३२
१६- उठती आयु के आवेगों का शमन	—	३५
१७- जीवन सम्पदा का सदुपयोग	—	३६
१८- विवेक युक्त दान	—	३७
१९- सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म	—	३८
२०- श्राद्ध का माहात्म्य एवं मुक्ति का दर्शन	—	४१
२१- मरणोत्तर जीवन को नकारा नहीं जा सकता	—	४२
२२- परम सत्ता के सन्देशवाहक देवदूतों के दिव्य दर्शन	—	४४
२३- अन्तर्ग्रही सुविज्ञों का पृथ्वी पर आवागमन	—	४६
२४- जलयानों की प्रेतात्माएँ	—	४८
२५- आस्था की परीक्षा	—	५१
२६- महर्षि अरविन्द का पूर्णयोग	—	५२
२७- ईसा के उपदेश जो भलाई का द्वार खोलते हैं	—	५३
२८- शक्तिपात और उसका आधार	—	५५
२९- हेली धूमकेतु से जुड़ी हुई आशंकाएँ	—	५७
३०- विघातक इरादे बदल भी सकते हैं	—	५९
३१- यदि अणु युद्ध हुआ तो	—	६२
३२- अपनों से अपनी बात	—	६३

जुलाई — १९८५

अङ्क — ७

वर्ष — ४८

वार्षिक चन्दा — २०)

आजीवन — २००)

पता - अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

अखण्ड ज्योति

प्रज्ञायोग — अध्यात्म विज्ञान

४४

वर्ष ४८ | अंक ७ — जुलाई १९८५ — वार्षिक २० | आजीवन २००

आत्मा की आवाज

जब कभी ऐसा आभास हो कि आपको किसी ने आवाज दी है, किन्तु आसपास खोजने पर भी किसी पुकारने वाले का पता न चले तो निश्चित रूप से समझ लीजिए कि वह अपनी ही अन्तरात्मा की पुकार है और उसका एक ही तात्पर्य है कि मुझे खोज, देख और पाने का प्रयत्न कर। ढूँढ़ने का अर्थ है यह खोजना कि हम अपने जीवन लक्ष्य के प्रति ईमानदार हैं या नहीं। यदि नहीं तो जहाँ भूल हो रही है उसे अविलम्ब सुधारा जाय।

वह पुकार जागरूकता के लिए है। उपेक्षा और प्रमाद जो जिस तिस तरह करते रहे हैं, वैसे आगे न करें। जीवन की चौकीदारी की जाय और भीतर तथा बाहर से जिन शत्रुओं के आक्रमण होते रहते हैं, उनकी रोकथाम अविलम्ब की जाय।

इस आवाज का तात्पर्य है बहुमूल्य अवसर धीरे-धीरे हाथ से निकलता चला जा रहा है। क्रम ऐसे ही चलता रहा तो वह सब कुछ गुम हो जायगा, जो देने वाले ने बड़ी उदारतापूर्वक बहुमूल्य रत्न राशि के रूप में किसी विशेष प्रयोजन के लिए दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर की प्राप्ति—प्रेम से

आध्यात्मिक उन्नति की परम अवस्था तथा ईश्वर प्राप्ति की अन्तिम भक्ति-अवस्था प्रेम है भक्ति का स्वरूप भी निस्वार्थ प्रेम ही कहा गया है। इस विषय में कोई विवाद नहीं है कि परमात्मा की प्राप्ति के अन्य सभी साधनों में प्रेम दिव्य एवं सुखद साधन है और उसका प्रत्येक साधन में समावेश होना चाहिये। वस्तु कितनी ही सुन्दर क्यों न हो यदि उसके प्रति आकर्षण का भाव नहीं होगा तो न तो उसकी प्राप्ति का प्रयत्न ही हो सकता है और न उस प्रयत्न में चिरस्थायी ही रहा जा सकता है। प्रेम का विकसित रूप ही आध्यात्मिक गुणों—श्रद्धा-भक्ति विश्वास आदि के रूप में प्रकट होता है पर ईश्वर उपासना में उसे किसी न किसी रूप में प्रकट होना आवश्यक है। इसके बिना उपासना अधूरी है सच्ची भक्ति तो प्रेम ही है प्रेम ही परमात्मा का प्रकट स्वरूप है।

प्रेम ईश्वर प्राप्ति की साधना की वह कसौटी है जिसमें तपकर जीव विशुद्ध बनता है और ब्रह्म में मिलन की स्थिति प्राप्त करता है। जीव और परमात्मा के बीच जो तादात्म्य है वह अपने शुद्ध रूप में प्रेम द्वारा ही प्रकट होता है। प्रेम न होता तो इस पृथ्वी पर लोगों को आध्यात्मिक तत्वों की अनुभूति भी न होती। यह स्थिति प्रारम्भ में आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिये विकलता, विरह के रूप में प्रकट होती है पर जिन्हें स्वाभाविक रूप में वह स्थिति प्राप्त न हो और वे ईश्वर को प्राप्त करना अपने जीवन का उद्देश्य मान गये हों तो उन्हें भी प्रेम का अभ्यास करना पड़ता है। तप, त्याग और सुख की इच्छाओं का दमन कर अन्तःकरण की प्रेम-प्रवृत्ति को जागृत करना पड़ता है।

प्रेम जो मनुष्य का मनुष्य के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है उसे उसकी सत्ता के मूल स्रोत में पहुँचा देता है। जो वस्तु मनुष्य-समाज को धारण किये रखती है, उसके विकास और नैतिक उत्कर्ष में सहायक होती है, वह प्रेम ही है। यदि मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रेम का आदान-प्रदान न रहा होता और मानव जाति की प्रवृत्ति के मूल में प्रेम का प्रेरक भाव न होता तो नैतिक क्षेत्र में उसने कोई भी उन्नति न की होती।

मनुष्य विकास-क्रम में सृष्टि के अन्य जीवों की अपेक्षा बहुत पीछे है। संसार के अन्य प्राणियों में जो नैतिक मर्यादायें देखी जाती हैं वे ईश्वर प्रदत्त होती हैं। यदि उसके जीवन में प्रेम परिचालक न रहा होता तो उसकी सारी नैतिक मर्यादायें भंग हुई होतीं। स्वार्थ या छल-कपट की अधिकता वाले प्रदेशों में आज भी इस सिद्धान्त को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।

प्रेम विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली सत्ता है, उसी के आधार पर मनुष्य-समाज जीवित है यह न होता तो मनुष्य बड़ा दरिद्र एवं अविकसित रहा होता। उसे केवल अपना ही ध्यान रहा होता, अपने ही स्वार्थों की फिक्र रही होती, अपने ही सुख सुहाये होते। न तो उसे समाज-सेवा के लिये प्रोत्साहन मिला होता न व्यक्तिगत जीवन में पराक्रम करने की प्रेरणा मिली होती। प्रेम की शक्ति का साम्राज्य आज सुव्यवस्थित और सुनियोजित विश्व के रूप में देखने को मिल रहा है।

प्रेम के बगैर मनुष्य मुर्दा है। जब मनुष्यों में प्रेम का अभाव होगा तो कोई आकर्षण भी किसी चीज के लिये न होगा और जब आकर्षण न होगा तो क्रिया न होगी, क्रिया न होगी तो यह सारा संसार नीरव, उदासीन, और जड़वत हो जायगा। इसीलिये प्रेम ही जीवन है।

ईश्वर उपासना में इस उद्दात्त भावना का दर्शन संसार के सभी धर्मों में पाया जाता है। भगवान को प्रेम-मय समझ कर प्रेम मार्ग द्वारा उसकी साधना सभी देशों के भक्तों एवं साधकों में देखी जाती है। उपनिषद में भगवान को "मधुब्रह्म" कहा है यह उसका विशुद्ध प्रेममय स्वरूप ही है। परमात्मा प्रेम द्वारा ही मधुर होता है—'मधुक्षरन्तितद्ब्रह्म', जिससे मधु अर्थात् प्रेम प्रकीर्ण होता है वही ब्रह्म है। अपने इसी रूप में वे भक्त के लिये, आराधक के लिये पुत्र, धन आत्मीय स्वजन—इन सबसे बढ़कर प्रियतम हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त एकात्मता

मस्तिष्क और हृदय दो केन्द्र ऐसे हैं जो शरीर के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। यों तो महत्व हर अंग अवयव का है। शरीर परिचालन तथा विभिन्न क्रिया-कलापों में उनकी अपनी-अपनी भूमिकाएँ हैं, पर जो भूमिका मस्तिष्क और हृदय की है, अन्य किसी भी कायिक अंग-प्रत्यंग की नहीं है। मस्तिष्क की सामान्य जानकारी विभिन्न तन्त्रों के ऊपर नियन्त्रण रखने तथा हृदय की रक्त परिवहन में केन्द्रीय भूमिका निभाने के रूप में मिलती है। ये कार्य स्थूल हैं। इनकी सूक्ष्म भूमिकाएँ और भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। सोचने विचारने निर्णय लेने आदि की क्षमता मस्तिष्क में ही होती है। हृदय से भाव सम्वेदनाएँ निसृत होती हैं बाह्य जगत से आदान-प्रदान का क्रम भी इन्हीं दो केन्द्रों के माध्यम से चलता है। ये स्वयं भी बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित होते तथा दूसरों को भी अपनी स्थिति के अनुरूप प्रभावित करते हैं। अत्याधिक सम्वेदनशील होने के कारण इनकी स्थिति में समय-समय पर परिवर्त्तन होते रहते हैं, जिसकी प्रतिक्रियाएँ व्यक्ति एवं वातावरण पर दिखाई पड़ती हैं। समूचे शरीर में क्या परिवर्तन हो रहे हैं, उसकी सूक्ष्म जानकारी इन दो मर्मस्पर्शी केन्द्रों की स्थिति से मिल जाती है। विचारणा के स्तर तथा अनुभूतियों की अभि-व्यक्ति के आधार पर उसका परिचय आसानी से मिल जाता है।

सौर मण्डल शरीर की तरह ही एक विराट् शरीर है। ब्रह्माण्ड में ऐसे अगणित विराट् घटक क्रियाशील हैं, उनकी संख्या एवं स्वरूप की सही-सही जानकारी किसी को भी नहीं है। अपने सौर-मण्डल में नौ ग्रह हैं। उल्टी कक्षा में घूमने वाले एक अन्य ग्रह का भी प्रमाण मिला है जिसे दसवाँ ग्रह समझा जा रहा है। मंगल, पृथ्वी, वृहस्पति, बुध, शनि, शुक्र, प्लेटो, नैप्च्यून, यूरेनस के अतिरिक्त दसवाँ ग्रह भी उस परिवार में सम्मिलित हो गया है। ये सभी सूर्य के चारों ओर परि-क्रमा करते हैं। हर ग्रह के एकानेक उपग्रह हैं। अपनी पृथ्वी का चन्द्रमा है। सौर-मण्डल के हर घटक परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। पृथ्वी का निज का जितना वैभव है उससे अनेक गुना दूसरे घटकों के अनुदानों से मिला है। गर्मी, प्रकाश, वर्षा आदि अनुदान तो प्रत्यक्ष दीखते हैं पर सूक्ष्म दिखायी नहीं पड़ते। सूक्ष्म आदान-प्रदान के अतिसम्वेदी केन्द्रों का परिचय पृथ्वी के ध्रुव केन्द्रों के रूप में मिला है। उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव के रूप में दो गह्वर पर अवस्थित इन केन्द्रों के अतिरिक्त भूगर्भ में एक हृदय संस्थान भी है। पृथ्वी का घोर ताप युक्त यह हृदय केन्द्र अत्यन्त विशाल है। इसकी त्रिज्या २१०० मील है। इस भाग को 'बेरी स्फियर' कहते हैं।

भूगर्भ विज्ञान के अनुसार पृथ्वी गोल है। केवल ध्रुवीय क्षेत्रों में कुछ पिचकी हुई है। भूमध्य रेखा क्षेत्र में कुछ उभरी हुई है। पृथ्वी का व्यास ७६०० मील है। पर्वतों की सर्वोच्च चोटी प्रायः ५॥ ऊँची और समुद्र की अधिकतम गहराई ७ मील है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि ऊर्जा प्रदान करने वाले सौरमण्डल का अब अन्त समीप आ गया। काल गणना करने वालों का मत है कि सूर्य का किशोर काल अतीत हो गया है। प्रौढ़ावस्था अभी चल रही है। यह उसकी ढलती उम्र है जो उसे क्रमशः मरण की दिशा में घसीटे लिये जा रही है। जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं वह शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सूर्य की पतिव्रता पत्नी है वह उसी की कमाई खाती है। सुरक्षा के लिये उसी पर आश्रित है और पति के मरण पर साथ सती होने के लिये समुद्यत है। अस्तु सूर्य के मरण का सीधा सम्बन्ध अपनी पृथ्वी के साथ होते और उसके अंचल में पलने वाले हम सब मनुष्यों का भाग्य भी इन अभिभावकों की स्थिति पर अवलम्बित है।

पृथ्वी के अन्य भागों की अपेक्षा ध्रुवों की परिस्थितियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असामान्य हैं। ऐसा माना जाता है कि अन्तर्ग्रही विशिष्ट अनुदान इन्हीं केन्द्रों से अवतरित होकर समस्त भू-मण्डल पर वितरित होते हैं तथा विजातीय द्रव्य दक्षिणी ध्रुव के माध्यम से अन्तरिक्ष में फेंक दिये जाते हैं, एवं यह मान्यता पूर्णतः विज्ञान सम्मत भी है।

इन ध्रुव प्रदेशों पर दुर्लभ मनोरम दृश्य दिखाई पड़ते हैं। उत्तरी ध्रुव पर छाया रहने वाला सुविस्तृत तेजोवलय 'अरोरा बोरिएलिस' अपनी अद्भुत आभा से हर किसी का मन मोह लेता है। "दि नेशनल एरोनाटिक्स एण्ड स्पेश एडमिनिस्ट्रेशन" (नासा) द्वारा छोड़े गये डायनामिक्स एक्सप्लोरेटर सेटेलाइट से अनेकों हाई रिजोल्यूशन फोटोग्राफ्स लिए गये। उससे आश्चर्यजनक जानकारियाँ मिलीं। अध्ययन-अन्वेषण में लगे वैज्ञानिकों का मत है कि अन्तरिक्ष से आने वाले सब एटोमिक पार्टिकल्स पृथ्वी के विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र में प्रवेश करके आवेशित हो जाते हैं तथा ध्रुव केन्द्रों पर ध्रुव प्रभा के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। ध्रुव प्रभा का क्षेत्र विस्तार ४००० कि० मी० व्यास है। इसकी किरणों की पट्टियाँ जो ध्रुव केन्द्र को आवृत्त किये होती हैं, उनकी चौड़ाई १००० कि० मी० हुआ करती है। यह प्रभा मण्डल जमीन से १०० कि० मी० ऊपर चमकता है तथा उसके स्वयं की ऊँचाई दस से लेकर सैकड़ों किलो मीटर तक होती है। दिन में चर्म चक्षुओं से आरोरा को देखने में कठिनाई होती है पर रात को वह स्पष्ट दिखाई पड़ता है। दिन और रात के आरोरा में विशेष अन्तर भी पाया जाता है। सूर्य किरणों के आड़े-तिरछे पड़ने से उसका रूप, रंग बदलता रहता है। उसे शक्तिशाली कैमरों से ही देखा और उनका फोटो लिया जा सकता है।

यूनाइटेड स्टेट्स के उत्तरी क्षेत्र के आकाश मार्ग से ध्रुवीय ज्योति को सैनफ्रेंसिसको, मेमफिस तथा एटलान्टा के दक्षिण छोर पर रंग-बिरंगे रूप में देखा जा सकता है। ५३ डिग्री अक्षांश पर तो मध्य रात्रियों में उसके दर्शन किए जा सकते हैं। वैज्ञानिकों का अभिमत है कि ध्रुवीय ज्योति का प्रकाश हाइड्रोजन आयन अथवा प्रोटोन के प्रवाह से उत्पन्न होता है जो सूर्य से १५०० मील प्रति सैकण्ड की गति से फेंका जाता है। प्रकाश कण प्रोटान्स इलेक्ट्रान्स को भी साथ खींच कर लिये चलते हैं जिनका कुछ अंश पृथ्वी तक पहुँचता है जहाँ का चुम्बकीय क्षेत्र इलेक्ट्रानों तथा प्रोटानों को अलग कर देता है। प्रोटानों का जल अंश पृथ्वी के वायुमण्डल से स्पर्श करता है तो ध्रुवीय ज्योति (आरोरा) के रूप में प्रकट होता है। इसका यथार्थ स्वरूप तथा भूमिका अविज्ञात हुए भी सम्भावना व्यक्त की गई है कि धरती पर अन्तर्ग्रही अनुदानों की वर्षा का यह स्थूल प्रकटीकरण है।

अलेक्जेण्डर मार्शक ने सघन अन्तरिक्ष में प्रकाश के रूप में भी, शब्दों के रूप में भी सौर-मण्डल तथा मन्दाकिनी आकाश गंगा से आने वाले शक्ति प्रवाहों को सुना है। उसका यन्त्र अंकन किया है। यह आवाज क्रमबद्ध संगीत एवं स्वर लहरियों की तरह है। यों कान से वे ध्वनि मात्र सुनाई पड़ती हैं उनका कोई विशेष महत्व समझ में नहीं आता पर खगोल विद्या की नवीनतम शोधें यह स्पष्ट करती चली जा रही हैं कि यह शब्द प्रवाह भी सूर्य से ध्रुव प्रदेशों पर बरसने वाले गति प्रवाहों की तरह ही अतीव सामर्थ्यवान है और उनके द्वारा प्राणियों के शरीर तथा मन पर ऐसा प्रबल प्रभाव पड़ता है जैसा व्यक्तिगत प्रयत्नों से बहुत परिश्रम करने पर भी सम्भव नहीं, यह प्रभाव भले और बुरे दोनों ही स्तर का हो सकता है।

इस सबके बावजूद यह तथ्य भुलाया नहीं जा सकता कि पृथ्वी को सूर्य से ही सर्वाधिक अनुदान मिलते हैं और वह उसकी स्थिति, गति एवं परिवर्त्तनों से प्रभावित भी होती है। उन प्रभावों को इन ध्रुवों पर अध्ययन कर सकना अधिक सुगम है। ध्रुवीय ज्योति का सूर्य कलंकों से भी घना सम्बन्ध है। जब सूर्य की प्रकृति शान्त रहती है तब ध्रुवीय ज्योति मन्द दिखाई पड़ती है पर उग्र होने पर उस ज्योति का दर्शन दिन और रात को अधिक समय तक किया जा सकता है।

स्पेस क्राफ्ट से किये गये निरीक्षणों के अनुसार सोलर विण्ड की धारायें सूर्य के विषुवत् वृत्त से उत्तर एवं दक्षिण की ओर क्रमशः फैलते-उतरते हुए उत्तरी-दक्षिणी ध्रुव तक जा पहुँचती हैं। सोलर विण्ड की गति जब तीव्र रहती है तो सूर्य के उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोलर होल्स अधिक चौड़े रहते हैं। जिसके कारण ध्रुव प्रदेशों में सोलर विण्ड की धारा अत्यन्त तेज पाई जाती है। जब उनकी गति कम होती है तो ध्रुव प्रदेशों में भी उस प्रवाह की गति कम दिखाई पड़ती है।

न केवल अन्तर्ग्रहीय प्रभावों को इन ध्रुव केन्द्रों पर देखा जा सकता है बल्कि पृथ्वी एवं उसके वातावरण में हुए हेर-फेर का भी प्रभाव वहाँ देखना सम्भव है। विगत दिनों यह आश्चर्यजनक तथ्य विदित हुआ है कि पृथ्वी पर होने वाले नाभिकीय परीक्षणों से होकर विकिरण दक्षिणी ध्रुव तक न जाने कैसे और क्यों पहुँच जाते हैं। खतरनाक विकिरणों की एवं उत्तरी ध्रुव के प्रदूषण की बड़ी मात्रा दक्षिणी ध्रुव के किनारे एकत्रित होती चली जा रही है।

इन ध्रुवों के सम्बन्ध में जैसे-जैसे विस्तृत जानकारियाँ मिलती जा रही हैं, इनकी विलक्षणता वैज्ञानिक समुदाय को हतप्रभ तो करती ही है, नवीन अन्वेषणों के लिए उत्साहित भी करती है।

उत्तरी ध्रुव एक गड्ढा है तो दक्षिणी ध्रुव गुमड़ा। उत्तरी ध्रुव की बर्फ दक्षिणी ध्रुव से अधिक गर्म होती है जल्दी गलने और जल्दी जमने वाली भी होती है। दक्षिणी ध्रुव उजाड़ क्षेत्र है यहाँ कुछ पक्षी जलचरों के अतिरिक्त एक पंखहीन मच्छर भी पाया जाता है। वह क्या खाकर जीता है और कैसे इतनी भयंकर शीत में जीवन धारण किये रहता है। वैज्ञानिक इस प्रश्न का आज तक समाधान नहीं कर सके।

उत्तरी ध्रुव में जीवन का बाहुल्य है पौधों तथा जन्तुओं की संख्या करोड़ों तक पहुँचती है। यहाँ दिन और रात समान नहीं होते, ६-६ माह के भी नहीं होते—कई बार रात ८० दिन के बराबर होती है। यह सबसे लम्बी रात होती है। क्षितिज के बीच सूर्य वर्ष में १६ दिन रहता है। यहाँ चन्द्रमा इतनी तेजी से चमकता है कि उसके प्रकाश में, दिन में सूर्य की रोशनी के समान ही काम किया जा सकता है।

कुछ मेरुप्रकाश विस्तृत और आकृति हीन होते हैं कुछ सजीव और हलचल करते हुए। कभी वे किरणों की लम्बाई के रूप में जान पड़ते हैं कभी प्रभा और ज्वाला के रूप में, कभी वह दृश्य बदलता हुआ, कभी चाप, पट्टी और कोरोना के रूप में होता है तो कभी प्रकाश गुच्छे सर्चलाइट के समान। यहाँ रात भर तरह-तरह के दृश्य बदलते हैं। हर दृश्य और परिवर्तन सूर्य की अपनी आन्तरिक हलचल का प्रतीक है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष अनुसन्धान के दौरान आया और उस के विलक्षण आकार-प्रकार देखने में आये। स्मरण रहे भू-भौतिक वर्ष सूर्य के ११ वर्षीय चक्र के दौरान मनाया जाता रहा है इस अवधि में सूर्य की आन्तरिक हलचल बहुत बढ़ जाती है, यह प्रकाश मुख्यतः चुम्बकीय तूफान होता है जो पृथ्वी की सारी यान्त्रिक क्रिया में क्रान्ति उत्पन्न करके रख देता है।

मार्च तथा सितम्बर में (चैत्र तथा क्वार) जब कि पृथ्वी का अक्ष सूर्य के साथ उचित कोण पर होता है मेरुप्रकाश अधिक मात्रा में पृथ्वी पर पड़ता है जबकि अन्य समय गलत दिशा के कारण प्रकाश लौटकर ब्रह्माण्ड में चला जाता है। यही वह अवधि होती है जब पृथ्वी में फूल-फलों की वृद्धि और ऋतुपरिवर्तन होता है। पूरी पृथ्वी पर पलने वाले जीवधारी एवं वृक्ष वनस्पति अपना ऊर्जा अनुदान सूर्य के साथ बदलती स्थिति के अनुरूप पाते रहते हैं। उनके जीवन का प्राणाधार यही सूर्य है जो स्वयं किसी महासूर्य से संचालित होता है। इस महासूर्य को परब्रह्म का प्रतीक रूप या महापिण्ड भी कह सकते हैं।

उत्तरी ध्रुव की तरह दक्षिणी ध्रुव में भी ध्रुव प्रभा के दर्शन होते हैं। उत्तरी ध्रुव से उसकी भिन्नता होने के कारण वैज्ञानिकों ने उसका नाम 'आरोरा आस्ट्रेलिस' दिया है। दिन यहाँ भी बहुत ही लम्बे होते हैं। जिन अन्वेषी दलों ने वहाँ की परिस्थितियों का अध्ययन किया है उनका कहना है कि कई दिनों तक रात्रि के दर्शन नहीं हो सके। आकाश में रंग-बिरंगे गैसों के बादल मँडराते रहते हैं। तापक्रम शून्य से भी कई डिग्री नीचे बारहों माह तक बना रहता है। सदा बर्फ की मोटी परत जमी रहती है। सफेद भालू, पेन्गुइन पक्षी तथा मछलियाँ इस भयंकर शीत में भी जीवित रहते हैं। अनुसंधान कर्त्ताओं का मत है कि उत्तरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिणी ध्रुव पर दीखने वाला प्रभा मण्डल का अन्तर्ग्रहीय परिस्थितियों के आदान-प्रदान से गहरा सम्बन्ध है जिसकी यथार्थ जानकारी तो उपलब्ध नहीं हो सकी है, पर अगले दिनों मिलने की सम्भावना है। ये ध्रुव स्थिर भी नहीं है। मान्यता यही है कि कालान्तर में ये अपना स्थान बदलें, क्योंकि ये पहले भी ऐसा करते रहे हैं।

कुछ भी हो ध्रुवी सम्बन्धी यह विवेचन व्यष्टि एवं समष्टि के मध्य वर्ती सम्बन्धों को स्पष्ट करत है एवं ब्रह्माण्ड सम्बन्धी ऐसे अनेकों रहस्यों का उद्घाटन करता है जो प्रगति की चरम सीमा पर पहुँचे हुए विज्ञान को विलक्षण अद्भुत लगती है।

वस्तुतः आत्मिकी का यह मत है कि सारा विश्व ब्रह्माण्ड ही एक है। समग्र विश्व की चेतना का अधिष्ठाता विश्वात्मा है। बिखरी हुई आत्माएँ इसी के छोटे-छोटे घटक हैं। जब तक यह इकाइयाँ परस्पर मिलकर रहती हैं और एक दूसरे के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हैं तभी तक दृश्यमान सौन्दर्य का अस्तित्व है यदि इनका विघटन होने लगे तो केवल धूलि मात्र ही इस संसार में शेष रह जायगी विश्व मानव की विश्वात्मा यदि अपनी समग्र चेतना से विघटित होकर संकीर्ण स्वार्थपरता में बिखरने लगे तो समझना चाहिए विश्व सौन्दर्य की समाप्ति का समय निकट आ गया।

डा० फ्रिटजॉफ काप्रा जिन्होंने "ताओ ऑफ फिजीक्स" व "टर्निंग पॉइन्ट" जैसी प्रसिद्ध पुस्तकें लिखी हैं। स्वीकार करते हैं कि परमाणु का प्रत्येक घटक विश्व ब्रह्माण्ड का परिपूर्ण घटक है अर्थात प्रत्येक अणु में ब्रह्माण्ड सत्ता ओत-प्रोत है। अणु में ही विराट् ब्रह्माण्ड के दर्शन किये जा सकते हैं। यह पारस्परिक सम्बन्ध इतने प्रगाढ़ हैं कि इन्हें कभी निरस्त नहीं किया जा सकता। जहाँ इस तरह का प्रयास होता है, वहाँ भयंकर दुष्परिणाम उपस्थित हो उठते हैं।

परामनोविज्ञान की नवीनतम शोधें भी इसी निष्कर्ष पर पहुँची हैं कि मनुष्य चेतना ब्रह्माण्ड चेतना की अविच्छिन्न इकाई है। अस्तु प्राण सत्ता शरीर में सीमित रहते हुए भी असीम के साथ अपना सम्बन्ध बनाये हुए हैं। व्यष्टि और समष्टि के मूल सत्ता में इतनी सघन एकता है कि एक व्यक्ति समूची ब्रह्म चेतना का प्रतिनिधित्व कर सकता है। इस सम्बन्ध में विज्ञान की दृष्टि भी उदार बनती जा रही है अब विज्ञान अपनी भाषा में परब्रह्म को, परमात्मा को 'ब्रह्माण्डीय चेतना' के रूप में स्वीकार करने लगा है और उसका घनिष्ठ सम्बन्ध जीव चेतना के साथ जोड़ने में उसे विशेष संकोच नहीं रह गया है। यह मान्यता जीव और ब्रह्म अंश और अंशी के रूप में मानने की वेदान्त व्याख्या से बहुत भिन्न नहीं है। ★

वानप्रस्थ का अर्थ पलायन नहीं है। इसमें जीवन में जहाँ साधना, स्वाध्याय, संयम, सेवा में निरत रहने का अनुशासन है, वहाँ एक अनुबन्ध यह भी है कि वन क्षेत्र में रहा जाय। आरण्यक ही उस उच्चस्तरीय जीवनचर्या के लिए उपयुक्त स्थान हो सकते हैं। घिचपिच बसे, कोलाहल भरे नगरों और गन्दे गली-कूचों में ऐसा वातावरण होता है जिसमें आध्यात्मिकता पनपती नहीं। उस घुटन भरी विषाक्तता में उच्चस्तरीय भावनाएँ पनपने नहीं पाती और किया हुआ स्वाध्याय तथा सुना हुआ सत्संग निरर्थक चला जाता है। वातावरण की श्रेष्ठता कई कारणों पर अवलम्बित है। उनमें से एक तो अनिवार्य ही है और वह है पेड़-पौधों की सघनता और निकटता। वानप्रस्थ का शब्दार्थ है—वनप्रदेश में निवास व्यवस्था। ऊँचे विचार ऐसे ही क्षेत्रों में पनपते और फूलते-फलते हैं। इसलिए ऋषि आरण्यक एवं आश्रम वन-क्षेत्रों में होते पाये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना-तपश्चर्या का स्वरूप एवं प्रतिफल

मुक्ति पथ पर चलना कहाँ से आरम्भ किया जाय और कौन से विरामों पर ठहरते हुए लक्ष्य तक पहुँचने की मंजिल कैसे पूरी की जाय, इसका एक सुनिश्चित मार्गदर्शन गीताकार ने इस प्रकार किया है।

विषयाविनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोप्यस, परं दृष्ट्वा निवर्त्तते॥

विषय भव बंधन हैं। जीवात्मा को वे ही बाँधते हैं। इन विषयों से छुटकारा प्राप्त करने की पहली मंजिल है उपवास। उपवास का अर्थ यहाँ शत प्रतिशत अन्न जल का परित्याग नहीं वरन् आहार पर नियन्त्रण है। नियन्त्रण अर्थात् मात्रा में कमी। साथ ही स्वाद का परित्याग। सामान्य एवं सात्विक स्वाद प्रत्येक खाद्य पदार्थ में होता है। उसी में सन्तोष किया जाय। ऊपर से जो नमक मिर्च आदि मसाले मिलाये जाते हैं और शक्कर का सम्मिश्रण किया जाता है, उन्हें छोड़ा जाय। मसाले एवं शक्कर की भरमार से भोजन स्वादिष्ट तो हो जाता है पर जीभ के चटोरेपन का पोषण होने से वह अनावश्यक मात्रा में खा लिया जाता है। इसका सीधा परिणाम अपच होता है। अपच का अर्थ है पेट में खाद्य पदार्थ का सड़ना। सड़न विष उत्पन्न करती है जो रक्त के साथ मिलकर अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति करता है। तले हुए, भुने हुए, चिकनाई से सने हुए मिष्ठान्न पकवान हर कोई अधिक मात्रा में खा जाता है। एक तो मात्रा की अधिकता, दूसरे मसाले, चिकनाई, मिठाई जैसे गरिष्ठ पदार्थों का मिलना भोजन को तमोगुणी बना देता है। वे पाचन में भारी होने के कारण पाचन तन्त्र को खराब करते हैं और उनका परिणाम स्वास्थ्य के लिए अहितकर होता है।

आहार का मन से सीधा सम्बन्ध है। "जैसा खाये अन्न—वैसा बने मन" की उक्ति तथ्यों पर आधारित है। गरिष्ठ भोजन मन को विकारग्रस्त बनाता है। उससे अन्य इन्द्रियों की लिप्सा भड़कती है। मन विषय विकारों से ग्रसित होता है। इसलिए साधना का प्रथम चरण आहार संयम से आरम्भ होता है। व्रतों की व्याख्या करते हुए अस्वाद को प्रथम व्रत बताया गया है। गांधी जी ने सप्त महाव्रतों की गणना करते हुए अस्वाद को प्रथम व्रत बताया है। इसमें आहार संयम ही नहीं इन्द्रिय निग्रह का भी समावेश है। जो स्वादेन्द्रिय पर काबू कर लेगा उसके लिए ब्रह्मचर्य व्रत की साधना सरल है। चटोरा व्यक्ति जिह्वा को अनियन्त्रित करने के उपरान्त कामुकता का भी शिकार होता है। उसके मन में कामुक अनियन्त्रण घूमता रहता है, जो समयानुसार फलित होकर ब्रह्मचर्य भंग एवं व्यभिचार जन्य क्रिया-कलापों तक जा पहुँचता है।

भारतीय धर्मशास्त्रों में व्रतों का सुविस्तृत वर्णन है। आये दिन उपवासों के विधान हैं। उनके अनेक माहात्म्य भी बताये गये हैं। उन अलंकारिक प्रतिफलों में अत्युक्ति हो सकती है किन्तु इतना सर्वथा सत्य है कि आहार संयम हर दृष्टि से उत्तम है। उससे शारीरिक और मानसिक दोनों ही स्वास्थ्य संभलते हैं।

शरीर से मन बनता है। जीभ का चटोरापन सीधे कामुकता को भड़काता है। यह मनोविकार अकेला नहीं है। इनकी एक पूरी सेना है। जहाँ एक चलता है वहाँ साथी संगतों की पूरी बरात चल पड़ती है। वासना, तृष्णा और अहन्ता का एक समुदाय है। लोभ, मोह, और क्रोध का एक समूह है। यह सब आपस में गुँथे हुए हैं। एक के साथ दूसरा चलता है। जहाँ वासना भड़केगी वहाँ तृष्णा भी पीछे न रहेगी। लोभ-लालच में मन भटकेगा। सम्पदा की ओर मन ललचाएगा कि उसे जैसे बने संग्रह किया जाय। उचित रीति से उपार्जन थोड़ा ही हो सकता है। बहुत संग्रह करके अहङ्कार की पूर्ति-कुटुम्बियों को विलासी बनाने का मोह बढ़ाती है और उस संग्रह के लिए ईमानदारी से काम नहीं चलता। बेईमानी का आश्रय लेना पड़ता है। और लोभ मात्र व्यवसाय में बेईमानी करने तक सीमित नहीं रहता वरन् चोरी, ठगी, झूठ, हत्या जैसे अनेकों छोटे-बड़े कुकर्मों में रस आने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उगता है। उन्हें करने में भय लज्जा संकोच का अनुभव नहीं होता वरन् रस आने लगता है। रस की कोई सीमा नहीं, वह अमुक सीमा तक पहुँचकर तृप्त कर सके, ऐसा भी तो नहीं होगा। जीभ से आरम्भ हुआ रसास्वादन सभी इन्द्रियों को चटोरी बनाता है और फिर मन की ललक लिप्साएँ भड़कने लगती हैं। फुलझड़ी में माचिस लगाने के उपरान्त एक के बाद दूसरी चिनगारी छूटने लगती है और फिर ऐसा तमाशा बनता है कि पूरे खेल का सफाया करने के उपरान्त ही समाप्त होता है। अवांछनीयता का रस जीभ के चटोरेपन से आरम्भ होकर जहाँ तक जगह मिलती है वहाँ तक बढ़ता ही जाता है।

व्रत उपवास का प्रथम उपाय वह है जिससे मनुष्य अन्यान्य संयम की ओर बढ़ता है। संयम को ही तप कहते हैं। इन्द्रिय संयम के बाद अर्थ संयम, समय संयम, विचार संयम का क्रम है। संयमी तपस्वी कहलाता है। स्वल्प सीमित में अपना काम चलाने की विवेक बुद्धि जिसमें जगती है उसमें साथ ही इतनी उदारता दूरदर्शिता भी जगती है कि बचत को परमार्थ प्रयोजनों में लगाता रह सके। मनुष्य यदि आलसी, प्रमादी न हो, पराक्रम पुरुषार्थी हो तो स्वभावतः उसके पास धन ही नहीं, समय, श्रम से लेकर प्रतिभा पराक्रम तक ढेरों साधन बच जाते हैं। तपश्चर्या के साथ में जमी हुई उदारता उसे सत्प्रयोजनों में लगाने की प्रेरणा भरती है। संयमी की विवेकशीलता उदारता के साथ-साथ दानशीलता की ऐसी प्रेरणा भरती है जो चरितार्थ हुए बिना रुकती ही नहीं। चैन से बैठने ही नहीं देती।

यह निराहार रहने के व्रत उपवास की साधना करने के प्रतिफल हैं। जिसने इतनी मंजिल पार कर ली उसकी "परापश्य" परा प्रज्ञा जागृत होती है और परमात्मा को देख सकने वाला तीसरा नेत्र---ज्ञानचक्षु खुलता है। फलस्वरूप वह दीख पड़ता है जिसकी ओर से विषम परायणों की आँखें बन्द रहती हैं।

व्रत उपवासों का प्रथम पाठ साधना क्षेत्र में सर्वप्रथम पढ़ाया जाता है। पूजा-पाठ, जप, तप, देव-दर्शन, नदी सरोवर स्नान आदि की शिक्षा इसके बाद की है। संयम प्रथम, उपासना पश्चात्। संयम के बाद उपासना नहीं उदारता का दूसरा चरण आता है। न्यूनतम में निर्वाह। सादा जीवन उच्च विचार का अवलम्बन्। इतना कर गुजरने पर स्वल्प में निर्वाह करने वाला अपने साधनों की बचत करेगा ही और जहाँ उदारता तथा बचत का संयोग है वहाँ परमार्थ के लिए दान की उत्कण्ठा उठे बिना रह नहीं सकती। जो संयमी है, जो उदार है, जो मितव्ययी है, साथ ही जो पुरुषार्थ परायण है वह अपने साधनों का पुण्य परमार्थ में नियोजन करता ही रहेगा।

उपरोक्त दो चरण पूरे करने के उपरान्त वह भावना जग पड़ती है जिसके सहारे उपासना सम्भव है। ऐसे व्यक्ति थोड़ा कर्मकाण्ड करने पर भी विशालकाय पूजा-पाठ कर लेने का फल प्राप्त कर लेते हैं। इसके विपरीत जो केवल भजन पूजन की लकीर को पीटते रहते हैं, किन्तु गुण, कर्म, स्वभाव को उत्कृष्ट बनाने वाली संयम साधना से दूर रहते हैं, असंयमी जीवन जीते हैं। काम, क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर के भूत-प्रेत साथ लिए फिरते हैं। मात्र नाम उच्चारण अथवा कर्मकाण्डों के क्रिया-कलाप से, पूजा-पत्री के उपहार उपचार भेंट करने से परमात्मा को प्राप्त करने के स्वप्न देखते रहते हैं, उन्हें निराश ही रहना पड़ता है। हमें पहले वर्णमाला पढ़नी चाहिए। बीजगणित, रेखागणित का कार्य बाद में हाथ में लेना चाहिए। तपश्चर्या, उदारता के उपरान्त ही उपासना अपनाने की सार्थकता है।

एक बूँद बड़ी अहंकारिणी थी समुद्र में अपनी सत्ता का विलय अच्छा न लगा। वह अपनी अहन्ता और पृथकता बनाये रखना चाहती थी। नदियों ने इस आग्रह से विरत भी करना चाहा पर वह मानी नहीं। अलग ही बनी रही। कड़ाके की धूप निकली और वह भाप बनकर हवा में उड़ गई। बादलों के साथ मिलना उसे फिर भी पसन्द नहीं आया। रात हुई और वह पत्ते पर ओस बनकर अलग-थलग पड़ी रही। धूप रोज निकलती, उसे ऊपर उठाती, पर उसे नीचे ही गिरना पसन्द जो था। सर्प ने उस ओस को चाटा और विष में बदल दिया। जो न समुद्र बनते हैं, न बादल तो विष बूँद बनकर रहना ही पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भौतिकी की प्रगति एवं सुनियोजन की आवश्यकता

विज्ञान, भौतिक जगत की एक महती शक्ति है। प्रकृति के भण्डार में असीम प्रयोजनों में काम आने वाली अगणित क्षमताएँ भरी पड़ी हैं। उनमें से क्रमशः प्रयत्न पूर्वक मनुष्य के हाथों कितनी ही सामर्थ्यें लगती चली गई हैं। अग्नि का, कृषि, पशु पालन, धातुओं के उपकरण बनाने का, पहिये के निर्माण का सिद्धान्त प्रगति के आरम्भिक दिनों में हस्तगत हुआ। तब का मनुष्य इतने भर से भौतिक जीवन में असाधारण सुविधाएँ हस्तगत करता गया। यह लोभ आगे भी संवरण न हो सका। एक के बाद एक खोज करते हुए वह विद्युत ही नहीं, अणु शक्ति और लेसर किरणों तक का अधिष्ठाता बन गया। यान्त्रिक वाहन, जलयान, नभयान उसने बनाये और मुद्रण कला जैसे अनेकों सुविधा साधन ढूँढ़ निकाले। अब वह अन्तरिक्ष पर अधिकार जमाने के फेर में है। प्रक्षेपणास्त्र उसके हाथ आ गये हैं अनेकों उपग्रह अन्तरिक्ष में विचरण कर रहे हैं। कल कारखानों के सहारे अनेकों सुविधा साधन बनते चले गये हैं। विज्ञान ने मनुष्य के हाथों असीम सामर्थ्य प्रदान की है। इस आधार पर वह सम्पन्न भी हुआ है और बुद्धि बल बढ़ाता प्रगति पथ पर निरन्तर आगे बढ़ा है। यह प्रकृति के रहस्यों को खोजते जाने और उसके ज्ञान के सहारे उपयोगी उपकरण बनाते जाने का ही प्रतिफल है।

इन प्रशंसनीय प्रयासों के साथ एक दुर्भाग्य भी पीछा करता आया है कि मारक और घातक उपकरणों का निर्माण भी कम नहीं हुआ और उपार्जित पूँजी का कम अंश उसमें नहीं लगा। इनके द्वारा करोड़ों को जान गँवानी पड़ी और उनके आश्रित बिलखते रह गये। ऐसे महायुद्ध का प्रतिफल यही तो हो सकता था।

विज्ञान ने सुखोपभोग के जहाँ अनेकों साधन प्रदान किये वहाँ मनुष्य को आलसी प्रमादी भी बनाया। नशे को ही लें। इसने अच्छे-खासों को निकम्मा बनाकर रख दिया। यान्त्रिक उत्पादन ने अमीरों की अमीरी, गरीबों की गरीबी बढ़ाकर दोनों के मध्य खाई चौड़ी करदी। हर हाथ को काम मिलना सम्भव न रहा। बेकारी-बेरोजगारी के कुचक्र में असंख्यों पिसने लगे। वैज्ञानिक प्रगति में मानवी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा तो की जा सकती है, पर उसके द्वारा अपनाये मार्ग को देखते हुए यह भी कहना पड़ता है कि उपलब्धियों का सदुपयोग नहीं हुआ। उससे लाभ थोड़ों को हुआ और हानिकारक दुष्परिणाम असंख्यों को भुगतने पड़े। अभी भी जिस मार्ग पर कदम बढ़ रहे हैं, उन्हें देखते हुए भविष्य और भी अधिक अन्धकारमय दीखता है। स्वसंचालित विशालकाय मशीनें अगणित लोगों को बेरोजगार भूखों मरने के लिए विवश करेंगी। उत्पादन को खपाने के लिए मण्डियों पर अधिकार करने के लिए समर्थों की लिप्सा युद्धोन्माद बढ़ाकर नये-नये युद्ध क्षेत्र रचेंगी। वाहन और कारखाने जो जहरीला धुआँ उगलते रहते हैं, उससे वायु मण्डल विषाक्त हो चला है। कारखानों की गन्दगी, नदी नालों के मारफत समुद्र में पहुँचती है जिससे जल जीवों का ही सफाया नहीं होता, वर्षा भी जहरीली होती है। हवा की तरह पानी भी क्रमशः अधिक जहरीला होता चला जा रहा है। अधिक अन्न उपजाने के लिए रासायनिक खाद और फसल के कीड़े मारने के लिए बनने वाले जहरीले छिड़कावों ने खाद्य-पदार्थों को विषाक्त करना आरम्भ कर दिया है। अणु शक्ति का उपयोग चाहे युद्ध के लिए हो या बिजली बनाने के लिए वह हर हालत में विकिरण उत्पन्न करती है। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रगति जितनी सुविधाएँ उत्पन्न कर रही है उससे कहीं अधिक जीवन संकट उत्पन्न करने वाले दुष्परिणाम भी खड़े कर रही है। मारक औषधियों ने स्वास्थ्य का संरक्षण कम और भक्षण अधिक किया है।

अच्छा होता, वैज्ञानिकों को पैसे के बल पर मुट्ठी में रखकर उनके द्वारा नई शोधें कराने और नये उपकरण बनवाने वाले सत्ताधीश एवं धनाध्यक्ष अपनी बिरादरी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक समर्थ बनाने की अपेक्षा सर्वसाधारण का हित सोचते और ऐसे निर्माण करने, जिससे देहातों में बिखरे अशिक्षित भारत में छोटे-छोटे उपकरणों के सहारे बहुसंख्यक लोगों को उपयोगी उत्पादन में सुविधा मिलती। इस सन्दर्भ में मानवता की एक बड़ी चुनौती विज्ञान के सामने है। उसे एक तो हार्स पावर की बिजली से चल सकने वाली कुटीर उद्योगों के यन्त्र बनाने चाहिए। हवा और पानी की शक्ति से चलने वाले सस्ते बिजली घर बनाने चाहिए। जमीन से ऊपर पानी लाने वाले पम्प, छोटे हल, ट्रैक्टर, करघे, लकड़ी चीरने और लोहा गलाने की भट्टियाँ बना सकना कुछ अधिक कठिन नहीं होना चाहिए। वजन ढोने की हल्की गाड़ियाँ, बैलों पर कम वजन डालने वाले जुए, छोटी पवनचक्कीयाँ, जैसे यन्त्र मनुष्यों का---पशुओं का श्रम हलका कर सकते हैं, साथ ही रोजगार भी देते रह सकते हैं। अन्न के बाद मनुष्य की दूसरी आवश्यकता कपड़े की है। इसके लिए रुई बनाने, कातने-बुनने, धोने, रंगने की छोटी-छोटी मशीनें बन सकती हैं और क्षेत्र में बड़े मिलों की प्रतिद्वन्द्विता रोककर लाखों बेरोजगारों को काम दिया जा सकता है। सरकार ही शिक्षा का सारा भार अपने ऊपर उठाए, यह आवश्यक नहीं। निजी विद्यालय चलाने को भी एक स्वतन्त्र व्यवसाय (प्राइवेट सेक्टर) के रूप में छूट दी जा सकती है। इस प्रकार सरकार जनता, एवं वैज्ञानिक मिलकर देश के लिए एक ऐसा रचनात्मक तन्त्र खड़ा कर सकते हैं जिसमें स्वल्प पूँजी वाले भी अपने लिए तथा दूसरे साथियों के लिए आजिविका, उपार्जन के नये स्रोत खोल सकें। विज्ञान को "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" के क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए और सदा काम आने वाले छोटे यन्त्रों के निर्माण में तत्परतापूर्वक लगना चाहिए। इससे यन्त्र बनाने वाले उद्योगी और उनसे काम लेने वाले प्रयोक्ता सभी का हित साधन हो सकता है। यों अभी कुछ तो यन्त्र बने हैं पर वे बेमन से उपेक्षा पूर्वक बनाये गये हैं, उनकी खामियाँ दूर नहीं की गईं। अन्यथा अम्बर चरखा जैसे उपकरण असफल क्यों होते? इस दिशा में अब नये सिरे से सोचा और सहकारिता के आधार पर कारगर कदम उठाया जाना चाहिए।

बड़े लोग इस दिशा में कम ध्यान दें तो छोटे लोग मिलजुलकर सहकारी स्तर पर बड़ी पूँजी वाले कारखाने खड़े कर सकते हैं। करोड़ों की पूँजी वाले कारखाने, शेयरों में, बैंकों के ऋण से, सरकारी अनुदान से बनकर खड़े हो जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि देहातों में काम आ सकने वाले गृह उद्योगों के लिए आवश्यक उपकरण न बन सकें। शहरों पर आबादी का बढ़ता हुआ दबाव और बढ़ता हुआ गन्दगी का प्रभाव कम करने के लिए कस्बों को विकसित किया जाना चाहिए। सड़कों का जाल इस तरह बिछाया जाना चाहिए कि पास वाले कस्बों तक सस्ते वाहन आसानी से पहुँच सकें। सरकारी कोष में धन कम हो तो वाहनों पर टैक्स लगाकर उसकी पूर्ति उसी प्रकार की जा सकती है जैसे कि नये पुल बनाने पर यातायात टैक्स लगता है। विज्ञान को सब कुछ अमीरों के लिए बड़े पैमाने पर काम करने वाले साधन ही नहीं जुटाने चाहिए वरन् देहातों में चल सकने वाले उपकरण भी बनाने चाहिए। जिससे बेरोजगारी का निराकरण हो सके। कृषि में शाक और सस्ते फल उत्पादन की काफी गुंजायश है। आवश्यकता लगन पूर्वक काम करने भर की है।

यह सुविधा साधन उत्पन्न करने वाले, अर्थ प्रधान उपायों की चर्चा हुई। यह भौतिक विज्ञानियों का और उनके लिए बड़ी पूँजी जुटाने वालों का क्षेत्र हुआ। विज्ञान को इतने क्षेत्र तक ही सीमित नहीं होना चाहिए उसे चेतना क्षेत्र में भी प्रवेश करना चाहिए और व्यक्तित्व निखारने वाले कामों में भी हाथ डालना चाहिए। यह कार्य अध्यात्म विज्ञानियों का है। संसार में पदार्थ क्षेत्र ही सब कुछ नहीं है उसके समतुल्य एवं अधिक महत्वपूर्ण चेतना क्षेत्र भी हैं। मनुष्य को, अन्य प्राणियों का स्वास्थ्य, बुद्धि, प्रतिभा, कला-कौशल व्यवहार, संयम आदि की दृष्टि से अधिकाधिक समुन्नत और सुसंस्कृत बनाना अध्यात्म क्षेत्र के विज्ञानियों-प्रज्ञावान मनीषियों योगी तपस्वियों का काम है। उनका कार्यक्षेत्र भौतिक विज्ञान से भी कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा और अधिक उपयोगी है। पदार्थ विज्ञान सुविधा साधन विनिर्मित कर रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन साधनों का उपयोग जिसको करना है उस मनुष्य का दृष्टिकोण परिष्कृत करना असामान्य काम है। उसने अनेकों कुटेवें अपना ली हैं और ऐसे क्रिया-कलाप अपना लिये हैं जो मात्र व्यक्ति के लिए ही नहीं समूचे समाज के लिए हानिकारक हैं। ढेरों दुष्प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिनसे पीछा छुटना और छुड़ाया जाना चाहिए। ढेरों सत्प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिन्हें अभी अपनाया नहीं गया। अन्यथा सामान्य परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्ति भी महामानव स्तर का बन सकता था। इस सन्दर्भ में प्रयोग करना और उपलब्धियों से साधारण को अभ्यास कराना यह आत्म-वेत्ताओं का मनीषियों का काम है।

मनुष्य का शरीर और मस्तिष्क बहुमूल्य यन्त्र है। उसके अन्तराल में प्रकृति की पदार्थपरक और परब्रह्म की चेतना परक अनेकानेक विभूतियाँ समाविष्ट हैं। वे बीज रूप से प्रसुप्त स्थिति में रहती हैं उन्हें अंकुरित और पल्लवित किया जा सके तो नर के भीतर सोया हुआ नारायण जगाया जा सकता है और पुरुष में पुरुषोत्तम की झांकी देखने को मिल सकती है। इस स्तर के प्रयत्नों को योगाभ्यास एवं तपश्चर्या कहते हैं। साधना भी इसी को कहा जाता है।। पुरातन काल के तत्वदर्शी अपनी काया में सन्निहित उन सूक्ष्म केन्द्रों को समझते थे साथ ही उन्हें प्रखर बनाने की विद्या का प्रयोग करके न केवल अपने को असामान्य बनाते थे वरन् अन्यान्यों को भी इस कौशल से लाभान्वित करते थे। यह गुह्य विद्या है तो भी यथार्थ और प्रचण्ड। जिनमें श्रद्धा हो वे अनुभवी प्रवीण पारंगतों के मार्गदर्शन में यह प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं और अभ्यास की परिणतियों से लाभान्वित हो सकते हैं। पिण्ड में ब्रह्माण्ड का समग्र ढांचा विद्यमान है। बीज से समग्र वृक्ष और शुक्राणु से परिपूर्ण मनुष्य को उदय करने के लिए उस प्रसुप्ति को जागृति में बदलना होगा। यह योगाभ्यास का विषय है। इसे चेतना परक विज्ञान क्षेत्र ही समझना चाहिए। पिछले दिनों यह क्षेत्र पाखण्डियों के हाथों रहा है। अब उसे मनस्वी, तेजस्वी और तपस्वी हाथ में लें। तो विज्ञान के अधूरे भाग की भी पूर्ति हो चले और उस प्रगति से ऐसा लाभ मिले जो भौतिक विज्ञान से भी उपलब्ध नहीं हुआ है।

इन दिनों "ब्रेन वाशिंग" के नाम से जाने-जाने वाले प्रयोग की महती आवश्यकता है। इस क्षेत्र में भौतिक विज्ञानियों ने भी यत्किंचित प्रवेश किया है और विरोधियों को समर्थ बनाने में आंशिक सफलता पाई है। उनकी कल्पना है कि सज्जनों को दुर्जनों के मनों पर आधिपत्य करने के उपरान्त पालतू पशुओं जैसा इच्छानुवर्ती होने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। उनके प्रयोग सफल हुए तो समर्थ नफे में रहेंगे किन्तु मनुष्य का स्वतन्त्र चिन्तन और आत्मबल समाप्त हो जायेगा। अस्तु यह क्षेत्र विशुद्ध रूप से अध्यात्मवादियों का है। उन्हें लोक-कल्याण की दृष्टि से उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व अपनाने के लिए जन-साधारण को प्रशिक्षित करना चाहिए। "ब्रेन वाशिंग" उन्हीं का काम है। इसे हाथ में लेकर वे मनुष्य जाति की महती सेवा साधना कर सकते हैं।

पंच भौतिक मानवी काया के हृदय, फुफ्फुस आदि अवयवों और रक्त-मांस-अस्थि आदि घटकों का स्वरूप और क्रिया-कलाप समझ लिया है। शल्य-क्रिया क्षेत्र में उसने श्रेय भी प्राप्त किया है। मस्तिष्कीय घटकों के स्थान एवं क्रिया-कलाप समझकर इलेक्ट्रोडों द्वारा उस क्षेत्र को वशवर्ती किया जा रहा है।

वस्तुतः मनःक्षेत्र चेतना से जुड़ता है और इसे सम्भालने की जिम्मेदारी तत्वज्ञानियों—अध्यात्मवादियों पर आती है पर उनने गहराई से उतरना छोड़ दिया है। पाखण्ड के सहारे अपनी गाड़ी चला रहे हैं। यह जादू का खेल तभी तक चल सकता है जब तक भारत में अन्ध श्रद्धा वाले अनपढ़ भावुक भक्तजनों का अस्तित्व बना रहेगा। भौतिक विज्ञानियों ने जब अध्यात्म क्षेत्र का मोर्चा खाली देखा तो उसमें भी अपनी टांग अड़ानी आरम्भ कर दी और प्रसन्नता की बात है कि उन्होंने कुछ न कुछ सफलता प्राप्त कर ली है। मैस्मेरिज्म-हिप्नोटिज्म का सिद्धान्त बहुत दिन पहले ही हाथ लग गया था। अब मेटाफिजीक्स एक मान्यता प्राप्त विज्ञान की शाखा है। दूरदर्शन, दूरवर्ती, भविष्य कथन, मन को पढ़ना आदि इसमें नई धाराएं सम्मिलित हो गईं और परामनोविज्ञान, मरणोत्तर जीवन, अतीन्द्रिय क्षमता आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर नया प्रकाश डाला है। फिर सन्देह इस बात का है कि वे अध्यात्म के आत्मा परक अन्तःकरण से सम्बन्धित पक्ष पर अधिक सफलता प्राप्त न कर सकेंगे। क्योंकि उसके लिए चारित्रिक पवित्रता की विशेष रूप से आवश्यकता होती है। जबकि पाश्चात्य विज्ञानी इस सन्दर्भ में काफी पिछड़े हुए होते हैं।

जिन रहस्यों पर अधिक प्रकाश पड़ने की आवश्यकता है उसमें मानवीय विद्युत मस्तिष्कीय घटकों के कम्पन अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ और उनसे निकलने वाले स्रावों पर नियन्त्रण करने की पद्धति मानवी चेतना को प्रभावित करने की दृष्टि से अत्यधिक आवश्यक है। हारमोनों पर नियन्त्रण की तरह ही गुण सूत्रों को इच्छानुरूप प्रवाह दे सकने की बात भी असामान्य है। शरीर में संव्याप्त रासायनिक पदार्थों में हेराफेरी की बात भी है। जीव कोशों और ज्ञान तन्तुओं की सूक्ष्म संरचना को प्रभावित करना, मस्तिष्क की विभिन्न कोशिकाओं के प्रवाह में परिवर्तन करना वह तथ्य है जिनके ऊपर आध्यात्मिक ऋद्धि-सिद्धियों का आधार टिका है।

मनुष्य को हर दृष्टि से समुन्नत स्तर का बनाना है, उसमें देवत्व का अभ्युदय करना है तो इन रहस्यों को समझना ही नहीं वशवर्ती करना भी आवश्यक है। यह कार्य भौतिक यन्त्रों, उपकरणों एवं क्रिया-कलापों से सम्भव नहीं। इसके लिए अध्यात्म क्षेत्र पर अधिकार रख सकने वाले पवित्रता एवं प्रखरता सम्पन्न लोगों की कार्य क्षमता एवं विशिष्ट योग्यता की आवश्यकता पड़ेगी। भौतिक उपलब्धियों के समान ही यदि आत्म विज्ञान अन्तःक्षेत्र की विभूतियों को करतल गत कर सके तो ही समझना चाहिए कि समग्र विज्ञान में प्रवेश पाना सम्भव हुआ। मात्र पदार्थों पर अधिकार करना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जिनके बिना मानवी विशिष्टता अवरुद्ध बनी रहे। बिना सुविधा साधनों के भी काम चल सकता है। आत्मवेत्ता तो विशेष रूप में कम से कम साधनों से काम चलाते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि यह सब इतना आवश्यक नहीं कि इनके बिना व्यक्तित्व को उत्कृष्ट स्तर का न बनाया जा सके और सच्चे अर्थों में विभूतिवान न बना जा सके। भौतिक साधनों की प्राचीन काल में कमी थी। इतनी बहुलता न थी जितनी इन दिनों है तो भी मनुष्य आत्मबल के सहारे सुखी भी रहते थे और समुन्नत एवं सुसंस्कृत भी। इसके विपरीत इन दिनों जिनके पास साधनों की बहुलता है वे भी बहिरंग एवं अन्तरंग क्षेत्र में विपन्न उद्विग्न पाये जाते हैं।

मनुष्य व्यक्तिगत जीवन में उल्लसित विकसित रहें तथा आनन्द से अपरिपूर्ण दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि उभयपक्षीय उपलब्धियाँ हस्तगत करके मनुष्य सच्चे अर्थों में अपनी गरिमा उपलब्ध कर सके। ऐसे व्यक्तित्वों की जितनी बहुलता होगी उतना ही वातावरण सुख-शान्ति से भरा-पूरा होगा और स्वल्प साधनों में भी प्रगति एवं समृद्धि की परिस्थितियों का अनुभव होगा।

ऋषियों ने इतने उच्च स्तर की विभूतियाँ उपलब्ध की थीं, जिन पर आज तो सहसा विश्वास करना कठिन होता है। समूचे समाज को आगे बढ़ाने एवं ऊँचा उठाने की क्षमता जिस प्रवाह एवं वातावरण में है, उसकी उपलब्धि आत्म विज्ञान की प्रगति से ही सम्भव हो सकती है।

न्यूटन की विद्वता ही नहीं नम्रता और सज्जनता भी प्रख्यात थी। एकबार चौकी पर जलती हुई मोमबत्ती को उनके पालतू कुत्ते ने चौंक कर गिरा दिया। शोध सम्बन्धी बहुत ही महत्वपूर्ण कागज उससे जलकर नष्ट हो गये। लौटने पर न्यूटन ने गहरी साँस छोड़ी और कहा--"मूर्ख ! तू कैसे जान पायेगा कि तनिक सी गड़बड़ी करके कितना बड़ा नुकसान कर दिया। पर ईश्वर की कृपा से वह कार्य फिर कर दिखाऊँगा।" यही हुआ भी। वे अपने प्रशंसकों से इतना ही कहते थे—"समुद्र के किनारे बैठकर सीप घोंघे चुनने वाले बालक की तरह मैं ज्ञान के अगाध सागर में से कुछ कंकड़ पत्थर ही चुन पाया।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृष्णा घटाये बिना न शान्ति न सन्तोष

दस इन्द्रियों में जहाँ तक अध्यात्म प्रयोजनों का सम्बन्ध है। वहाँ पाँच ज्ञानेन्द्रियों की चर्चा होती है। इसमें मनोविकार उत्पन्न करने वाली दुरुपयोग करने पर भयानक प्रतिशोध लेने वाली दो ही हैं। स्वादेन्द्रिय और कामेन्द्रिय। शेष तीन नेत्र, कान और नासिका का सम्बन्ध मस्तिष्क के साथ जुड़ा होने और उत्कर्ष में सहायक मात्र रहने के कारण उनका निग्रह करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। सदुपयोग करते रहने भर से सत्प्रयोजनों की सिद्धि होती है। वाणी, कान, नेत्र, यह तीनों ही ज्ञान वृद्धि के काम आते हैं। इनके द्वारा कई साधनाएँ भी सम्भव होती हैं। नासिका से गन्ध बोध रहने से उपयुक्त वातावरण का ज्ञान होता है और प्राणायाम जैसी साधनाएँ सधती हैं। इसलिए उनकी विशेष चर्चा इन पंक्तियों में नहीं की गई है और स्वादेन्द्रिय तथा कामेन्द्रिय के नियन्त्रण को इन्द्रिय निग्रह मान लिया गया है। मन के संयम का प्रारम्भिक एवं प्रत्यक्ष प्रयोजन इतने भर से सध जाता है।

अब मानसिक क्षेत्र की सांसारिक इच्छा आकांक्षाओं में दो चरण तृष्णा और अहंता के आते हैं। इनके आकर्षण ऐसे हैं जो मानसिक क्षमता का अधिकांश भाग अपने घेरे में समेटकर निगलते रहे हैं। जीवन जिन महान प्रयोजनों के लिए मिला है उनमें से एक को भी साधने का अवसर नहीं मिलता। समय, श्रम, चिन्तन, साधन आदि जो कुछ भी उपलब्धियाँ पास में हैं। वे इन्हीं दोनों की ललक लिप्सा में खप जाती हैं। इनके आकर्षण इतने तीव्र होते हैं कि इनसे छूटने की इच्छा तक नहीं होती। फिर उत्कृष्टता के मार्ग पर चलना और चढ़ना बन कैसे पड़े। यह दोनों ही हथकड़ी बेड़ी की तरह बँध जाती हैं। आश्चर्य यह कि यह प्रिय भी लगने लगता है और अवसर होने पर भी छोड़ना तो दूर इनमें कटौती करने तक का मन नहीं होता। तृष्णा और अहंता को ही भव-बन्धन कहा गया है। यह चेतना को जकड़ते हैं। जब कि वासना मात्र शरीर को ही बर्बाद करती है। और उस बर्बादी का एक सीमित दुष्प्रभाव ही अन्तः चेतना पर पड़ता है। उनकी तुलना में तृष्णा और अहंता की क्षति कहीं अधिक है।

तृष्णा का तात्पर्य है वैभव को अधिकाधिक मात्रा में अपने लिए और प्रिय जनों के लिए समेटना। यह विशुद्ध मूर्खता है फिर भी लोग इसे बुद्धिमत्ता एवं सफलता मानकर प्रसन्न होते और शेखी बघारते देखे गये हैं।

मछली पानी में रहती है। जितना उसके उपयोग में आता है वस्तुतः वही उसकी सम्पदा है। समूचे समुद्र को वह अपना माने और उस पर आधिपत्य घोषित करे तो यह उसकी नासमझी है। समुद्र में अगणित जल-जन्तु रहते हैं। वह उन सबकी संयुक्त सम्पत्ति है। अथवा यों कहना चाहिए कि वह भगवान की सम्पदा है, उसमें से जो जितने का उपयोग कर सके उतना ही उसका है। समेटकर अपनी छाती के नीचे दबाना और आधिपत्य घोषित करना निरर्थक है। यह भूल संसार का और कोई प्राणी नहीं करता कि विश्व वैभव में से अपने निज के लिए अधिकाधिक समेटे और उसे अपनी निज की सम्पदा घोषित करे। यह भगवान का तिरस्कार करना और विधि-व्यवस्था में टाँग अड़ाना है। जिस घर को उसके आस-पास की जमीन को हम अपना मानते हैं उसके ऊपर सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक लाखों करोड़ों व्यक्ति अपनी बताते और दावेदारी जताते रहे हैं। वह जमीन एक के हाथ से दूसरे के में जाती रही है। आगे भी प्रलय का दिन आने तक उसके अभी और लाखों करोड़ों मालिक बनने वाले हैं फिर कैसे कहा जाय कि वह किसकी सम्पदा है। जीवन काल में जिससे जितना उपयोग कर लिया बस उतना ही उसका। जो आदमी आता है और साथ में कुछ भी नहीं लाता। और जाते समय भी खाली हाथ जाना पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य आधा सेर आटा खाता और दस गज कपड़ा शरीर पर लपेटता है। यही उसका अपना कहा जा सकता है। भगवान ने संसार में जो वैभव उत्पन्न किया है वह इसलिए है कि सभी जीवधारी उसमें से अपनी-अपनी आवश्यकता पूरी कर सकें। इससे अधिक पर दावेदारी करना अपने और दूसरों के लिए विग्रह खड़ा करना है। अनावश्यक संचय करने पर उससे अनेकों दुर्गुण उत्पन्न होते हैं और दुष्प्रवृत्तियों की आदत पड़ती है। दूसरे ईर्षा करते हैं और अपहरण की घात लगाते हैं। भले ही उसका तरीका खुशामद हो या आक्रमण।

स्मरण रखने योग्य है कि ऊँची दीवार उठाने के लिए दूसरी जगह से गड्ढा खोदना पड़ेगा। एक आदमी सम्पन्न बने तो दूसरों का उतना ही हिस्सा कटेगा और उन्हें उतना ही अभावग्रस्त रहना पड़ेगा। संसार में दौलत उतनी ही है जिससे सबकी काम चलाऊ आवश्यकताएँ पूरी होती चलें। जो अधिक जमा करेगा वह प्रकारान्तर से इस या उसका अभाव ग्रस्त रहने के लिए मजबूर कर रहा होगा। उचित यही है कि औसत देश वासियों जितना ही अपना निर्वाह स्तर बनाया जाय और यदि किसी प्रकार अपने पास अधिक जमा हो गया है तो उसका एक ही उपाय है कि हाथों-हाथ दूसरे जरूरत मन्दों के लिए हस्तान्तरित कर दिया जाय। अथवा उसका कोई ऐसा सार्वजनिक तन्त्र खड़ा कर दिया जाय जिसकी आजीविका उस कार्य में लगे लोगों में वितरित होती रहे कोई एक व्यक्ति या परिवार उस पर अपनी दावेदारी सिद्ध न करे। धनवान बनने के लिए प्रयत्नशीलों को या तो अपराधी प्रवृत्तियाँ अपनानी पड़ती हैं या फिर निष्ठुरता धारण करके अपने विलास अपव्यय में उस संग्रह को उड़ाना बखेरना पड़ता है। इसी जंजाल में फँसने का नाम तृष्णा है। तृष्णा एक कुटेव है जो आवश्यकता न होने पर भी संग्रह की ललक उत्पन्न करती है। इसके दोनों ही पक्ष कीचड़ में सने हुए हैं। अधिक कमाने में अपराधी प्रवृत्ति का अवलम्बन। अधिक उड़ाने बखेरने या जमा करने में दुष्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन। तृष्णा इन्हीं दोनों कुचक्रों में फँसाती है। साथ ही अपने समय, श्रम, चिन्तन एवं कौशल को इसी फेर में लगाए रहने के लिए बाधित करती है। यदि यह मार्ग न अपनाया गया होता तो मध्यवर्ती गुजारा थोड़े से उपार्जन में ही हो सकता था। वह ईमानदारी के साथ थोड़े समय में ही कमाया जा सकता है। और बचे हुए साधन आत्म-कल्याण एवं विश्व-कल्याण में अत्यन्त आवश्यक एवं उपयोगी कामों में लग सकते हैं। इस मार्ग का अवलम्बन करने वाला महामानव कहलाता है और अपने कल्याण के साथ-साथ अन्य असंख्यों को ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने में सफल होता है। इस सौभाग्य से वंचित करने का सारा दोष इस तृष्णा पिशाचिनी का ही है जो अपना जीवन दुष्प्रयोजनों में गँवा देने और समाज में अनेक प्रकार के विग्रह खड़े करने के लिए विवश करती है।

दौलत के अतिरिक्त तृष्णा कुछ सीमित व्यक्तियों को भी अपना परिवारी कल्पित करती है और उन्हें भी उस मुफ्तखोरी में शामिल करती है। वस्तुतः सभी प्राणी भगवान के हैं। जिनके पालन-पोषण का दायित्व परिवारी के नाते सिर पर आ गया हो उनके लिए इतना ही कर्त्तव्य बनता है कि उन्हें स्वावलम्बी सुसंस्कारी भर बनाया जाय। उनके लिए धन दौलत उत्तराधिकार में छोड़ मरना या कमाने योग्य होते हुए भी बैठे-ठाले गुलछर्रे उड़ाने की सुविधाएँ देना सब प्रकार अनुचित है। तृष्णा ऐसे ही अनुचित कर्म कराती है और जिसके पीछे पड़ती है उसे आदर्शों की दृष्टि से गया गुजरा—हेय—बनाकर छोड़ती है। कोई लोक-मंगल जैसा काम करने योग्य तो छोड़ती ही नहीं।

इन दिनों बढ़ती आबादी संसार के सामने सबसे बड़ी विपत्ति बनकर खड़ी है। इन दिनों भी नई सन्तान उत्पन्न करना समाज द्रोह और मानवता के प्रति अपराध है। फिर भी कितने ही लोग तृष्णा के वशीभूत होकर—वंश चलने के नाम पर औलाद पर औलाद पैदा करते जाते हैं। यह तक नहीं देखते कि इससे पत्नी पर क्या बीतती है। उसके स्वास्थ्य और आयुष्य की कितनी बर्बादी होती है। जिनके पास बच्चों को सुयोग्य सुसंस्कारी बनाने योग्य साधन नहीं हैं वे भी यदि बच्चे उत्पन्न करते हैं तो उन नवागन्तुकों को घर बुलाकर पीछे उनका भविष्य बिगाड़ने जैसा विश्वासघात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरती पर स्वल्प साधन होते हुए भी आँखें बन्द करके उपभोक्ता बढ़ाते जाना और सभी के मुँह में जाने वाले ग्रास में से कटौती करना—इन दिनों नये सन्तानोत्पादन का सीधा अर्थ यही है। फिर भी जिन्हें "मेरेपन" की ललक खाये जा रही है वे तृष्णाग्रस्त लोग अपनों की संख्या बढ़ाने और उनके लिए खर्च जुटाने के लिए कोल्हू के बैल की तरह पिसते रहने से तृष्णा की तनिक-सी क्षणिक पूर्ति होती है। एक लालसा पूरी होते देर नहीं लगती कि सौ नई कामनाएँ चित्र-विचित्र वेश बनाकर सामने आ खड़ी होती हैं।

इन तृष्णाओं से बचा जा सके तो मनुष्य को निरन्तर मानसिक शान्ति उपलब्ध होती रह सकती है। सन्तोष को सबसे बड़ा धन माना गया है। वह मात्र उसी को प्राप्त हो सकता है जो तृष्णा की सुरसा के निरन्तर फटते जाने वाले मुँह में से छोटा मच्छर बनकर बाहर निकल आने की हनुमान जैसी बुद्धिमत्ता दिखा सकता है।

आत्मिक प्रगति के लिए जिस शान्ति और सन्तोष की आवश्यकता है उसे प्राप्त करने के लिए सर्वभक्षी तृष्णा से पिण्ड छुड़ाना आवश्यक है। उसकी पूर्ति तो कोई कर ही नहीं सकता। आग में ईंधन डालते रहने से वह बुझगी कैसे? वह तो निरन्तर बढ़ती ही रहेगी चाहे कितना ही वैभव कमा लिया जाय। चाहे कितना ही परिवार बढ़ा लिया जाय। जो भी हाथ लगेगा वह सब कम ही प्रतीत होता रहेगा और अधिक कमाने के फेर में जीवन के दीपक का तेल ही चुक लेगा।

मनोनिग्रह के लिए वासना के शमन के लिए जिस प्रकार चटोरेपन और कामुकता से पीछा छुड़ाना आवश्यक है उसी प्रकार जीवन लक्ष्य की पूर्ति के अनेकों सत्प्रयोजनों में निरत रहने के लिए तृष्णा के घड़ियाल के मुँह में फँसा हुआ पैर निकालना पड़ेगा। अन्यथा यह ललक ऐसी है जिसके बने रहने पर मन का अन्य किसी उच्चस्तरीय प्रयोजन में संलग्न हो सकना सर्वथा असम्भव है।

इसीलिए साधना मार्ग पर चलने वाले भगवद् भक्तों को साधु और ब्राह्मणों की तरह अपरिग्रही बनना पड़ता है। औसत भारतीय स्तर का जीवन यापन करने के लिए जितने साधनों की नितान्त आवश्यकता है उतने ही न्याय और श्रम के उपार्जन से उपार्जित करने के पश्चात् अपना शेष समय आत्म-शोधन के आवश्यक कार्यों में लगाना चाहिए ईश्वर की सच्ची पूजा उसके विश्व उद्यान को सुरम्य बनाने में है इसके लिए भी श्रम और साधन चाहिए। इसकी पूर्ति कर सकना उन्हीं के लिए सम्भव है जो निजी निर्वाह स्वल्प साधनों में करलें। जिसे निरर्थक का बोझ लादने की तृष्णा से छुटकारा मिलेगा वही ऊँचा उठ सकेगा। आगे बढ़ सकेगा, पिछलों को सहारा दे सकेगा और आगे चलने वाले के साथ कदम से कदम मिलाकर बढ़ सकने में समर्थ हो सकेगा। अतएव आत्मिक प्रगति के लिए तृष्णा को घटाना और हटाना नितान्त आवश्यक माना गया है।

एक बार की बात है। एक कंजूस गहरे गड्ढे में गिर पड़ा। पानी में डुबकियाँ लगाने लगा। किसी उदार व्यक्ति ने मुँडेर पर बैठकर सान्त्वना दी और कहा अपना हाथ लाओ। मैं पकड़कर खींच लूँगा, पर वह इस प्रस्ताव को स्वीकार न कर रहा था।

इतने में सेठ जी का पड़ौसी आ पहुँचा। वह उनकी प्रकृति को भली-भाँति जानता था, सो उसने उस प्रस्ताव को दूसरे शब्दों में रखा। हाथ बढ़ाते हुए कहा—"लो लालाजी मेरा हाथ, इसे पकड़ कर ऊपर चढ़ आओ। वे तुरन्त तैयार हो गये और ऊपर निकल आये।"

निकालने वाले आपस में हँसने लगे और बोले देखा—'लाओ' और 'लो' का अन्तर।

जिसे किसी को देना ही नहीं उसे देने की आवश्यकता भगवान क्यों अनुभव करने लगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्पण का सुख

दीपक जल रहा था। घृत चुकने को आया। लौ क्षीण हो चली। वायु के झोंकों ने देखा अब दीपक पर विजय पाना आसान है तो वे वृन्द-वृन्द मिलकर तेज आक्रमण करने लगे। अन्धकार नीचे दबा पड़ा था--अट्टहास कर हँसा और बोला—दीपक अब तो तुम्हारा अन्त आ गया अब कुछ ही देर में यहाँ हमारा साम्राज्य होगा।

दीपक मुस्कराया और बोला—बन्धु यह देखना काम विधाता का है, मेरा ध्येय है प्रकाश के लिये निरन्तर जलना सो अब अन्त समय उससे विमुख क्यों होऊँ, यह कहकर वह एक बार इतने वेग से जला कि वहाँ का सम्पूर्ण अन्धकार सिमट कर रह गया, भले ही दूसरे क्षण दीपक का अस्तित्व स्वयं भी शेष न रहा हो।

● ★ ●

अन्तरीप द्वीप से आया जीवन के संघर्ष और आँधियों से दुःखी एक नाविक जहाज से उतर कर बाहर आया। समुद्र के मध्य अडिग और अविचलित चट्टान की स्वच्छता को देखकर उसको कुछ शान्ति मिली। वह थोड़ा आगे बढ़ा और एक टेकरी पर खड़ा होकर चारों ओर दृष्टि-पात करने लगा। उसने देखा समुद्र की उत्ताल तरंगें चारों ओर से उस चट्टान पर निरन्तर आघात कर रही हैं तो भी चट्टान के मन में न रोष है और न विद्वेष। संघर्ष-पूर्ण जीवन पाकर भी उसे कोई ऊब और उत्तेजना नहीं है। मरने की भी उसने कभी इच्छा नहीं की।

यह देखकर नाविक का हृदय श्रद्धा से भर गया उसने चट्टान से पूछा—तुम पर चारों ओर से आघात लग रहे हैं फिर भी तुम निराश नहीं हो चट्टान। और तब चट्टान की आत्मा धीरे से बोली—तात, निराशा और मृत्यु दोनों एक ही वस्तु के उभय पृष्ठ हैं, हम निराश हो गये होते तो एक क्षण ही सही दूर से आये अतिथियों को विश्राम देने, उनका स्वागत करने से वंचित रह जाते। नाविक का मन एक चमकती हुई प्रेरणा से भर गया—जीवन में कितने संघर्ष आयें अब मैं चट्टान की तरह जिऊँगा ताकि हमारी न सही, भावी पीढ़ी और मानवता के आदर्शों की रक्षा तो हो सके।

● ● ●

एक था फूल एक था काँटा दोनों हरे-भरे उद्यान में आजू-बाजू पल रहे थे। मानो प्रकृति ने उनको यह सन्देश देने को नियुक्त किया हो कि इस संसार की बनावट उभयनिष्ठ है, यहाँ सब कुछ सुखद और सौन्दर्ययुक्त ही नहीं दुःखद और कुरूपता भी उसका आवश्यक अंग है।

काँटे ने कहा—प्यारे दोस्त ? तुम्हें भी भगवान ने व्यर्थ ही बनाया, कितने कोमल हो तुम कि शीत और ताप के हलके झोंके भी सहन नहीं कर सकते ? एक दो दिन खिलकर मुरझा जाने की तुम्हारी इस क्षण-भंगुरता पर तरस आता है, इधर देखो कितने दिनों से जी रहा हूँ, तुम्हारे कितने ही पूर्वजों को इसी डाली पर खिलते और मुरझा जाते मैंने देखा पर मेरा अब तक भी कुछ नहीं बिगड़ा, जानते हो क्यों ? इसलिये कि मैं अपना जो कुछ है तुम्हारी तरह लुटाता नहीं, जो भी मेरे पास आता है, काट खाता हूँ लोग मुझसे भय खाते हैं, हाथ भी नहीं लगाते एक तुम हो चाहे जो, चाहे जब तोड़ ले और मरोड़ कर फेंक दे।

फूल ने कहा—बन्धुवर ! तुम्हारा कहना यथार्थ है, किन्तु मैं क्या करूँ मुझे मरने जीने का तो कभी ध्यान ही नहीं आता—उत्सर्ग मेरे जीवन का ध्येय बन गया है। मैं चाहता हूँ कि मेरा जीवन एक पल के लिये ही क्यों न हो पर ऐसा हो कि जो भी देखे प्यार और प्रसन्नता से गद्‌गद् हो जाये। किसी को यह कहने का अवसर न मिले कि भगवान् ने मेरे संसार को सुखद और सुन्दर न बनाकर दुःखदायी और कुरूप ही बनाया है।

काँटे का घमण्ड चकनाचूर हो गया, उस दिन से उसने ऐंठ छोड़कर फूलों की रक्षा को ही अपना कर्तव्यमान लिया।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरोग्य रक्षा की तीन दीवारें

बीमार हो जाने के उपरान्त चिकित्सा करने या कराने का प्रचलन है। पर होना यह चाहिए कि ऐसी नौबत ही न आये जिससे बीमार पड़ना पड़े।

सृष्टि के समस्त जीवधारियों में प्रकृति प्रदत्त वह क्षमता है कि अपने शरीर की क्रमबद्धता अनायास ही बनाये रहते हैं। चोट दुर्घटना की बात दूसरी है पर वे साधारणतया बीमार नहीं पड़ते। पालतू पशुओं को छोड़-कर वन क्षेत्र के निवासियों में पशु-पक्षी तो क्या, जन-जातियों के लोग तक बीमार नहीं पड़ते। उन्हें कोई टॉनिक मिलते हों, रोग निवारक औषधियाँ खाते रहते हों, सो बात भी नहीं। प्रकृति के साधारण नियमों का पालन करने भर से हर किसी के स्वास्थ्य की सहज सुरक्षा हो सकती है।

क्या आरोग्य साधना के कोई गुप्त रहस्य हैं? क्या बीमारियों से निपटने की कोई चमत्कारी रसायनें हैं? इसका उत्तर नहीं में ही दिया जा सकता है। कारण कि इसमें यदि कहीं रहस्यवाद का समावेश होता तो शिक्षा से हजारों मील दूर रहने वाले प्राणी उन्हें किससे, क्यों कर सीखते और उस जटिल प्रणाली से अपरिचित रहने की स्थिति में ऋतु प्रकोपों को सहते हुए आहार तक का सुप्रबन्ध न होने की स्थिति में निरोग कैसे रह पाते?

मानव शरीर दूसरे प्राणियों की तुलना में हर दृष्टि से श्रेष्ठ है। मस्तिष्कीय संरचना ही नहीं, कायिक ढाँचा भी ऐसा है जिसकी सुरक्षात्मक दीवारें बहुत मोटी और मजबूत हैं। उसमें साधारण रोग कीटकों का प्रवेश नहीं हो सकता। यदि हो भी जाय तो वे संरक्षक चौकीदारों से लड़कर जीत नहीं सकते। यहाँ सफाई कर्मचारियों का उदाहरण सामने है। वे संक्रामक बीमारियों के मरीजों का भी मल-मूत्र साफ करते रहते हैं। कपड़े धोते रहते हैं। उनकी सेवा में निरत रहते हैं। डाक्टर, कम्पाउण्डर, नर्स, आदि रोगियों को छूकर हाथ भर धो लेते हैं पर उनकी साँसों में से उड़ने वाली रुग्णता की फौज को किस प्रकार बाहर रोके या दूर भगाते रह सकते हैं। ऐसी दशा में घर की परिचर्या करने वालों—कुशल क्षेम पूछने वालों—स्नेह दुलार में स्पर्श करने वालों को उस विपत्ति में फँस जाना पड़ता। बीमार माता के सम्पर्क में रोकने पर भी न रुकने वाले बालकों की सुरक्षा का क्या प्रबन्ध होता? उनकी सुरक्षा कैसे हो पाती?

हमारा रक्त, तापमान, विशेषतया श्वेत कण—स्रवित होने वाले रसायन सभी ऐसे होते हैं जो रोग कणों को नष्ट करने में पूरी तरह समर्थ हैं। कठिनाई तब आती है जब इस रक्षा पंक्ति को हम स्वयं दुर्बल करते हैं।

इसके लिए तीन मोर्चों पर सतर्कता बरतने की आवश्यकता है। एक—आहार, दूसरा—श्रम, तीसरा—मानसिक सन्तुलन। यदि इन तीनों पर सतर्कता भर से काम लिया जाय तो हम सहज ही निरोग रह सकते हैं और बीमारियों के वातावरण में रहकर भी अपने को बचाये रह सकते हैं। जब महामारियाँ फैलती हैं तो अनेक स्वयंसेवी सज्जन बीमारों की परिचर्या करने से लेकर मृतकों की लाशें जलाने में निरन्तर लगे रहते हैं किन्तु देखा गया है कि उनका बाल भी बाँका नहीं होता।

आहार की प्रथम सुरक्षा-दीवार में आवश्यक यह है कि भूख से कम खाया जाय, कड़ाके की भूख लगे बिना कुछ न खाया जाय। तली भुनी, चिकनाई या मसालों से भरे स्वादिष्ट पदार्थों को स्वाद वश अधिक मात्रा में खा लिया जायगा तो उन दुष्पाच्य पदार्थों से अपच होने की सम्भावना रहेगी। इसलिए जल्दी हजम होने वाली दूध, फल, तरकारी, दलिया, खिचड़ी वस्तुओं पर निर्भर रहा जाय और उन्हें अच्छी तरह चबाकर खाया जाय तो पाचन सही रहने से रक्त भी शुद्ध बनेगा और उसके आगे रोगों का प्रकोप ठहर न सकेगा।

नशे सभी ऐसे हैं जो जीवनी शक्ति पर घातक प्रहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। सिगरेट से लेकर शराब तक सभी मादक द्रव्य ऐसे हैं जो अपनी विषाक्तता से सभी अवयवों को अशक्त ही नहीं विषाक्त भी बनाते हैं। इनसे बचे रहना उसी प्रकार आवश्यक है जैसे साँप बिच्छू से बचा जाता है। इनका अभ्यास अनेक रोगों को आमन्त्रित करता है। जो किसी प्रकार भीतर पहुँच जाते हैं उनकी जड़ काटना कठिन पड़ता है।

श्रम के कारण सभी अंगों का संचालन होता रहता है और वे सक्षम एवं सक्रिय बने रहते हैं। यह बड़े आदमियों के नखरे हैं कि वे शारीरिक श्रम करते हुए हेटी अनुभव करते हैं और बैठे-ठाली आरामतलबी में समय बिताते हैं। बौद्धिक श्रम को वस्तुतः परिश्रम नहीं माना गया। उससे पाचन में सहायता नहीं मिलती और अवयवों को सुसंचालित रहने की प्रक्रिया में बाधा पड़ती है। बेकार पड़ा रहने वाला चाकू भी जंग खाकर भौंथरा हो जाता है। श्रम से जी चुराने वाले भी थुलथुले होते जाते हैं और मधुमेह, रक्तचाप जैसे रोगों के शिकार बनते हैं। जिनके पास कृषकों श्रमिकों जैसा काम नहीं है उन्हें टहलने की आदत डालनी चाहिए। प्रातः सायं एक-एक मील रीढ़ सीधी रखकर हाथ हिलाते हुए तेज चाल से चला जाय तो भी अंग संचालन हो सकता है। एक तरीका यह भी है कि बिस्तर पर पड़े-पड़े समस्त अवयवों का क्रमबद्ध नीचे ऊँचे, करने का क्रम चलाया जाय। दुर्बल बीमार, बच्चे, वृद्ध आदि के लिए व्यायाम का यह तरीका सरल पड़ता है।

तीसरी सुरक्षा दीवार है—मानसिक सन्तुलन बनाये रहना। कोई न कोई घटना, आशंका, सम्भावना, कल्पना ऐसी हो सकती है जो आवेश या अवसाद उत्पन्न करे। आवेश अर्थात् क्रोध, चिन्ता, भय, ईर्षा, आदि। अवसाद का अर्थ है निराशा, उदासी, आत्महीनता आदि। जिस प्रकार शरीर में गर्मी या ठण्डक का नियत अनुपात बढ़ जाने से शरीर अस्त-व्यस्त हो जाता है उसी प्रकार मानसिक असन्तुलन भी ऐसी स्थिति उत्पन्न करता है जिससे शरीर की सहज स्वाभाविकता लड़खड़ाने लगे और मानसिक अस्त-व्यस्तता का प्रभाव शरीर पर पड़ने लगे।

हँसते मुसकाते रहने, निश्चिन्त, निर्भय और सन्तुष्ट रहने का स्वभाव न केवल मनुष्य को सुन्दर, चरित्रवान एवं सद्गुणी एवं साहसी प्रामाणित करता है वरन् शरीर के भीतरी क्रिया-कलाप को ऐसा बनाये रहता है जिस पर बीमारियों का असर न पड़े। मानसिक सन्तुलन मनुष्य को बुद्धिमान, दूरदर्शी, साहसी तो बनाता ही है साथ ही ऐसी स्थिति भी उत्पन्न करता है कि किसी बाहरी रोग का आक्रमण न होने पाये और यदि होने लगे तो उसके ठहरने की गुंजायश न रहे।

चरित्रवान व्यक्ति बाहर से भले ही किसी कठिनाई में हो पर भीतर अपनी सज्जनता एवं चरित्रनिष्ठा के कारण सन्तुष्ट प्रसन्न रहते हैं। जिनके मन में छल, कपट, झूठ, पाखण्ड के ताने-बाने बुने जाते रहते हैं उनके भीतर

> यह मात्र दृष्टि की भ्रान्ति ही है कि पृथ्वी पर बैठे मनुष्य को सूर्य व चन्द्रमा एक ही आकार के दिखाई देते हैं। इसका कारण यह है कि चन्द्रमा से सूर्य चार सौ गुना अधिक बड़ा होने के साथ-साथ पृथ्वी से चन्द्रमा की अपेक्षा सूर्य चार सौ गुना अधिक दूरी पर भी स्थित है। यह सृष्टा की माया की एक झलक भर है।

दुहरा—परस्पर विरोधी व्यक्तित्व बढ़ने लगता है और अन्तर्द्वन्द्व के कारण अनिद्रा, आशंका जैसे रोग घेरने लगते हैं। उद्विग्नता का पाचन तन्त्र पर बुरा असर पड़ता है। जो विक्षुब्ध रहता है उसकी मनोदशा अर्ध विक्षिप्तों जैसी बनने लगती है। इतना ही नहीं रक्त संचार, श्वसन क्रिया, मूत्राशय तन्त्र, एवं पाचक रसों का उचित मात्रा में स्राव अवरुद्ध होने लगता है। ऐसी दशा में स्वस्थ जीवाणु भी सड़कर रोग कीट बन जाते हैं। भीतर की गन्दगी साफ न होती रहे तो उस भीतरी सड़न में भी कई रोग अनायास उठ सकते हैं। किन्तु जिनकी सुरक्षात्मक तीनों दीवारें सुदृढ़ हैं उन्हें बीमार नहीं होना पड़ता और कदाचित् कोई प्रकोप होने भी लगे तो वह देर तक ठहर नहीं सकता।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भौतिक प्रगति के सुनिश्चित आधार

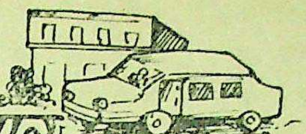

वृक्षों की ऊँचाई, चौड़ाई और जिन्दगी इस बात पर निर्भर है कि उसकी जड़ें कितनी मजबूत एवं गहरी हैं। उस पर लगने वाले फल-फूल आसमान से उतर कर नहीं लद पड़ते वरन् उस रस संचय पर अवलम्बित रहते हैं जो जड़ों द्वारा भूमि से खींचा जाता है। दृश्यमान वैभव अदृश्य जड़ों की सक्षमता पर निर्भर रहता है।

मनुष्य को भी एक वृक्ष माना जाय तो गुण, कर्म, स्वभाव के अदृश्य समुच्चय को वे जड़ें कहा जा सकता है जो बाहरी वैभव के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। इसलिए पत्तों को सींचने की अपेक्षा जड़ों को उपयुक्त खाद पानी मिलता रहे इसका प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

एक जैसी परिस्थितियों में उत्पन्न दो व्यक्तियों का भविष्य एक जैसा नहीं होता। मनःस्थिति के अनुरूप वे अपनी-अपनी स्वतन्त्र दिशाएँ पकड़ते हैं। साधनों का उपयोग एक उत्कर्ष के लिए करता है दूसरा अपकार्य के लिए, इसलिए उनका भविष्य एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न होता है। एक सम्मान और वैभव का धनी होता है। दूसरा पूर्वजों की सम्पदा की होली जला कर बदले में दरिद्रता और भर्त्सना का भागी बनता है। इसमें यों परिस्थितियों की, व्यक्तियों की, भाग्य रेखाओं की सराहना या शिकायत की जाती है। पर इससे आत्म वंचना के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता। वस्तुतः मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है और यह कार्य वह अपने गुण, कर्म, स्वभाव जैसे उपकरणों और कौशलों के सहारे सम्पन्न करता है।

लोग अक्सर बाहरी परिस्थितियों, साधनों और अनुग्रहों की ओर तकते हैं और सोचते हैं, इन्हीं की अनुकूलता पर प्रगति के अवसर निर्भर हैं। पर वस्तुतः ऐसा है नहीं। अदृश्य गुण सम्पदा का महत्व है। उन्हीं का चुम्बकत्व अपने अनुरूप, साधन और सहयोग घसीट लाता है। गड्ढा होने पर उसके समीप जाने वाले गिरेंगे ही और पर्वत की चोटी पर निगाह रखने वालों का उत्साह ऊँचा चढ़ने के लिए ही प्रयास करता है। चोटी और खाई की प्रशंसा निन्दा करना व्यर्थ है। वे तो सृष्टि संरचना के अंग भर हैं। उनमें किसी को खींचने और उछालने की सामर्थ्य नहीं है। यह कार्य तो अपना मानसिक स्तर ही करता है।

भौतिक प्रगति अभीष्ट तो हर किसी को है पर वह हस्तगत उन्हीं को होती है जो उसे उपलब्ध करने के लिए समुचित मूल्य चुकाने के लिए तत्पर रहते और तैयारी करते हैं। यह तैयारी मात्र योजना बनाने और साधन एकत्रित करने तक सीमित नहीं है। वरन् उसके लिए वह करना पड़ता है जो अत्यधिक महत्वपूर्ण है भले ही उसकी आवश्यकता और महत्ता कोई समझ पाये या नहीं। तात्पर्य उन सद्गुणों की सम्पदा से है जो अपने अनुरूप चुपके-चुपके आश्चर्यजनक ताना-बाना बुनती रहती हैं। वृक्ष का वैभव उसकी जड़ों पर निर्भर रहता है, इस उपमा को यहाँ पूरी तरह लागू किया जा सकता है।

प्रगति प्रयोजन के लिए दृश्यमान गुणों में सर्व प्रमुख उठने से लेकर सोने तक के समय का उद्देश्य पूर्ण नियोजन है। यह कार्य रात को सोते समय अगले दिन के लिए, अथवा प्रातःकाल उठते ही अपना कार्यक्रम करने के लिए निर्धारित करना चाहिए। किसी आकस्मिक कार्य के आ खड़े होने पर ही यदा-कदा अपवाद स्वरूप ही उसमें परिवर्तन होने की बात ही क्षम्य हो सकती है। अन्यथा मन मर्जी के या दूसरों के सुझाये काम अस्त-व्यस्त रूप में करते रहना और उन्हें आधे-अधूरे छोड़कर दूसरा कुछ करने लगना बाल-विनोद ही कहा जा सकता है। बन्दर प्रायः ऐसी ही बेसिलसिले की उछल-कूद करते रहते हैं। जिन्हें किसी लक्ष्य तक पहुँचना है उन्हें इस दुर्गुण से अपने आपको बचाने के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्धारित कार्यक्रम में पूरी तत्परता और तन्मयता से जुटना चाहिए। शारीरिक श्रम में उत्साह और साथ में मनोयोग की गहराई का नियोजन यही है वह रहस्य जो काम में अब उच्चाटन उत्पन्न नहीं होने देता, वरन् उसे बढ़िया किस्म का खेल समझकर पूरा-पूरा रस लेता है। उचित समय में, उचित रीति से, उचित मात्रा में काम कर सकना तभी बन पड़ता है जब उसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया जाय। इस प्रवृत्ति में कमी रहेगी तो अधूरे मन और अधूरे श्रम से किये हुए काम फूहड़ों जैसे आधे-अधूरे काने-कुबड़े रहेंगे। उन पर लोग तो हँसेंगे ही स्वयं भी कम असन्तोष न होगा। सफल जीवन का प्रथम गुण इसीलिए क्रमबद्ध कार्य पद्धति अपनाना और उनमें पूरी तरह निमग्न हो जाना बताया गया है। प्रत्येक सफल व्यक्ति को यह प्रक्रिया अनिवार्यतः अपनानी पड़ी है।

दूसरा गुण है। साहस और उत्साह बनाये रहना। इनके अभाव में भीतर का शक्ति स्रोत सूखता है और बाहर अनुत्साह, आलस्य, प्रमाद और भटकाव घेरता है। आत्मविश्वास ऊँचे दर्जे का गुण है। सफल होकर रहने की उमंगें मनुष्य को वस्तुतः इस योग्य बनाती हैं और वह कल नहीं परसों लक्ष्य तक पहुँचाकर ही रहती हैं। जो बबूले की तरह उछलते और झाग की तरह बैठते हैं। उनका मन चंचल अस्थिर और अवसाद ग्रस्त देखा जाता है। अनेक सुयोगों के रहते यह एक ही दुर्गुण ऐसा है जो अभीष्ट की पूर्ति में हजार व्यवधान खड़े कर देता है।

आत्मविश्वास की—दृढ़ निश्चय की—प्रामाणिक चरित्र की—बहिरंग पहचान एक ही है—होठों पर मन्द मुसकान और आँखों में आशा की चमक है। सफल जीवन जीने वाले कभी भी निराश, उदास, गम्भीर, विचार मग्न असमञ्जस ग्रस्त नहीं देखे गये। इन व्यथाओं को अपनाने वाला बात-बात में आवेशग्रस्त होने लगता है। यह व्यक्तित्व की कुरूपता है जो कायिक सुन्दरता और परिधानों की शोभा-सज्जा को धूलि में मिला देती है और किसी के सम्पर्क में आने, मन की बात पूछने या सहयोग करने की हिम्मत नहीं पड़ती। इसलिए आवश्यक है कि हर किसी को अपनी वरिष्ठता का विश्वास दिलाने वाली होठों की मुस्कान और आँखों में आशा की चमक उत्पन्न करने का प्रयत्न करे। यदि यह अब तक अभ्यास में नहीं आया है तो उसे दर्पण की सहायता से वैसा अभिनय करने की साधना करनी चाहिए। कोई भी देख सकता है कि उदासी के रहते चेहरा कितना कुरूप दीखता है और अक्षमता का कितना विज्ञापन करता है। इसके विपरीत खिले फूल सा चेहरा कितना सुन्दर लगता है और कितनी तितलियाँ, मधु मक्खियों को अपना आश्रय पाने के लिए आमन्त्रित करता है।

एकांगी उत्साह प्रायः ऐसी भूलें कराता है जिनके कारण अगले ही दिनों हौसला टूट जाय। हमें अपने कार्य के हर पक्ष पर विचार करना चाहिए। सम्भावना पर भी और व्यवधान पर भी। आशा रखे पर कठिनाइयों से निपटने की भी योजना बनाकर रखें। आवश्यक नहीं कि अपनी कल्पना के अनुरूप ही सब कुछ घटित होता चला जाय, या जिन व्यक्तियों से जो आशा रखी है वह पूरी होती ही चली जाय। आवश्यकता नहीं कि परिस्थितियाँ अनुकूल ही बनी रहें। इसलिए सतर्कता रखना और तथ्यों के दोनों पहलू समझना आवश्यक है। समझदारी बढ़ाने का यही तरीका है और सफलता तक पहुँचने के लिए सामयिक हेर-फेरों की सूझ-बूझ रख कर चढ़ पाना ही सम्भव होता है। अन्यथा भावुक व्यक्ति सरलतापूर्वक ठगा जा सकता है और अपना धैर्य गवाँ बैठ सकता है।

स्मरण रखने योग्य बात यह है कि यह समूचा मानव समाज एक-दूसरे के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। यहाँ कोई भी मात्र एकाकी पुरुषार्थ के सहारे नहीं बढ़ सका है। हर छोटे-बड़े कामों में दूसरों के स्नेह सहारे की आवश्यकता पड़ती है। इसे अर्जित करने का तरीका आदान-प्रदान है। हम देते हैं और पाते हैं। शुरुआत अपनी ओर से होनी चाहिए। इस प्रतीक्षा में नहीं बैठे रहना चाहिए कि हम किसी के लिए कुछ न करें और लोग हमारे ऊपर अकारण ही स्नेह सहयोग बरसाते रहें। इसके लिए मधुर बचन बोलने का, व्यवहार के शिष्टाचार का निर्वाह तो आवश्यक ही है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि सम्मान दें और सहयोग करें। इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

679523
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक नहीं कि किसी पर थोपी ही, उडेली ही जाय। जब मिलना हो छुटपुट कार्यों में हाथ बँटाना, खुशी और रंज में सम्मिलित होना और अपने योग्य सेवा की बात पूछना। यह भी सहयोग का एक बड़ा तरीका है। पर छोटा वह है जिसमें कोई बड़ा खर्च नहीं करना पड़ता और बहुत सहयोग नहीं देना पड़ता पर दूसरे के हिस्से के काम में अपना हाथ लगा देना, इतने से भी काम चल जाता है, पर कदाचित किसी को आकस्मिक विपत्तियों में फँस जाना पड़े तो उसकी यथासम्भव सहायता करना ऐसा तरीका है जिससे कितनों को अपना बनाया जा सकता है और उनके योगदान से समयानुसार अपने प्रगति कार्यों में आयाचित सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए अपनी आवश्यकता का संकेत कर देने भर से उन्हें प्रत्युपकार की बात स्मरण हो आती है। जो मित्र बनाना, उपेक्षित रहना और सहयोग अर्जित करना यह तीनों ही स्थितियाँ अपनी उदारता, नम्रता और व्यवहार कुशलता पर निर्भर हैं। इस दिशा में प्रयत्नरत रहने का स्वभाव ही बना लेना अच्छा है।

सम्मान, सद्भाव प्राप्त करने की इच्छा तो सभी की रहती है और इसके लिए अपनी विशेषताओं का ढिंढोरा पीटने के लिए लोग प्रयत्न भी करते रहते हैं। पर यह अस्थिर और उथला तरीका है। ठोस और वास्तविक तरीका है--अपनी प्रामाणिकता की छाप दूसरों के मन पर बिठा देना। यह प्रपंचों का विषय नहीं, वरन् सीधा वास्तविकता से सम्बन्धित है। यह एक दिन में नहीं, लम्बे समय तक उच्च चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व अपनाने से ही सम्भव है। लोक प्रतिभा के आधार पर जितने प्रभावित होते हैं उसकी तुलना में मनुष्य की ईमानदारी सज्जनता, शालीनता के प्रसंगों का यथार्थवादी परिचय जानना चाहते हैं और उसे आसानी से कर भी लेते हैं। हमारी भीतरी और बाहरी दुश्चरित्रता को पैरों तले की जमीन, ऊपर का आसमान देखता है और हवा के साथ उस वास्तविकता को समूचे वातावरण में बिखेर देता है फलतः वह विश्वास के रूप में न सही आशंका के रूप में हर किसी के मन में जा बैठता है। अप्रामाणिकता पर कोई विश्वास नहीं करता और यह सन्देह हर किसी को बना रहता है कि ऐसी ही कुटिलता धूर्तता से कोई कभी हमें भी हानि न पहुँचा बैठे। ऐसे लोग सीधे रास्ते प्रगति तो कर ही नहीं पाते। उलटे रास्ते यदि कर भी लें तो वह अधिक देर टिकती नहीं। विभूति को अर्जित करना जितना कठिन है उससे कहीं अधिक कठिन उन्हें सुरक्षित रख सकना है। सम्पदा हो या प्रतिभा उन्हें सुरक्षित रख सकना हर किसी के बलबूते की बात नहीं है इसके लिए चरित्रवान होना नितान्त आवश्यक है।

सद्गुणों में सुव्यवस्था का अत्यधिक महत्व है। व्यवसाय की—सार्वजनिक क्षेत्र की, निजी जीवन की, परिवार की सुव्यवस्था मन को हलका और प्रसन्न रखती है और साधनों तथा साथियों को सही रखना तथा उपयोगी बनाना सम्भव होता है। संसार में जितने महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं उनमें प्रत्यक्षतः सुयोग्य साथियों, श्रमिकों एवं साधनों का महत्व दृष्टिगोचर होता है, पर परोक्षतः उसे व्यवहार कुशलता का चमत्कार दिखाते देखा जाता है जिसे सुव्यवस्था कहा जाता है। हानि लाभ के जितने भी प्रसंग हैं उसमें अस्त-व्यस्तता का अभिशाप अथवा सुव्यवस्था का वरदान ही काम करते दीखता है। जो शतरंज की तरह अपनी गोटें यथास्थान फिट करता रहता है। उसे सूत्र-संचालक कहते हैं। प्रबन्धक, मैनेजर आदि भी। यह योग्यता संसार की अन्यान्य योग्यताओं की तुलना में सैकड़ों गुनी अधिक महत्वपूर्ण है। व्यवस्था बुद्धि को विकसित करने के लिए व्यक्तिगत क्षमताओं का सुनिजन करना चाहिए इसके लिए परिवार की प्रयोगशाला अभ्यास के लिए सर्वसुलभ और सर्वोत्तम है। अच्छा हो परिवार को छोटा रखा जाय और जो सदस्य अपने से बँधे हैं उनमें से प्रत्येक के दृष्टिकोण और क्रिया-कलाप को—गुण, कर्म, स्वभाव को—दिशाधारा को सुनियोजित करते रहने में दत्त चित्त रहा जाय, जिससे अपनी प्रसन्नता बढ़े और उनको सही राह मिलने का सन्तोष रहे।

यह मौलिक और आरम्भिक गुणों की चर्चा है। इससे कम में मौलिक प्रगति का तारतम्य बनता नहीं। यदि ये ही सद्गुण उलट कर दुर्गुण बन जाय तो समझना चाहिए कि घड़े में अनेकों छेद हो गये और उसमें भरा हुआ आकांक्षाओं एवं प्रयत्नों का सार जल बिखर गया। प्रगतिशीलों को ऐसा अवसर नहीं ही आने देना चाहिए।

679523
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो शरीर के खोखले में प्रखर मस्तिष्क है

स्वास्थ्य की महिमा बताने के लिए जो भी कहा जाय कम है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन या आत्मा का निवास होता है। यह उत्साहवर्धन कथन है। पर ऐसा नहीं समझना चाहिए कि यह आत्यन्तिक सत्य है। शरीर के बिना तो मन काम नहीं कर सकता। पर वह टूटा-फूटा, रुग्ण, अपंग, असमर्थ शरीर होने पर भी अपनी विलक्षणता यथावत् बनाये रहता है वरन् उसे अधिक सजग, सक्षम, सक्रिय बना सकता है इस प्रतिपादन के उदाहरण भौतिक जगत में भी विद्यमान हैं।

प्राचीन काल में च्यवन और वाल्मीकि जैसों के ऐसे कथानक मिलते हैं, जिनने तप करते हुए शरीर को निष्क्रिय बना लिया था और उसके खोखले में मात्र आत्मा ही काम करती थी। समाधि अवस्था में ऐसा ही होता है। उसका प्रयोगात्मक प्रदर्शन करने वाले हृदय और मस्तिष्क की गति बन्द होने पर भी जो जीवित बने रहते हैं और निर्धारित समय पर उस निष्क्रियता को समाप्त करके पूर्ववत् सक्रिय हो उठते हैं।

यह अध्यात्म प्रसंगों की चर्चा हुई। एक भौतिक उदाहरण अभी भी हमारे सामने है जिसमें शरीर जीवित रहने भर के लिए सक्रिय है अन्यथा उससे कोई उपयोगी कार्य नहीं बन पड़ता है। यह सज्जन हैं ब्रिटेन के ऐसे वैज्ञानिक जिनके बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है। इनने सृष्टि की उत्पत्ति के पुरातन सिद्धान्तों की इस प्रकार व्याख्या की है जिसके आधार पर अब तक की मान्यताओं में भारी उलट-पुलट करनी पड़ सकती है।

बयालीस वर्षीय इस वैज्ञानिक ने एक दशाब्दी पूर्व ऐसे विचित्र पक्षाघात ने घेरा जिसके सम्बन्ध में ऊँचे चिकित्सकों को भी कोई विशेष जानकारी न थी और वे ऐसे ही अनुमान के आधार पर चिकित्सा करते रहे। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के यह गणित अध्यापक अपनी नियुक्ति के उपरान्त ही संसार के मूर्धन्य भौतिक विज्ञानियों में गिने जाने लगे थे। विशेषतया ब्रह्म संरचना के रहस्यों के नूतन सन्दर्भों के सम्बन्ध में।

पक्षाघात का असर तब भी बहुत हद तक हो चुका था किन्तु उनकी प्रतिभा से प्रभावित विज्ञान की एक छात्रा ने उनसे विवाह कर लिया था जिसके उदर से एक बालिका भी जन्मी। पर वे अब पत्नी की सेवा सहायता पर भी निर्भर नहीं हैं। एक विशेष प्रकार की मोटर लगी कुर्सी उनके लिए बना दी गई है। उसी पर वे कसे रहते हैं। अब उनके हाथों ने ही साथ नहीं छोड़ा है वरन् वाणी भी दगा दे गई है। उन्हें कुछ कहने में बहुत जोर लगाना पड़ता है फिर भी उच्चारण अस्पष्ट ही रहता है। मेज पर लगे कम्प्यूटर की सहायता से ही वे अपने चिन्तन को प्रकट कर पाते हैं। उनके अभ्यस्त सहायक मन्तव्य समझ लेते हैं और जिन वैज्ञानिकों के साथ वे काम कर रहे हैं उन्हीं के सामने प्रस्तुत कर देते हैं।

> हृदय में क्षमा करने की शक्ति सदैव रहती है।
>
> —स्वेट चाइन

कहा जाता है कि वे इस अर्ध—शताब्दी के दूसरे आइस्टीन हैं। उनने ब्रह्माण्ड की गुत्थियों को इस नये ढंग से सुलझाया है। जिसके सम्बन्ध में पूर्ववर्ती वैज्ञानिकों को कल्पना तक न थी। यदि उनका प्रयास पूरी तरह सफल हो गया तो प्रकृति की अनेकों अनबूझ पहेलियों पर नया प्रकाश पड़ेगा। यह वैज्ञानिक श्री स्टीफन हॉकिंग अभी ५० वर्ष के नहीं हुए हैं। दस वर्ष से शरीर आहार, निद्रा जैसी कामचलाऊ हरकतें ही कर पाता है। मशीन की कुर्सी और कम्प्यूटर ही उन्हें जीवित कहे जाने योग्य ही नहीं संसार की अद्भुत मानसिक क्षमता की स्थिति में बनाये हुए है। ऐसी दशा में शरीर को मन का निमित्त कारण माना जाय या नहीं यह भी एक नया प्रश्न सामने आता है। ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशु-पक्षियों में पारिवारिक भावनाएँ

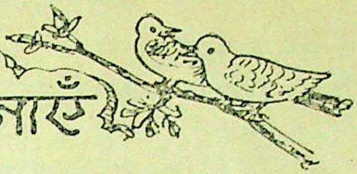

किसी में मानवी उदारता की कमी देखते हैं तो उसे नर पशु कहते हैं। इसका तात्पर्य होता है भावना रहित होना। पर वास्तविकता ऐसी नहीं है। मनुष्येत्तर प्राणियों में भी उनके कार्य क्षेत्र में काम आने वाली उदारता समुचित मात्रा में पाई जाती है। वह उदारमना मनुष्यों के समान ही होती है कई बार उनसे भी अधिक।

बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में मनुष्य को अपनी विशिष्टता का दावा करना बेकार है क्योंकि अन्य प्राणी जिस स्तर का जीवनयापन करते हैं उसमें काम आने वाली बुद्धि की तनिक भी कमी नहीं पाई जाती। यदि ऐसा होता तो साधनों की कमी रहते हुए भी वे इतना प्रसन्न जीवन कैसे जी लेते हैं, वह किस प्रकार संभव हुआ होता।

मनुष्य को भी भगवान ने जिस प्रयोजन के लिए बनाया है उसके लायक ही बुद्धि प्रदान की है। उस पर उसको गर्व करना व्यर्थ है। मनुष्य जिस कारण सराहा जाता है वह उसकी भावना-शीलता है। सहकारिता, उदारता, करुणा जैसे गुणों में मानवी गरिमा सन्निहित है। जिनमें यह संवेदनाएँ नहीं, मात्र चतुरता का ही बाहुल्य है उसी को नर पशु की उपमा दी जाती है।

किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाय तो मानवी भाव संवेदनाओं की पशु पक्षियों में भी कमी नहीं होती। अपने कार्य क्षेत्र में जितनी आवश्यकता है कई बार तो वे उससे भी अधिक सद्भावनाओं का परिचय देते हैं। संतान पालन के संबध में उनका वात्सल्य और प्रयास मनुष्य की तुलना में निश्चय ही अधिक होता है।

पशु पक्षियों को प्रकृति ने अपना पराया पहचानने तथा भेद करने, तद्नुसार आचरण करने की विलक्षण योग्यता प्रदान की है। विभिन्न प्रयोग इसके साक्षी हैं।

सियरा नेवादा (अमेरीका) में १४ फीट की वर्फ जम जाती है। भीषण जाड़ा पड़ता है। "वेलिंग" नामक गिलहरी दीर्घ शीत निद्रा के बाद बर्फ कुतर कर बाहर निकल आती है। पॉल शर्मान तथा सहयोगियों के एक दल ने लगातार ६ वर्षों तक इन गिलहरियों का अध्ययन किया। करनेंल वि०वि० के जीव शास्त्र के मूर्धन्य शर्मान पता लगा रहे थे गिलहरियाँ कैसे अपने सम्बन्धी लोगों को पहचान लेती हैं और वैसा व्यवहार करती हैं। अकेले शर्मान ही नहीं विश्व के अनेकानेक विश्व विद्यालयों के पशु पक्षियों की पहचान तथा तत्सम्बधी व्यवहार एवं पूरे खानदान की अन्तः भावनाओं पर शोध कर रहे हैं।

प्रकृति में विशेषतः पशु पक्षी जगत में रक्त की नजदीकी के अनुसार अच्छा या बुरा व्यवहार की परम्परा का होना एक महत्वपूर्ण पैरामीटर समझा जाता है। जीव शास्त्रविदों के सामने यह प्रश्न है कि पशु पक्षी रक्त सम्बन्ध को कैसे पहचान जाते हैं। प्रकृति ने उसके लिए कौन से संयंत्र उनके पास लगाए हैं। दूसरा सवाल यह है कि पशुओं में अपना और पराया क्यों व कैसे होता है उसे जानकर वे अपना व्यवहार कैसे परिवर्तित कर लिया करते हैं। कौन हमारे परिवार का है और कौन बाहरी और इसके अनुसार क्यों वे अपने व्यवहार को सतत् बदलते रहते हैं।

प्रयोग से यह देखा गया है कि गिलहरियों की मादा अपने जान की भी बाजी लगाकर अपनी बहन तथा बेटियों को भय का संकेत देकर उन्हें बचा लेती है। मेढ़कों में कुछ इतने परिवार प्रेमी होते हैं कि वे अपने ही सगे भाई बहन के साथ घूमना पसंद करते हैं न कि सौतेले भाई बहन के साथ।

मधु मक्खियाँ अपने छत्ते में उन्हीं मक्खियों को प्रवेश करने देती हैं जो उनके छत्ते की ही होती हैं। चाहे आने वाला समूह अपनों को पहचानने की जानकारी अपने पास क्यों न रखता हो। छत्ते से बाहर वालों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो भगा कर ही रहती हैं।

सोशियो बॉयलोजी विज्ञान शाखा के एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त का विकास ब्रिटिश बायलाजिस्ट विलियम मिल्टन ने किया है। यह सिद्धान्त है—"किन सलेक्शन" [सम्बन्धियों का चयन]।

जमीन पर दौड़ने वाली गिलहरियों में सबसे अधिक शिकार, शिकारी पशु उन गिलहरियों का करते हैं जो शिकारी के आगमन की जानकारी प्रसारित करती है। क्या कारण है कि ये गिलहरियाँ अपनी जान को खतरे में डालकर भी अपने सम्बन्धियों को सावधान कर दिया करती हैं। अनुसंधान से पता लगा है कि यह "जीन्स" का है। जिसके द्वारा वह सन्ततियों को लाखों वर्षों से जीने मरने की प्रेरणा देता आ रहा है।

परोपकार की प्रवृत्ति पशुओं में भी पायी जाती है। इस की पुष्टि पेरिस का निकटवर्ती कब्रिस्तान करता है जहाँ लगभग सवा सौ ऐसे जीव जन्तु दफनाये गए हैं, जिन्होंने अपने तुच्छ जीवन को महानता से जोड़ लिया है। प्रवेश शुल्क भुगतान कर देने के बाद ज्योंहीं दर्शक एक कलात्मक द्वार से घुसता है, सबसे पहले उसे एक कुत्ते की मूर्ति बरबस आकृष्ट कर लेती है। इस कुत्ते ने अपने जीवन काल में एक दो नहीं ४० ऐसे व्यक्तियों की जान बचायी जो मदद न मिलने पर मौत के घाट उतर जाते।

कुत्ते के जीवन-वृत्तान्त से ज्ञात है कि ऐसा परोपकारी कुत्ता "बेरी" आल्पस के ढ़लान पर रहा करता था। उसका स्वामी सैलानी पर्वतारोहियों के मार्गदर्शक के रूप में काम करता था।

आल्पस पर्वत की सुषमा शीत ऋतु में साहसी पर्वतारोहियों को अपनी ओर आकर्षित करती रहती है। इन साहसिक यात्रियों को सायं होते-होते अपने सुनिश्चित कैम्पों तक वापस हो जाना पड़ता है। किन्तु कभी-कभी यात्री मार्ग भूल कर या बर्फीली आँधियों के कारण भटक जाते हैं। पैर के नीचे वाली पतली बर्फ के टूटते ही नीचे खड्ड में गिर पड़ते हैं। रात्रि का तुषारापात उनकी जीवित समाधि बना देता है, जहाँ पड़ा व्यक्ति असहाय एकाकी मरने को ही बाध्य होता है।

बेरी का शौक ही था, जो उसे भयंकर जान लेवा शीत में भी अपने गर्म कोठरी त्यागने को बाध्य करता था। प्रातः होते ही वह हिमशिखर की ओर सूंघते सूंघते निकल पड़ता। अपनी घ्राणेन्द्रियों द्वारा वह मानव गन्ध की आहट लेता था कि कहीं कोई आफत का मारा मुसाफिर तो फँसा नहीं है। ज्योंहीं उसे किसी की गन्ध लगी, तुरन्त वह चीख-चीख कर अपने स्वामी के पास दौड़ कर पहुँचता। मूक प्राणी के इन संकेतों की उपेक्षा उसके मालिक ने कभी नहीं की। कुत्ता जब अपने स्वामी के साथ उसी स्थान पर लौटता तो उसके संकेतों पर ज्योंहीं बर्फ काटी और हटाई जाती, उसमें से लगभग मृत व्यक्ति निकाल लिए जाते। प्रारम्भिक उपचार करके उन्हें मौत से उबार लिया जाता था।

बेरी का दैनन्दिन स्वभाव यही था जिसके बलबूते उसने ४० आफत के मारों को पुनर्जीवित कराया। यह संयोग ही था कि अन्तिम व्यक्ति, जिसको उसने हिम समाधि से उबारा, वह कृतघ्न निकला। बर्फ में पड़े-पड़े वह भूख के मारे इतना छटपटा रहा था कि बाहर निकलते ही उसने अपने जीवन दाता कुत्ते को ही गोली का शिकार इसलिए बना लिया ताकि उसकी क्षुधा पूर्ति हो सके। उसने चालीस को बचाया लेकिन एक मानव की कृतघ्नता ने उसका जीवन अन्त कर दिया। इसी का प्रायश्चित्त वहाँ के नागरिक समुदाय ने उस कुत्ते की कब्र बनाकर किया है।

लोकमान्य तिलक अपने भविष्य के विषय में कभी विचार नहीं करते थे। उन्होंने अपनी भरी जवानी में पूना में न्यू इङ्गलिश स्कूल नामक एक विद्यालय की स्थापना की थी। उसमें कार्य करते हुए वे वेतन के रूप में अपने निर्वाह के लिये केवल ३० रुपये लेते थे। एक दिन उनके एक मित्र ने कहा—'इतनी छोटी—सी राशि में से तो आप अपने देहावसान के बाद शरीर के दाह संस्कार के लिये भी कुछ नहीं बचा सकेंगे।' तिलक जी ने धीरे-गम्भीर स्वर में कहा-'इसकी चिन्ता समाज को होनी चाहिए। यदि लोगों को ठीक प्रतीत होगा तो वे देह का अग्नि-संस्कार कर देंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकांक्षा एवं सामूहिकता की धुरी पर टिका जीवन शकट

जीव जगत का विकास जिन दो गुण विशेषों के आधार पर होता है उनमें से एक है—'स्व' केन्द्रित आकांक्षा एवं दूसरी 'पर' केन्द्रित सामूहिकता। प्रकारान्तर से इन्हीं को स्वार्थ एवं परमार्थ क्रमशः कहा जा सकता है। अध्यात्म की भाषा में तत्ववेत्ता इन्हें आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण के नाम से पुकारते हैं।

आकांक्षा की चमत्कृतियाँ कितनी सशक्त हैं, इसके परिणाम पग-पग पर देखे जा सकते हैं। संकल्पशक्ति, श्रद्धा की प्रचण्ड पुरुषार्थ के रूप में परिणति एवं चिन्तन के बिखराव के एकीकरण से प्रकट होने वाले परिणामों से इनकी एक झलक भर मिलती है। इस पर भी यह नहीं मान लेना चाहिए कि इतने भर से प्रगति-पथ प्रशस्त हो गया। इससे तो एक पक्ष की ही पूर्ति होती है जिसे परिष्कृत व्यक्तित्व कह सकते हैं। यह गाड़ी के एक पहिए के समान है। दूसरा पहिया सक्षम न हो तो बात कैसे बने? दूसरा पक्ष है सामूहिकता या सहकारिता। इस आदान-प्रदान के बिना बहुत छोटे स्तर के अदृश्य प्राणी ही जीवित रह सकते हैं। अन्यथा हर विकसित प्राणी को अन्य सहयोगियों का सहकार उपलब्ध करना और उसके बदले में अपना सहकार प्रदान करना पड़ता है। गर्भावस्था में भ्रूण की स्थिति हो या अण्डे की—शुक्राणु इकाई के रूप में केन्द्रित जीव कण को माता का सहकार अनुदान चाहिए ही। इसके उपरान्त प्रसव से लेकर अपने बलबूते जीवनचर्या चलाने योग्य होने तक की स्थिति प्राप्त करने के लिए जन्मदात्री का संरक्षण परिपोषण चाहिए। सर्वथा हेय स्तर के जीव ही बिना माता के सहयोग के स्वावलम्बी रहते देखे गये हैं अन्यथा जिनका थोड़ा भी विकास हो चुका है, उनमें से चींटी से हाथी तक के समस्त जीवधारियों को आरम्भिक अशक्तता दूर होने तक माता के अंचल का आश्रय तथा आहार के लिए अनुदान चाहिए।

प्राणियों को जो क्षमता, सुविधा अनुकूलता उपलब्ध होती है, उसका एक सीमित अंश ही उनका स्व उपार्जित होता है। शेष तो सहचरत्व के साथ चलने आदान-प्रदान का ही प्रतिफल होता है। चींटी, दीमक, मधु-मक्खी जैसे छोटे जीव अपनी जीवनचर्या एवं कार्य पद्धति की दृष्टि से असाधारण प्रतिभा, दक्षता एवं समर्थता का परिचय देते हैं। इस विशेषता में उनका परोक्ष अंश ही पैतृक एवं परम्परागत होता है। क्रिया कलापों का समूचा कार्य क्षेत्र तो पारस्परिक सहयोग से ही विकसित होता है। उन प्राणियों को समूह से पृथक करके एक-एक करके रहने के लिए बाधित कर दिया जाय तो वे अपनी पैतृक विशेषता को भी क्रियान्वित न कर सकेंगे और उमंगों को चरितार्थ न कर पाने की विवशता अनुभव करते हुए जीवन लीला समाप्त कर देंगे।

बड़े प्राणी समूह बनाकर रहते हैं। उनके अपने परिवार होते हैं। पक्षियों को—वन्य पशुओं को झुण्डों में रहते देखा जाता है। यों वे आपस में उलझते-सुलझते भी रहते हैं फिर भी एकाकी रहने का साहस नहीं करते, क्योंकि सामूहिकता की छत्रछाया में उन्हें अधिक सुविधा, सुनिश्चितता एवं प्रसन्नता की अनुभूति होती है। एक दूसरे से बहुत कुछ सीखते सिखाते हैं। इतना ही नहीं, अप्रत्यक्ष आदान-प्रदान से उनकी जीवनचर्या में असाधारण रूप से सहायक भी होते हैं। जो प्राणी पारस्परिक सहकारिता के लाभ से जितने वंचित रहे, उन्हें उपयोगी होते हुए भी अपने अस्तित्व का खतरा उसी अनुपात से उठाना पड़ा। इसके विपरीत जो झुण्ड बनाकर रहे, वे बन्दर जैसे हानिकारक होते हुए भी अपनी स्थिति मनुष्य के साथ वैर-विरोध मोल लेकर भी बनाये रहे। प्रत्यक्ष है कि सिंह, व्याघ्र जैसे स्व वर्ग द्रोही क्रमशः घटते और संसार से अपना अस्तित्व समाप्त करते चले जा रहे हैं।

मनुष्य की प्रगति में आकांक्षा के उपरान्त दूसरी अद्भुत क्षमता सहकारिता ही है। इसी प्रवृत्ति ने उसे आदिमकाल की वन-मानुष जैसी वीभत्स स्थिति से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उबारकर वर्त्तमान सभ्य एवं सम्पन्न स्तर के प्रतिभाशील, गौरवान्वित मनुष्य के स्तर तक पहुँचाया है। उच्चारण, भाषा, लिपि, चिन्तन उसका अपना निज का उपार्जन नहीं है। इसके पीछे चिरकाल की—असंख्यों की अनुभूतियों एवं उपलब्धियों का अनुदान क्रम चला आ रहा है। मिट्टी के उपलों पर आड़ी-टेढ़ी लकीरें बनाने की प्रक्रिया के सहारे एक ने दूसरे को अपने विचारों से अवगत कराने का जो भोंड़ा सिलसिला चलाया, वही आज सुव्यवस्थित लिपि, भाषा, शब्दकोष आदि के रूप में सामने है। अन्न उगाने, पेड़ लगाने, पशु पालने, आग जलाने, वस्त्र बनाने, घर घरौंदे खड़े करने की विद्या भी अतीत काल में आज के बिजली जैसे आविष्कारों जसी ही उत्साहवर्धक उपयोगी सिद्ध हुई थी। वह समस्त उपार्जन किसी एक व्यक्ति के नहीं थे वरन् अनुभवों का लाभ एक से दूसरे को मिलते-मिलते उस स्थिति तक पहुँचना सम्भव हुआ कि उपरोक्त सुविधा, साधनों से लाभ उठाया जा सके। पहियेदार गाड़ी, तैरती नाव, कम्पास, दीपक आदि का जिन दिनों आविष्कार हुआ होगा, उस दिन आदमी फूला न समाया होगा और अन्य साथी प्राणियों की तुलना में एक बारगी सहस्रों योजन आगे बढ़ गया। यह सर्वथा स्मरणीय है कि उन वरदानों को प्राप्त करने का श्रेय उस सहकारिता की प्रवृत्ति को ही रहा होगा जिसे स्नेह, सहयोग, परमार्थ आदि नामों से भी पुकारा जा सकता है।

समाज की संरचना इसी आधार पर हुई है। कुटुम्ब इसी प्रेरणा से बने। अन्यथा मनुष्य भी मात्र बन्दरों की तरह झुण्डों में तो रहता पर आदान-प्रदान का द्वार न खुलने से अद्यावधि पूर्वजों की तरह ही नर वानर बना रहता।

यहाँ पिछले प्रगति क्रम पर दृष्टिपात इसलिए किया जा रहा है कि भावी प्रगति में सामूहिकता का महत्व अच्छी तरह समझा जा सके और उसकी अपार सामर्थ्य का उपयोग आज के सन्दर्भ में कर सकना सम्भव हो सके। समाज संरचना, वर्ग संगठन, जातीयता, शासन व्यवस्था को सामूहिकता की प्रवृत्ति का सुनियोजित निर्धारण ही समझा जा सकता है। मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा जाता है। इस कथन का तात्पर्य यह है कि उसका इतिहास, वर्त्तमान एवं भविष्य पूरी तरह सामूहिकता—सहकारिता के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ समझा जा सके। मनुष्य अब इस तरह पारस्परिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया पर निर्भर हो गया कि उससे हटकर उसके लिए जीवित रह सकना तक कठिन है।

सभ्यता आकाश से नहीं टपकी है। वह पारस्परिक सहयोग से अनुभव अनुसन्धान के सहारे कमाई हुई प्रक्रिया है। ऐसी प्रक्रिया जिसने मनुष्य के आदिम स्वरूप, स्तर दृष्टिकोण एवं व्यवहार में काया-कल्प जैसा अन्तर उपस्थित कर दिया।

प्रगति के लिए सहकारिता का सिद्धान्त ही सन्तोषजनक और फलप्रद हो सकता है। अन्यथा एकाधिकार, स्वेच्छाचार, संग्रह एवं सर्वजनीन स्तर से अत्यधिक ऊँचे वैभव के फलस्वरूप अनेकानेक विकृतियाँ उत्पन्न होंगी। संग्रही दुर्व्यसन अपनाएँगे और दुरुपयोग की उच्छृंखलता से समाज व्यवस्था में अवांछनीय उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। दूसरे लोग या तो साधन रहित होते हुए वैसी ही नकल करेंगे या फिर ईर्ष्याग्रस्त होकर हानि पहुँचाने के लिए उतारू होंगे। अपराधी आचरण करेंगे।

सामन्तवाद, अधिनायकवाद, पूँजीवाद, आदि कितने ही व्यक्तिवादी तन्त्रों के प्रयोगों और परिणामों को भूतकाल में तथा वर्त्तमान काल में अधिक बारीकी से समझा गया है और लोक चिन्तन तथा मूर्धन्यों का निष्कर्ष एक ही केन्द्र पर एकत्रित हुआ है कि सम्पदा का अधिक मात्रा में उपार्जन एवं अधिक सही उपयोग सहकारी रीति-नीति अपनाने से ही सम्भव हो सकता है। प्रजातन्त्र, समाजवाद जैसे सिद्धान्तों का राजनैतिक क्षेत्रों में इसी आधार पर विकास हुआ है कि मानवी प्रगति के भूतकालीन इतिहास को देखते हुए भावी विकास के लिए भी सहकारिता को हर क्षेत्र में मान्यता दी जाय और उसे आगे बढ़ाने के लिए जहाँ, जिस प्रकार जो सम्भव हो सके, उसके लिए प्रयत्न किया जाय।

जीवन क्षेत्र मात्र अर्थ और शासन तक ही सीमित नहीं है। उसके साथ और भी कितने ही पक्ष जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए कुटुम्ब, विनोद एवं प्रशिक्षण जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन्त्रों पर दृष्टि डाली जा सकती है। इनमें से एक भी ऐसा नहीं है जो एकाकी पुरुषार्थ के सहारे चल सके। कोई व्यक्ति कितना ही समर्थ, सुयोग्य एवं सम्पन्न क्यों न हो, उपरोक्त क्षेत्रों में बिना दूसरों का सहयोग अर्जित किये एक इंच भी आगे बढ़ नहीं सकता।

नये परिवार का आरम्भ विवाह से होता है। विवाह का अर्थ है दो व्यक्तियों का अधिक सहयोगी बनकर एक दूसरे का पूरक बनना और संयुक्त शक्ति उपार्जित करना। यही है वह मूलभूत सिद्धान्त जो परिवार के अन्यान्य सदस्यों पर उनके स्तर के अनुरूप क्रियान्वित किया जाता है। माता और सन्तान, बालक और अभिभावकों के बीच जो आत्मीयता पाई जाती है, उसे उदारता या उच्च-स्तरीय सहकारिता ही कह सकते हैं। अभिभावक बालकों के लिए सुरक्षा, सुविधा के साधन जुटाते हैं और बालक अभिभावकों को आत्म-विस्तार की सेवा साधना की आन्तरिक प्यास को पूरी करके कृत-कृत्य बनाता है।

विनोद कोई अकेला नहीं कर सकता। उसके लिए मनचाहे साथी चाहिए। ताश शतरंज से लेकर खेल-कूदों और प्रतियोगिताओं तक के अनेकों मनोरंजन हैं। उनका आनन्द लेने के लिए सहयोगी तलाश करने के अतिरिक्त और कोई तरीका नहीं। पार्टियाँ, प्रीतिभोज सभा, सम्मेलन, नाटक, सिनेमा जैसे सभी स्तर के विनोद आकर्षणों में कलाकारों एवं दर्शकों की भीड़ जुड़ती और प्रतिभा खपती है। जब ईश्वर तक को मनोरंजन की आवश्यकता पड़ने पर सुविस्तृत सृष्टि गढ़नी और प्राणियों की, देव दानवों की चतुरंगिणी खड़ी करनी पड़ी तो फिर मनुष्य की तो बात ही क्या है। पशु पक्षी तक झुण्ड बनाते और मिल-जुलकर क्रीड़ा-कल्लोल करते पाये जाते हैं।

प्रशिक्षण संस्थानों में छात्रों, अध्यापकों और मध्यवर्ती व्यवस्थापक तथा सूत्र संचालकों का एक अच्छा-खासा समुदाय मिल-जुलकर काम करता है। अभिभावकों की भी उस पर नजर रहती है और पर्यवेक्षकों, समीक्षकों की देखभाल का सिलसिला चलता है। इतनी व्यवस्था बनने पर ही कला, विज्ञान, दर्शन आदि की शिक्षा व्यवस्था ठीक प्रकार चल पाती है। अकेला विद्यार्थी एक कोने में बैठकर, पुस्तकों में सँजोए हुए अनेकानेक मनीषियों की ज्ञान सम्पदा से भी कुछ काम चला सकता है, पर अकेला अध्यापक क्या करे? किसे पढ़ाये?

उत्पादन, व्यवस्था, परिवार, विनोद, शिक्षण जैसे जीवनचर्या के साथ जुड़े हुए अनेकानेक प्रसंगों में पारस्परिक सहयोग की भूमिका का ही वर्चस्व दीखता है। अन्य पक्षों में भी सहयोग के बिना एक कदम आगे बढ़ने की बात नहीं बनती। दैनिक जीवन में काम आने वाले साधनों, उपकरणों में से एक भी ऐसा नहीं है जो एकाकी प्रयत्नों से बन पड़े। अब वह समय चला गया जब अन्न उगाने से लेकर, आटा पीसने और रोटी बनाने तक के काम आदमी स्वयं कर लेता था। पत्तों से या चमड़े से तन ढक लेता था। पढ़ने की आवश्यकता थी नहीं। भूमि, तालाब, एवं वृक्ष वनस्पति का सहारा लेकर दिन कट जाते थे। अब तो माचिस, कपड़ा, जूता, भोजन पकाने के बर्त्तन, तेल, साबुन, नमक, मिर्च, कुँए से पानी निकालने का घड़ा रस्सा जैसी, घोर वन्य प्रदेशों में भी, दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं के लिए अन्यान्य लोगों का सहारा लेना पड़ता है। यह सभी वस्तुएँ ऐसी हैं जिनमें सहकारिता की चमत्कारी शक्ति ही अग्रिम पंक्ति में खड़ी दीखती है।

> झूठे मित्र हमारे साये की तरह होते हैं, जो धूप में चलते समय तो साथ-साथ चलते किन्तु अन्धेरे में साथ छोड़ देते हैं।
>
> —बोवी

सहकारिता की जितनी उपेक्षा होगी, उतने ही अनुपात में पिछड़ापन सिर पर लदता चला जायेगा। उत्कर्ष की बात सोचनी हो तो लगे हाथों इस वास्तविकता को भी ध्यान में रखना होगा कि जिस प्रकार व्यक्तिगत रूप से आकांक्षा का उभार आवश्यक है, उसी प्रकार लोक व्यवहार में जन सहयोग की आवश्यकता अनुभव करने पर सहकारिता की प्रवृत्ति को असाधारण महत्त्व देना और उसे उच्चस्तरीय सिद्धान्तों के अनुरूप बनाकर लोक-चिन्तन में गहराई तक उतारने का प्रबन्ध करना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवपूजा का स्वरूप और प्रतिफल

भगवान एक है। उन्हीं की विशिष्ट विभूतियों को देव नाम दिया गया है। ऐसा नहीं समझा जाना चाहिए कि देवता कोई व्यक्ति विशेष हैं। भगवान की सत्ता में न कोई साझीदार है और न उनका कोई सहायक। इस समूची सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता वह एक ही है। उसके विभिन्न गुणों को विभिन्न देवताओं के नाम से ऋषियों ने पुकारा है—कहा है—

"एको विश्वस्य भुवनस्य राजा"

अर्थात्—एक ही परब्रह्म को विद्वानों ने अनेक नामों से सम्बोधित किया है।

"सर्वखल्विद मेवाहं, नान्यदसि सतानम्"।

—देवी भागवत् १।१५।५५

महाभाग्याद् देवलाया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।

—निरुक्त ७।१।४

अर्थात्—एक ही परमात्मा को बहुत देवताओं के नाम से सम्बोधन किया जाता है।

देवताओं के अनेक नाम हैं। यहाँ तक कि उन्हें ३३ या ३३ कोटि भी कहा है। इनमें पाँच प्रमुख हैं:—

(१) सूर्य (२) गणेश (३) ब्रह्मा (४) विष्णु (५) महेश।

यह शरीर के पाँच तत्वों अथवा चेतना के पाँच प्राणों के प्रतीक माने जाते हैं। सूक्ष्म शरीर में पंचकोश हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं और कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच हैं। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इन महान शक्ति स्रोतों को देव संज्ञा दी गई हैं।

महत्वपूर्ण तथ्यों का स्मरण दिलाने के लिए उनके प्रतीक बनाने की परम्परा है। ऐसा भी है कि उनसे हमें लाभ मिलता है उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए उनकी प्रतीक पूजा की जाती है। इन सब बातों का समन्वय करते हुए देव पूजा का प्रचलन हुआ है।

पचतत्वों का हम सदुपयोग करें, उन्हें अनावश्यक मात्रा में नष्ट न करें। मलीन न होने दें। जब जितने उपयोग की आवश्यकता है तब उन्हें बरतने में कृपणता भी न करें ?, आदि बातों की स्मृति दिलाने के लिए पंच-देव पूजा का विधान है।

मिट्टी, पानी, हवा, गर्मी, आकाश इन पंच देवों की सहायता से खोया हुआ आरोग्य फिर से प्राप्त हो सकता है। यह विद्या प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकों में विस्तार पूर्वक बताई गई है। साथ ही यह भी कहा गया है कि इनके सदुपयोग करने की प्रक्रिया अपनाते हुए प्राकृतिक जीवन जिया जाय तो निरोग एवं दीर्घजीवी रहा जा सकता है।

पाँच प्राण पाँच सद्गुणों के प्रतीक हैं—श्रम निष्ठा, मनोयोग, साहस, सज्जनता, एवं उदारता। यह पाँच गुण पाँच प्राणों से सम्बन्धित हैं इन्हें व्यावहारिक अध्यात्म भी कह सकते हैं। पाँच उप प्राणों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि सद्गुणों का समावेश है। इनकी आराधना की जाय अर्थात् जीवन क्रम में इनका प्रयोग समावेश रखा जाय तो इनका प्रतिफल हाथों-हाथ व्यक्तित्व को सुविकसित रूप में उपलब्ध होता है। यह शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य सम्वर्धन की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है।

गणेश सद्बुद्धि के देवता हैं सूर्य प्रखरता तेजस्विता के। ब्रह्मा सृजन प्रिय हैं। विष्णु परिपोषण के। शिव परिवर्त्तन एवं अनुशासन के। यह सभी प्रयास ऐसे हैं जिनके लिए सदा सर्वदा सचेष्ट रहना चाहिए। विद्या बुद्धि को विकसित करने के लिए अध्ययन, परामर्श एवं अनुभव का सम्पादन किया जाता है। यह गणेश पूजा हुई। साहसिकता, बलिष्ठता, प्रतिभा आदि को तेजस्विता कहते हैं। अपने व्यक्तित्व में इन विभूतियों का समावेश करना सूर्य पूजा है। हमारी कार्य पद्धति सृजन प्रिय हो। निर्माण कार्यों में समुचित अभिरुचि का होना विष्णु पूजन है। अनुशासन का पालन समयानुसार परिवर्त्तन की सूझ-बूझ। यह शिव आराधना है। दैवी गुणों को जीवन में समाविष्ट करना ही देव पूजा है। सद्गुणों की संख्या और प्रकृति असीम है पर उनमें पाँच प्रमुख हैं। उन्हें अपनाते हुए हम देव पूजा का सत्परिणाम निरन्तर प्राप्त करते रह सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृश्य एवं अदृश्य शरीर

भौतिक विज्ञान के अनुसार चेतना का तात्पर्य उस प्राण विद्युत से है जो शरीर के हर क्षेत्र में ज्ञान-तन्तुओं के साथ प्रवाहित होती रहती है। इसका केन्द्र मस्तिष्क माना गया है। संगठित ऊतकों द्वारा उसका उत्पादन होता है अथवा कुछ मस्तिष्कीय केन्द्र उसे मिल-मिलकर उत्पन्न करते हैं। यह अब पूर्व काल की तरह विवादास्पद नहीं रहा और यह माना जाता है कि दोनों ही कारण एक-दूसरे के पूरक हैं। इनमें किसे प्रमुख माना जाय, किसे गौण, इस विवाद को अनसुलझा छोड़ देने में भी हर्ज नहीं। दोनों में से एक कारण ही उभर पड़े तो मृत्यु निश्चित है।

विज्ञान की आरम्भिक प्रगति के युग में कहा जाता था कि प्राणी समुदाय एक विशेष प्रकार का रासायनिक गुच्छक है और अपनी वंश परम्परा के घटकों द्वारा किये जाने वाले मार्ग दर्शन पर अपना स्वभाव बनाता और रीति-नीति अपनाता है। शरीर के साथ ही चेतना का अन्त बहुत समय तक माना जाता रहा। अणुओं के विघटन के साथ-साथ चेतना की आत्यन्तिक मृत्यु मानी गई। यों यह नास्तिकता की पूर्ववर्ती मान्यता है पर इसमें एक प्रतिशत की कमी है। शरीर के न रहने पर उनके घटक किसी के पेट में जाते भूमि या जल में पड़ते और भटकते-भटकाते कोई खाद्य बनते हैं, उसे जो खाता है उसमें यदि पूर्ववर्ती प्राणी के जीवनकोश पहुँचे हैं तो उसी आधार पर पुनर्जन्म हो जाता है। यह आत्मा का नहीं वंशानुक्रम घटकों का पुनर्जन्म है। यह घटक प्रकृति के अंग माने गये। उनके पीछे किसी चेतन तत्व की सत्ता स्वीकार नहीं की गई।

इसी अर्थ में भौतिकवाद को नास्तिकवादी या नास्तिकवाद को भौतिकवाद माना गया था और कहा गया था कि शरीर ही आत्मा है। शरीर के साथ ही आत्मा का भी अन्त हो जाता है। इस कथन के प्रतिपादन और समर्थन में पिछली शताब्दी में इतना बल दिया जाता रहा मानों उनने कोई आत्यन्तिक सत्य हस्तगत कर लिया हो और उन लोगों को पूरी तरह उपहासास्पद ठहरा दिया गया हो जो आत्मा और परमात्मा की कथा-गाथा कहते रहते थे।

बहुत समय नहीं गुजरा कि उस खोज को बालहठ समझा जाने लगा और इस पर नये सिरे से खोज करने की आवश्यकता अनुभव की गई कि मरने के बाद भी चेतना का अस्तित्व रहता है या नहीं एवं एक शरीर में रहते हुए भी चेतना दूसरे शरीर में प्रवेश करने या प्रभावित करने में समर्थ हो सकती है या नहीं।

पाया यह गया कि शरीर में विद्युत रहती है। यह मान्यता ठीक होते हुए भी उसमें यह परिशिष्ट और जोड़ना पड़ा कि प्राण विद्युत का एक घेरा शरीर के बाहर भी घिरा रहता है, जैसे सूर्य के घेरे से बाहर उसकी किरणों का विस्तार होता है। जिस प्रकार बहुत से तारे चिरकाल पूर्व मर गये पर उनका प्रकाश अभी भी धरती पर आ रहा है उसी प्रकार मनुष्य का शरीर मर जाने पर भी उसका तेजोवलय उसी पूर्व स्थिति में उसी आकार में बना रहता है। स्थिति से तात्पर्य यह है कि उसका स्वभाव प्रायः बहुत कम बदलता है और इच्छा अभिरुचियों का प्रवाह पूर्ववत् बना रहता है रागद्वेष भी पूरी तरह नहीं छूटता। मरणोपरान्त बना रहने वाला यह प्राण शरीर अब विज्ञान की अनेक कसौटियों पर अपनी सत्ता सिद्ध करने में समर्थ हो चुका है। इसे अदृश्य या अशरीरी शरीर कह सकते हैं। वह अस्थि मांस आदि प्रत्यक्ष पदार्थों का बना न होकर विद्युत तरंगें जैसा होता है। इतने पर भी उसका अस्तित्व सर्वथा समाप्त नहीं होता और उसका परिचय समय-समय पर इन्द्रिय गम्य न होते हुए भी अनुभव गम्य बना रहता है। स्वेच्छापूर्वक उदासीनता अपनाकर वह किसी अन्य प्रिय विषय की ओर भी लुढ़क सकता है और छोड़े हुए जीवन के पदार्थों व्यक्तियों एवं घटनाओं के साथ विशेष लगाव होने रप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उसी पूर्व भूमिका के इर्द-गिर्द परिभ्रमण कर सकता है। भीतर से उत्तेजना उमंगें तो वह किन्हीं के सम्मुख अपने वायुभूत शरीर को प्रकट भी कर सकता है। अपनी मनःस्थिति का परिचय भी दे सकता है और कुछ कहना हो तो वह भी अवगत करा सकता है।

इस प्रयोजन में प्रेरक सत्ता की क्षमता अधिक होती है और ग्रहण कर्त्ता की स्वल्प। जिस प्रकार मैस्मेरेजम हिप्नोटिज्म में प्रयोक्ता की सामर्थ्य ही अपनी इच्छा शक्ति की प्रमुखता का परिचय देती है, वही बात यहाँ भी है। ग्रहणकर्त्ता को, सामान्य, साधारण, सहमत मनःस्थिति का होना चाहिए उसे प्रतिरोध खड़ा नहीं करना चाहिए। इतने भर से हिप्नोटिज्म प्रयोगों का सिलसिला चल पड़ता है। मनुष्य के जीवन काल में अथवा मृतक हो जाने पर प्राण शरीर के तेजोवलय का अदृश्य अस्तित्व बना रहता है। वह अपना परिचय जिस भी सम्बन्ध के अनुरूप देना चाहे दे सकता है। अभिभावक—सन्तान, मित्र-मित्र, पति-पत्नी जैसे रिश्ते प्रमुख होते हैं उनमें अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठता पाई जाती है। इस प्रकार की मनःस्थिति वाला प्राण शरीर अपने प्रिय सम्बन्धी को अपने अस्तित्व का परिचय सरलतापूर्वक दे सकता है। यदि घोर शत्रुता हो तो भी आक्रामक या भयावह झलक झाँकी देता रह सकता है। यदि अन्यमनस्कता हो तो फिर मिलन-परिचय की बात झीनी पड़ जायगी और बहुत समय बीत जाने पर वह उपेक्षा के गर्त में भी जा गिरेगी। स्मरण रखने योग्य बात यह है कि जीवित पक्ष का आग्रह आमन्त्रण उतना काम नहीं करता जितना प्राण शरीरधारी का। फिर सूक्ष्म शरीर की प्रौढ़ता भी आवश्यक है। वयोवृद्ध चिर रोगी, उथले सम्बन्धों वाले, इस प्रकार की मिलन चेष्टा नहीं करते। करते भी हैं तो उनकी शिथिलता अन्य मनस्क स्थिति में रहने के कारण, स्वल्प इच्छा शक्ति के कारण अपनी ओर से कोई प्रभावी हलचल उत्पन्न नहीं कर पाती। स्वप्न में कभी स्मरण हो आने जैसे प्रसंगों में ही उथला-सा मिलन हो सकता है।

प्रौढ़ता की मनःस्थिति में प्राण शरीर अपने प्रियजनों को कुछ लाभदायक परामर्श भी दे सकते हैं। सहयोग करने सहायता देने, कष्ट से उबरने जैसी क्षमता भी उनमें देखी गई है, किन्तु सामर्थ्य की पूँजी स्वल्प रहने के कारण वे कोई वैसी सहायता नहीं दे सकते जैसी कि जीवित अवस्था में अपने बुद्धि कौशल अथवा साधन वैभव के सहारे दे सकते हैं। हाँ यदि शत्रुता या प्रतिशोध का भाव हो तो डराने, तनाव उत्पन्न करने, रुग्णता में धकेल देने, बुद्धि भ्रम उत्पन्न करने जैसे संकट खड़े कर सकते हैं। शत्रुता का बदला एक सीमा तक लिया जा सकता है। विश्वास घात, हत्या, आत्महत्या, छल बहकावा आदि की घटनाओं को प्रायः प्रेतात्माएँ भूल नहीं पातीं और जिस-तिस प्रकार प्रतिशोध लेकर अशान्ति उद्विग्न करती रहती हैं।

यह विवरण स्थूल शकट की छत्र छाया में बने हुए सूक्ष्म शरीर का है। आमतौर से पुनर्जन्म से पूर्व पिछला प्राण शरीर समाप्त प्रायः हो जाता है और नये शरीर के साथ नई प्राण विद्युत का तेजोवलय बनना बनाना आरम्भ हो जाता है। किन्तु अपवाद स्वरूप ऐसा भी होता है कि पुराने प्रौढ़ शरीर की छाया मजबूत बनी रहे और नये की विनिर्मित होने में मन्द गति से काम कर रही है तो पहले जन्म की घटनाएँ, स्मृतियाँ बनी रहती हैं और ऐसे बालक अपने पुराने जन्म का प्रमाण परिचय देने और विवरण बताने लगते हैं। किन्तु यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रहती। दस वर्ष का होते-होते बालक विगत जन्म की स्मृतियों को भुला बैठता है। तब तक नया तेजोवलय परिपक्व होने लगता है और जो बचपन में याद था उसे भी भूल जाता है।

परामनोविज्ञान की पहुँच और पकड़ अभी इसी सीमा तक है। जीवित शरीर के साथ काम करने वाले तेजोवलय की प्रौढ़ता के आधार पर ओजस्, तेजस्, वर्चस् वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इस आधार पर व्यक्तित्व का निखार और प्रतिभा का विस्तार होता है। सामान्य जीवन में इस बढ़ोतरी के आधार पर मनुष्य साहसी, पराक्रमी होता है। शरीर दुर्बल होने पर भी उसमें प्रभावोत्पादक क्षमता बढ़ी-चढ़ी होती है। किन्तु यदि इस तत्व की कमी रहे तो व्यक्ति उदास, नीरस, निराश, थका-मांदा दिखाई पड़ता है। यह ओजस् किन्हीं में जन्मजात रूप से अच्छी मात्रा में होता है। कुछ उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्नपूर्वक बढ़ा लेते और कुछ निषेधात्मक चिन्तन से ग्रस्त, भयभीत, शंका शंकित रहने के कारण उसे क्रमशः खोते, गँवाते चले जाते हैं।

परामनोविज्ञान के अन्तर्गत मस्तिष्कीय प्रसुप्त शक्तियों का जागरण—शरीर के भीतर ठुसी हुई प्राण विद्युत और बाहरी क्षेत्र में तेजोवलय के रूप में अनुभव की जा सकने वाली क्षमता का पता लगाया गया है। उससे यह जाना गया है कि उसकी उन्नति या अवगति की स्थिति में मनुष्य किस प्रकार लाभान्वित होता या घाटे में रहता है। इससे आगे के क्षेत्र में परामनोविज्ञान की पहुँच नहीं है। शरीर विज्ञान भौतिक विज्ञान है। इस लिए उससे सम्बन्धित प्रकट और अप्रकट शक्तियों तथा गतिविधियों के प्रमाणों का जो संग्रह किया गया है उसे शरीर क्षेत्र का भौतिक विज्ञान ही कह सकते हैं। भले ही वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष।

"फेट" मासिक पत्रिका में मध्य अफ्रीका की कोलोनियल सर्विस के उच्च पदाधिकारी क्वीलन ह्येर ने आप बीती एक घटना प्रकाशित कराई है। उसे सूचना मिली कि किवि नदी को पार करके हाथियों का एक बड़ा झुण्ड मैदानी इलाके में उतर रहा है और उस क्षेत्र की वनस्पतियों को तहस-नहस करने पर उतारू है। उसे तत्काल पीछे लौटाना आवश्यक था। इस लिए क्वीलन अपनी साज-सज्जा के साथ उधर चलने की तैयारी करने लगे।

उसी बीच उनकी भेंट उस क्षेत्र के प्रख्यात तांत्रिक 'निगी' से हो गई। उसने विश्वास दिलाया कि उनकी कठिनाई को वह कुछ ही देर में हल कर देगा। उसने चीते की खाल से अपना शरीर ढका और एक वृद्ध के रूप में नियत स्थान पर जा पहुँचा। एक विचित्र ढोल बजाया। फलतः हाथियों का झुण्ड जिधर से आया था, उसी ओर वापस लौट गया।

इस घटना में न कोई दुराव था न षडयन्त्र। आँखों देखी घटना और परिस्थिति को देखते हुए उसे विश्वास करना पड़ा कि जीवित मनुष्य की काया में घुली हुई किसी शक्तिशाली सत्ता का यह चमत्कार था।

ऐसी ही अनेक प्रत्यक्षदर्शी और आजमाई घटनाओं का संकलन प्रख्यात मनोविज्ञानी गर्नों पाडमेल्या मायर्स ने ग्रन्थ रूप में प्रकाशित किया है। नाम है उसका—"फिनामिना आफ दि लिविंग"। उसके प्रथम संस्करण में १२०० पृष्ठ थे। पर अगले संस्करण में बढ़ी हुई घटनाओं के २०० पृष्ठ और जोड़े गये। इसमें ७०० से अधिक ऐसी घटनाओं का उल्लेख है जिसमें मनुष्य की अदृश्य शक्तियों द्वारा प्रस्तुत किये गये चमत्कारों का उल्लेख है। उन उल्लेखों में वह सब भी अंकित किया गया है कि घटनाओं की वास्तविकता को किन सुयोग्य पर्यवेक्षकों की समितियों के सम्मुख किस प्रकार जाँचा गया और जब बात को पूरी तरह विश्वस्त मान लिया गया तभी उनका प्रस्तुत पुस्तक में उल्लेख किया गया।

'ब्रिटिश सोसाइटी फार साइकिक रिसर्च' में ऐसी घटनाओं का अपने प्रकाशन में उल्लेख किया है कि अमुक व्यक्ति इच्छा पूर्वक अपने सूक्ष्म शरीर को रात्रि के समय मंगेतर के यहाँ ले जा पहुँचा। उसके बाल छुए। इसकी पुष्टि मंगेतर ने भी की।

ऐसे ही विवरणों का संकलन फ्रांसीसी मनोविज्ञान वेत्ता डी० रोकास ने भी अपनी पुस्तक में किया है। जर्मनी की द्विमासिक पत्रिका 'डेर ब्लाक' में लारडल की वर्णित उस घटना का उल्लेख है जिसमें उसने आर्कविशाप के चौके में उस समय क्या पक रहा है यह बताया है तभी ही यह भी कहा--ठीक इसी समय सोने की अँगूठी पकाने वाली से खो गई है और वह कोयले की टोकरी में है।

हर बैंकर की जर्मन पुस्तक 'गैस पेंस्टर एण्ड स्यूक' में विस्तार से लिखा है कि किस प्रकार उसी का छाया पुरुष उसके उलझन भरे गणित को हल करके गायब हो गया था।

परा शक्तियों की अन्वेषक श्रीमती एलीन जे० गैरेट ने अपनी पुस्तक "माई लाइफ एण्ड द सर्च फार दि मीनिंग आफ मीडियमशिप" में ऐसे अनेक विवरणों का जिक्र कर चुकी है जिनसे प्रतीत होता है कि मनुष्य उतना ही नहीं है जितना कि दीख पड़ता है। उसमें अदृश्य क्षमताओं का प्रचुर भण्डार भी भरा पड़ा है जिसे अभी कुरेदा नहीं गया है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी प्रसुप्त एवं जागृत अतीन्द्रिय क्षमताएँ

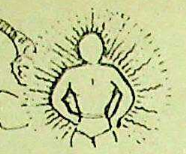

देखने और छूने पर मनुष्य की काया एक ही आवरण से आच्छादित दीखती है। पर वस्तुतः ऐसा है नहीं। शवोच्छेद करने पर उनके अनेक घटक अपनी-अपनी जगह पर अवस्थित और एक दूसरे के साथ सम्बद्ध दीख पड़ते हैं। अस्थि पंजर के ढाँचे के साथ लिपटी हुई अनेकों इकाइयाँ अपना-अपना काम करती दिखाई पड़ती हैं। साँसें चलने तक यह ढाँचा जीवित रहता है और हृदय एवं मस्तिष्क की गतिविधियाँ बन्द होते ही यह समझ लिया जाता है कि मृत्यु हो गयी। तब काया को येन-केन प्रकारेण नष्ट करने की आवश्यकता पड़ती है अन्यथा उसके भीतर से कृमि उत्पन्न होकर उसे खाते और समाप्त कर देते हैं।

यह प्रत्यक्ष काया की बात हुई। इसी के अन्दर सूक्ष्म शरीर है जिसका आरम्भ माता की उदरदरी में आरम्भ होता है और श्मशान भूमि में उसकी समाप्ति हो जाती है। पर बात इतने तक सीमित नहीं है। पुरातन मान्यताओं के अनुसार मरणोत्तर जीवन बना रहता है। भूत, प्रेत, स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म आदि का अस्तित्व यह बताता है कि प्रत्यक्ष काया का अस्तित्व समाप्त हो जाने पर परोक्ष काया का अस्तित्व बना रहता है। जीवन काल में भी स्वप्न देखने के सम्बन्ध में कभी यही मान्यता थी कि शरीर से बाहर निकलकर सूक्ष्म शरीर कहीं परिभ्रमण के लिए निकल जाता है और वहाँ जो कुछ देखता है उसे स्मृति के सहारे आँख खुलने पर बताता है। यह मान्यताएँ पुरानी हुईं और किम्वदन्ती के रूप में प्रचलित हैं फिर भी पता चलता है कि अस्थि पंजर के अतिरिक्त किसी सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व की मान्यता चिरकाल से चली आ रही है। मरण के उपरान्त परिवार वालों द्वारा जो क्रिया-कृत्य किये जाते हैं वे उस उद्देश्यपूर्ण शरीर की सत्ता को मान्यता देते हुए ही किये जाते हैं।

योगाभ्यास द्वारा सूक्ष्म शरीर को विकसित, सशक्त एवं क्रियान्वित करने के कतिपय विधि-विधान हैं। उसके आधार पर इस प्राण सूक्ष्मता के अन्तर्गत कोई भेद-प्रभेद भी बताये जाते हैं। मोटे तौर पर इन्हें सूक्ष्म और कारण कहा जाता है। त्रिविधि शरीरों के अतिरिक्त एक और सिद्धान्त है जिसे पंचकोश कहते हैं उन्हीं को थोड़े भेद-उपभेद से षट्चक्र प्रकरण कहा गया है। कुण्डलिनी विज्ञान में षट्चक्र की प्रक्रिया आती है। इस विभाजन के आधार पर क्षमताओं का विभाजन भी है और जिस क्षमता से जो प्रयोजन सधता है उसका विवरण भी। अभिवर्धन और उपयोग की कार्य पद्धति को सूत्र रूप में वैदिक एवं तान्त्रिक विधि-विधानों ने अपने-अपने ढंग से बताया है। अनुभवियों की गुरु परम्परा के आधार पर साधक की मनःस्थिति तथा उपयोग से सम्बन्धित परिस्थितियों का ध्यान रखकर चलने पर यह पगडण्डियाँ गुरु परम्परा भी बन जाती हैं। कभी कोई एक राजमार्ग भी रहा होगा, पर इन दिनों देश, काल, पात्र का ध्यान रखते हुए अपनाये गये अनुभवों और हस्तगत हुए परिणामों को ध्यान में रखते हुए काम चलाने का प्रचलन है।

दूसरा मार्ग परामनोविज्ञान का है उसके अन्तर्गत अद्भुत घटनाओं की प्रामाणिकता एवं सम्भावना ही जाँची जाती है। यह सब किस साधना या प्रक्रिया के आधार पर सम्भव हुआ इस ओर अधिक ऊहापोह नहीं हुआ है। परामनोविज्ञान इस अन्तर के सम्बन्ध में मौन है। उसे विलक्षणताओं से सम्बद्ध माना जाता है। इन्द्रिय जन्य सामान्य क्रिया-कलाप का व्यतिक्रम करके जो अतीन्द्रिय क्षमताएँ यदा-कदा—जहाँ-तहाँ दीख पड़ती हैं, उन्हीं के सम्बन्ध में यह टोह ली जाती है कि वह घटनाक्रम वास्तविक हैं या अवास्तविक।

अवास्तविक अर्थात् इन्द्रजालिक। जादूगरी, हथफेरी भ्रम जंजाल, कइयों द्वारा मिल-जुलकर रचा गया षड़यन्त्र। इस आधार पर भी ऐसे घटनाक्रम गढ़े जा सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जो लोगों को दैवी चमत्कार जैसे प्रतीत हों, पर वस्तुतः उनके पीछे छद्म चातुर्य ही काम कर रहा है। परामनोविज्ञान का उद्देश्य है अतीन्द्रिय स्तर के बीच पड़ने वाले क्रिया-कलापों को वैज्ञानिकों, बुद्धिवादियों एवं छिद्रान्वेषियों के तत्वावधान में सत् असत् का निर्णय करना। अभी परामनोविज्ञान इतनी ही भूमिका निभा रहा है। आगे चलकर उसे यह देखना पड़ेगा कि यदि वस्तुस्थिति के बारे में निश्चिन्तता हो जाय तो फिर अगले कदम में यह देखा जाय कि ऐसे अद्भुत घटनाक्रम क्योंकर घटित होते हैं और उनकी पृष्ठभूमि में विज्ञान के कौन से नियम काम करते हैं।

भौतिक विज्ञान के अन्तर्गत अभी तक जो नियम और विधान हस्तगत हुए हैं, उनकी प्रामाणिकता परख ली गई है, पर यह नहीं समझा जाना चाहिए कि जो जान लिया गया है वह पूर्ण या पर्याप्त है। अभी प्रकृति के रहस्यों को और अधिक खोजा जाना और उनके पीछे काम करने वाले विषयों का बहुत कुछ रहस्योद्घाटन होना बाकी है। प्रयोग परीक्षण के उपरान्त ही उनकी यथार्थता विज्ञान की कोई सुनिश्चित धारा मानी जा सकेगी। अध्यात्म के प्रयोग गुरुगम्य हैं। उन्हें वैज्ञानिक प्रयोग परीक्षणों के लिए इस प्रकार प्रस्तुत नहीं किया गया है कि अविश्वासियों को विश्वास हो सके। किन्तु परामनोविज्ञान ने अपना कार्यक्षेत्र दृश्य को प्रामाणिक तक सीमित भले ही रखा हो पर वे उसकी गहराई में प्रवेश करते हैं और देखते हैं कि इस कथन के पीछे कोई छद्म तो काम नहीं कर रहा है।

अतीन्द्रिय क्षमताओं के अस्तित्व की चर्चा चलाते हुए और उनके प्रमाण संकलित करते हुए लम्बा समय हो गया। दूर दर्शन, दूर कथन, भविष्य की जानकारी, विगत का घटनाक्रम आदि की असंख्यों घटनाएँ घटित होती देखी गई हैं। जिन व्यक्तियों में ये विशेषताएँ थीं उनने योगी या योगाभ्यासी होने का दावा नहीं किया, इसलिए निष्कर्ष यह निकाला गया है कि मस्तिष्क के जो पक्ष व्यवहार में नहीं आते, वे यदा-कदा अनायास ही सजग हो उठते हैं और अपनी विशेष क्षमताओं का परिचय देने लगते हैं। स्वप्नों की सार्थकता, सम्भावनाओं का पूर्वाभास, सुदूर क्षेत्र में घटित हुए घटनाक्रमों का विवरण जान पाना अचेतन मस्तिष्क की किन्हीं रहस्यमयी क्षमताओं का जागरण माना गया है। ऐसा किन्हीं पशु-पक्षियों में भी होता है। वर्षा, तूफान, भूकम्प आदि आने की पूर्व सूचनाएँ कितने ही पशु पक्षियों को सही रूप में मिल जाती हैं और वे उसी सुनिश्चित सूचना के आधार पर अपना बचाव करने—स्थान बदलने लग जाते हैं। कुत्तों की घ्राणशक्ति का उपयोग करने के लिए शिकारी लोग उन्हें पालते थे और अब जासूसी खोज-बीनों के लिए उन्हें पुलिस द्वारा प्रयुक्त किया जाता है। गर्भाधान की उत्तेजना भी गन्ध विशेष के माध्यम से मिलती थी। फूल से मधु बना लेने का एक विशेष तन्त्र मधुमक्खियों के भीतर पाया जाता है। चींटी, दीमक आदि आकार में छोटी और किसी शिक्षा से रहित होते हुए भी अपने समुदाय के ऐसे नियमोपनियम बनाती है मानो वे किसी सुसभ्य समुदाय की विधिवत् ट्रेनिंग लिये हों। ऐसी ही अनेक विलक्षणताएँ कितने ही पशु-पक्षियों एवं कीड़े-मकोड़ों के सम्बन्ध में पाई गई हैं, यह सब आश्चर्यजनक होते हुए भी विज्ञान ने इतना ही माना है कि मस्तिष्क के किन्हीं अनभ्यस्त प्रसुप्त कोष्ठकों का जागरण है, जो न्यूनाधिक मात्रा में सभी में होता है। जिनके अंकुर बड़े हो जाते हैं वे प्रख्यात हो जाते हैं और चमत्कारी समझे जाने लगते हैं। कारण का विवेचन करते हुए इतना ही कहा गया है कि घटनाएँ अथवा वस्तुएँ इस निखिल ब्रह्माण्ड में सूक्ष्म तरंगों के रूप में अपनी हलचलें चलाती रहती हैं। उनके तारतम्य का जो सही अनुमान लग सकने योग्य मस्तिष्कीय क्षमता के अभ्यस्त हो जाते हैं वे अपने में ऐसी विशेषताओं का परिचय देने लगते हैं। यह क्षमताएँ अमुक अभ्यास करने से ही जागृत हों, यह आवश्यक नहीं। किन्हीं में वे अनायास ही जागृत हो जाती हैं और लोगों को अचम्भे में डालती हैं।

रूस की एक महिला नेल्या मिखाइलोवा आँखों में पट्टी बाँधकर अँगुलियों से छूकर पुस्तकें पढ़ देती है और जहाँ-तहाँ रंगों की भिन्नता का प्रयोग हुआ है उसका विवरण बता देती है। इसका परीक्षण वैज्ञानिकों की कितनी ही परीक्षा गोष्ठियों के सम्मुख हो चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंग्लैण्ड में एक व्यक्ति आँख का काम नाक से लेता था। और गन्ध के आधार पर दृश्य को पहचानने की परीक्षा में सफल हुआ था। आगे पीछे की घटनाओं को बताने में कितनों ने ही असाधारण ख्याति प्राप्त की है। कुछ व्यक्ति धरती के भीतर पाये जाने वाले जल या धातु भण्डार (डाउजिंग) का पता बताने में सफल हुए हैं।

योगाभ्यास के नाम पर कई जादूगर विषपान करते, हृदय की धड़कन रोकते; समाधि लगाते देखे गये हैं। इन्हें भी मनोबल का चमत्कार कहा जाता है। सरकस के कलाकार शरीर को साधने और उसका बैलेंस सम्भाले रहने की कितनी ही अद्भुत क्रियाओं का अभ्यास कर लेते हैं इस आधार पर वे दर्शकों को आकर्षित करते और स्वयं अच्छी आजीविका कमाते हैं। वे इस कौशल के पीछे मनोबल और नियमित अभ्यास के आधार पर उपलब्ध हुई प्रवीणता को ही कारण बताते हैं। इसमें वे किसी योगाभ्यास का दावा नहीं करते और न उनका रहन-सहन, खान-पान, ही ऐसा होता है जिन्हें योगी लोग संयम साधना के रूप में अनिवार्यतः अपनाया करते हैं। उन्हें किसी भी तरह तपस्वी, योगी नहीं कहा जा सकता।

स्थूल—दृश्य—शरीर के विशेषतया मस्तिष्क के—कितने ही घटक ऐसे हैं जिन्हें यदि साधारण क्रिया-कलाप की सीमा से आगे बढ़कर अभ्यास क्षेत्र में विशेष पराक्रम करने का अवसर मिले तो वे अपनी प्रतिभा का ऐसा विशिष्ट परिचय देने लगते हैं कि अजनबी के लिए उसमें आश्चर्य ही आश्चर्य दृष्टिगोचर होने लगे। कुछ समय पूर्व जब नट विद्या का प्रचलन था तो ऐसे लोग गाँव-गाँव में अपने तमाशे दिखाते थे जिसमें जान जोखिम का खतरा प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता था। अब भी वे कलाएँ प्रख्यात जादूगरों और किन्हीं-किन्हीं सरकस वालों की कृतियों में दृष्टिगोचर होती हैं। यों इनमें इन्द्रजालिक चालाकी का भी सम्मिश्रण होता है पर सर्वथा यह नहीं कहा जा सकता कि इस निमित्त उन्होंने शारीरिक या मानसिक अभ्यास विशेष रूप से नहीं किये हैं। खेल प्रतियोगिताओं में समर्थ शरीर वाले भी हर खेल में विजयी नहीं हो सकते वे उन्हीं में कमाल दिखाते हैं जिनमें पहले से अभ्यास कर रहे होते हैं और प्रवीणता हस्तगत कर लेते हैं। शरीर संरचना में नियोजित हर घटक की स्थिति ऐसी है कि वह सामान्यतया उतनी ही प्रवीणता प्राप्त करता है जितना कि उसे आये दिन काम करना पड़ता है। यदि इससे भिन्न प्रकार का काम करना पड़े तो उनकी स्थिति साधारण या अनगढ़ होते हुए भी वे अपने विषय में पारंगत तो हो ही जाते हैं। वन प्रदेश में रहने वाले आदिवासी लोग तीर-कमान चलाने में इतने प्रवीण होते हैं कि शेरों और सुअरों का शिकार कर लेते हैं। नारियल, खजूर, सुपाड़ी आदि तोड़ने वाले उन ऊँचे और सीधे वृक्षों पर तेजी से चढ़ते उतरते रहते हैं। यही बात आहार-विहार के सम्बन्ध में भी है। जिसके कारण साधारण लोगों को तत्काल जुकाम होता या लू मारती है। उसी वातावरण में कुछ लोग पतली लँगोटी लगाते, जीवन भर भ्रमण करते रहते और किसी रोग के शिकार नहीं होते। यह शरीरगत मांसपेशियों की स्थिति का विवेचन है, फिर मस्तिष्क का तो कहना ही क्या, वर्तमान स्थिति में हम मस्तिष्कीय क्षमता का ७ प्रतिशत भाग काम में लेते हैं। ९३ प्रतिशत ऐसा है जिसे विस्मृत, अनभ्यस्त प्रसुप्त या उपेक्षित ही कह सकते हैं यदि इस प्रसुप्ति को जागृति में बदला जा सके तो यह सामान्य सूक्ष्म शरीर ही ऐसे करतब दिखा सकता है जैसा कि कीर्तिमान स्थापित करने वालों का पराक्रम देखकर हमें चमत्कृत रह जाना पड़ता है।

ज्ञानेन्द्रियाणि च मनश्च मनोमयः स्यात्कोशो ममाहमिति वस्तु विकल्प हेतुः।
संज्ञादि भेद कलनाकलितो बलीयांस्तत्पूर्वकोशमभिपूर्य विजृम्भते यः।। विवेक-१६६

अर्थात्—'मैं' 'मेरा' आदि निश्चयों का कारण 'मन' और ज्ञानेन्द्रियाँ ही 'मनोमय कोश' हैं। यह विभिन्न रूपों और क्रियाओं के आधार पर विभिन्न नामों से जाना जाने वाला, बड़ा बलवान् और अन्नमय तथा प्राणमय कोशों को व्याप्त किये रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठती आयु के आवेशों का शमन

किशोरावस्था से लेकर परिपक्व यौवन काल आने तक जहाँ मांस पेशियों और ऊतकों में दृढ़ता आती है वहाँ एक अनुपयुक्तता यह भी बढ़ती पाई गई है कि जल्दबाजी, नाराजी, उत्तेजना, अविश्वास, आशंका जैसे दुर्गुण उपज खड़े होते हैं।

यौवन के उभार में कुछ लज्जाजनक अवयवों में उभार आता है और उन्हें सतर्कता पूर्वक ढकने की आवश्यकता होती है। छोटे बच्चे कभी-कभी नंग धड़ंग भी फिरते रहते हैं। जान-बूझ कर न सही अनजाने में कपड़े उतर जाँय तो न बच्चे बहुत शरमाते हैं और न बड़े ही उसे अनुपयुक्तता कहकर नाराज होते हैं। किन्तु यह छूट आयु के बढ़ने के साथ-साथ समाप्त होने लगती है। सोलह अठारह वर्ष के लड़के लड़की कपड़ों सम्बन्धी अदब का पग-पग पर ध्यान रखते हैं और ऐसी नग्नता किसी भी कोने में नहीं प्रकट होने देते जो उन्हें अशिष्ट या लापरवाह सिद्ध करे। ठीक इसी तरह स्वभावजन्य आवेशों पर नियन्त्रण करने की आवश्यकता है।

इसी प्रसंग में यह भी ध्यान रखने योग्य है कि आतुरता, जिसे एक हद तक उच्छृंखलता भी कहा जा सकता है हमारे स्वभाव, वार्त्तालाप एवं आचरण में परिलक्षित न होने पाये। यह हो सकता है कि इन दिनों यह उत्तेजना स्वभावतः उठे। जिस तिस से झगड़ पड़ने की या अपनी बात कटु शब्दों में कह बैठने की आतुरता छलके। किन्तु मानवी सभ्यता का ध्यान रखते हुए उठती आयु के प्रारम्भिक दिनों में ही हमें आत्म नियन्त्रण का अभ्यास करना चाहिए और उसे तब तक जारी रखना चाहिए जब तक वयस्कता की उत्तरदायित्व सम्भालने वाली आयु न आ पहुँचे।

हिन्दुस्तान में एक कहावत में 'गधा पच्चीसी' का बार-बार उल्लेख होता रहता है। जिसका अर्थ होता है कि जब तक पच्चीस वर्ष की आयु पूरी नहीं हो जाती तब तक गधेपन जैसी बेवकूफी का खुमार चढ़ा रहता है। जो करना है तुरन्त कर बैठे—जो कहना है, अविलम्ब कह बैठे—भीतर किसी प्रसंग में नाराजी हुई है तो उसे दबाने की अपेक्षा तत्काल उगल बैठे। यह स्वभावतः चढ़ते खून का लक्षण है। पर इससे क्या प्रकृति के अनुरूप हर बात में चलें यह आवश्यक नहीं। दाढ़ी मूँछ के बालों की सफाई न की जाय तो उनसे चेहरा कुरूप हो जाता है। इसी प्रकार दूसरी जगह बढ़े हुए बालों की स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार उठती आयु के साथ उफनने वाले आवेशों पर नियन्त्रण करने की आवश्यकता है अन्यथा वे तत्काल तो संकट विग्रह उत्पन्न करेंगे ही आदत पड़ जाने पर बड़ी आयु में भी नीचा दिखायेंगे और व्यक्तित्व को तिरस्कृत स्तर का बना देंगे।

जिनमें उग्रता की मात्रा अनुपयुक्त स्तर तक पाई गई उनमें से प्रति हजार ५० को कई प्रकार के रोगों ने घेरा। उन्हें डाक्टरों की शरण लेनी पड़ी और अशिष्टता के लिए जिस-तिस से क्षमा माँगनी पड़ी अथवा द्वेष प्रतिशोध के शिकार हुए। किन्तु जिन्होंने नम्रता का अभ्यास कर लिया था जो आवेशों पर नियन्त्रण की कला सीख गये थे उन्हें हजार पीछे २ बार ही चिकित्सा करानी पड़ी और मित्र सहयोगियों की संख्या बढ़ी-चढ़ी रहने से कई दिशाओं में प्रगति कर सके, सफलताओं के उत्साहवर्धक सुयोग प्राप्त कर सके। उठती आयु में जिस प्रकार अच्छे कपड़े पहनने की—खेल में आगे रहने की इच्छा होती है उसी प्रकार यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि इस आयु में आवेशों का बाहुल्य रहने के संकटों को स्मरण में रखे और उनसे निपटने के लिए आत्म संयम का—शिष्टाचार के निर्वाह का—विशेष रूप से समाधान करने के लिए प्रयत्नशील रहें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सम्पदा का सदुपयोग

जीवन क्या है ? इसका उत्तर एक शब्द में अपेक्षित हो तो कहा जाना चाहिए—'समय'। समय और जीवन एक ही तथ्य के दो नाम हैं। कोई कितने दिन जिया ? इसका उत्तर वर्षों की काल गणना के रूप में ही दिया जा सकता है। समय की सम्पदा ही जीवन की निधि है। उसका किसने किस स्तर का उपयोग किया, इसी पर्यवेक्षण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसका जीवन कितना सार्थक अथवा निरर्थक व्यतीत हुआ।

शरीर अपने लिए ढेरों समय खर्च करा लेता है। आठ दस घण्टे सोने सुस्ताने में निकल जाते हैं। नित्य कर्म और भोजन आदि में चार घण्टे से कम नहीं बीतते। इस प्रकार बारह घण्टे नित्य तो उस शरीर का छकड़ा घसीटने में ही लग जाते हैं जिसके भीतर हम रहते और कुछ कर सकने के योग्य होते हैं। इस प्रकार जिन्दगी का आधा भाग तो शरीर अपने ढाँचे में खड़ा रहने योग्य बनने की स्थिति बनाये रहने में ही खर्च हो लेता है।

अब आजीविका का प्रश्न आता है। औसत आदमी के गुजारे की साधन सामग्री कमाने के लिए आठ घण्टे कृषि, व्यवसाय, शिल्प, मजूरी आदि में लगा रहना पड़ता है। इसके साथ ही पारिवारिक उत्तरदायित्व जुड़ते हैं। परिजनों की प्रगति और व्यवस्था भी अपने आप में एक बड़ा काम है जिसमें प्रकारान्तर से ढेरों समय लगता है। यह कार्य भी ऐसे हैं जिनकी उपेक्षा नहीं हो सकती। इस प्रकार आठ घण्टे आजीविका और चार घण्टे परिवार के साथ बिताने में लगने से यह किश्त भी बारह घण्टे की हो जाती है। बारह घण्टे नित्य कर्म, शयन और बारह घण्टे उपार्जन परिवार के लिए लगा देने पर पूरे चौबीस घण्टे इसी तरह खर्च हो जाते हैं जिसे शरीर यात्रा ही कहा जा सके। औसत आदमी इस भ्रमण चक्र में निरत रहकर दिन गुजार देता है।

मनुष्य को विचारशील कहा जाता है। यदि यह विचारशीलता गहरी और वास्तविक है तो उसमें सर्वाधिक महत्व का एक ही प्रश्न उभरना चाहिए कि मनुष्यजन्म सचमुच ही महत्वपूर्ण है। यदि है तो उसका उपयोग निर्वाह के ढर्रे में समय गँवा देने के अतिरिक्त और भी कुछ हो सकता है क्या ?

जिनके अन्तराल में इस स्तर की जिज्ञासा उठे उसे ब्रह्म जिज्ञासा वाला तत्वज्ञानी कहना चाहिए भले ही अशिक्षित दरिद्र या अनगढ़ अभावग्रस्त ही क्यों न हो ? यह ज्वलन्त प्रश्न है। जिसका हल न निकल पाने पर ईश्वर का अमोघ वरदान—मनुष्य जन्म—न केवल निरर्थक चला जाता है वरन् कई बार तो लिप्साओं से ग्रसित होकर कुकर्म करता और पाप का गट्ठर भी शिर पर लादता है। यह तो उपलब्ध बुद्धिमत्ता का अभिशाप जैसी परिणति हुई।

समय का सदुपयोग यह एक ही समाधान है—जीवन सम्पदा का समुचित सत्परिणाम उपलब्ध करने का। इसके लिए एक ही निर्धारण करना है कि शरीर यात्रा के साधन जुटाते रहने के अतिरिक्त भी कुछ किया जाय। क्या किया जाय ? इसके उत्तर में जीवन तथा समाज क्षेत्र में सत्प्रवृत्तियों का आरोपण अभिवर्धन की ही एक बात कही जा सकती है।

यदि दूरदर्शी विवेकशीलता का समुचित दबाव उमँगे तो समझदारी ऐसा सुयोग सहज ही बना देती है जिसमें निर्वाह और परिवार के अतिरिक्त भी आदर्शवादी प्रयोजनों के लिए कुछ समय नियमित रूप से लगाया जा सके। सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन की पुण्यप्रक्रिया को भी अन्यान्य क्रिया-कृत्यों की तरह नियमित रूप से सम्पन्न किया जा सके। रुझान बदलती है तो तद्नुरूप चिन्तन, चरित्र और व्यवहार ढलता है। यह ढलाई यदि आदर्शों के साँचे में ढल सके तो समझना चाहिए कि जीवन की सार्थकता का राजमार्ग मिल गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेकयुक्त दान

भगवान बुद्ध उन दिनों अपरिग्रह में लोक शिक्षण कर रहे थे। विलासी और लालचियों को कृपणता के चंगुल से छुड़ाने के लिए यह आवश्यक भी था। फिर सत्प्रयोजनों के लिए साधन कहाँ से आवें? अपव्यय और संग्रह की सर्प कुण्डली से लक्ष्मी को निकालने के लिए यह उपदेश समय की दुहरी आवश्यकता पूरी कर रहे थे। इसमें लालचियों को दुर्व्यसनों से छूटने और अभावग्रस्तों को सहारा मिलने का दुहरा लाभ था।

बहुतों ने अपना संग्रह परमार्थ के लिए बुद्ध विहारों को दान कर दिया। इतने पर भी अर्थवसु पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। उनने अपने संग्रह में से कानी कौड़ी भी दान न की एक धनाढ्य की, यह कृपणता जन-जन की चर्चा का विषय बन गई।

एक दिन अर्थवसु के पुत्र ने कहा—तात, हमारे निर्धनों जैसे वस्त्र देखकर लोग उपहास करते हैं। पुत्र वधू बोली—दिवाली पूजन पर मुझे आभूषण रहित देखकर सहेलियाँ व्यंग करती हैं। आपके इस संग्रह का लाभ हम लोगों को भी न मिला तो फिर इसका होगा क्या?

अर्थवसु मौन ही बने रहे। जब उन पर बुद्ध के अपरिग्रह त्याग का कोई प्रभाव न पड़ा तो पुत्र और पुत्रवधू का आग्रह ही वे क्यों मानते। उनने गरदन घुमा-ली मानों कुछ सुना ही न हो।

सामान्य जनों को भी यह व्यवहार कुछ विचित्र ही लग रहा था। पर इसे सहज ही एक धनिक की कृपण वृत्ति मानते हुए उन्होंने अन्य कोई टिप्पणी नहीं की। चूँकि बुद्ध अपना प्रवचन क्रम वहीं चलाये हुए थे एवं नित्य ही कोई न कोई महादान का प्रसंग आ ही जाता था, तुलनात्मक रूप से अर्थवसु की भी चर्चा आपस में होने लगती एवं लोग उसका खूब उपहास उड़ाते। बुद्ध धर्म चक्र प्रवर्त्तन के अपने क्रम में वह स्थान छोड़कर आगे बढ़ते चलते गए।

बहुत दिन बीत गये। नालन्दा विश्व विद्यालय की नींव रखी गई। ज्ञान चेतना जगाने के लिए तपस्वी परिव्राजकों को सुविज्ञ बनाने की यह विशाल योजना थी। अर्थवसु ऐसा ही कुछ सोचते थे। निर्धनों को सुविधा प्रदान करने से तो सभी धनवान् तात्कालिक श्रेय सन्तोष प्राप्त करते थे किन्तु वैसे सोचते न बन पड़ रहा था कि ज्ञान आलोक के अभाव में दरिद्रता से छुटकारा कैसे मिलेगा? पत्ते धोने और जड़ सींचने की उपेक्षा होने की बात उन्हें जँच नहीं रही थी। सो संग्रह उनने किसी के हाथ सौंपा नहीं। जब दान से निष्ठुर बना जा सकता है तो पुत्र और पुत्र वधू का अनुरोध ही वे क्यों मानते। आज उपयुक्त अवसर आया था उदारता प्रदर्शित करने का।

> दया मनुष्य का जन्मजात गुण नहीं है। बच्चे और असभ्य आदिमानव सदा ही क्रूर होते हैं। दया प्रयत्नपूर्वक अर्जित की जाती है और बुद्धि के संस्कार से निखरती है।
>
> —डा० जान्सन

एक दिन लोग यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गये कि कृपण धनपति अर्थवसु ने अपनी विपुल सम्पदा नालन्दा संघाराम को दान कर दी और स्वयं श्रवण बनकर उसकी इमारत बनवाने की सेवा साधना में निरत हो गये।

तथागत इस आकस्मिक निर्णय पर स्वयं चकित थे। पास बुलाया और कारण पूछा तो उनने एक ही उत्तर दिया। सर्वोत्तम कार्य तलाश के लिए ही कृपणता अपनाये रहा। वस्तुतः मैं निष्ठुर नहीं था—उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने के लिए रुका रहा।

बुद्ध ने उसकी दूरदर्शिता को मुक्त कण्ठ से सराहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म

भौतिकी के क्षेत्र में निरन्तर अनुसंधान चल रहे हैं एवं नये-नये अनुसंधान सृष्टि में क्रियाशील मूल बलों तथा उनके एकीकरण सम्बन्धी प्रतिपादनों पर हो रहे हैं। इस क्षेत्र में एक कठिनाई यही आती है कि पदार्थ विज्ञान तक दृष्टि सीमित रखने वाले भौतिकी विद पराभौतिकी (पैराफिजीक्स) के प्रतिपादनों को गले उतारने को तैयार नहीं हैं। देखा यह गया है कि ब्रह्माण्ड सम्बन्धी आत्मिकी की मान्यताओं को यदि आज के अनुसंधानों से समन्वित किया जाता है तो कई सिद्धान्त ऐसे जन्म लेते हैं जिन्हें बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वीकार किया जा सकता है। ब्रह्माण्ड के रहस्यों को उजागर करने वाली यह प्रतिपाद्य सामग्री गणित के सिद्धान्तों पर भी खरी उतरती है।

एक भारतीय अणु वैज्ञानिक परमहंस तिवारी के अनुसार यह भौतिक संसार जो हम अन्तरिक्ष में देखते हैं सब शून्य से बना है। डा० तिवारी का कहना है कि यह ब्रह्माण्ड खाली खाली नहीं है वरन् भाररहित, लचीलेपन से युक्त (इन्काम्प्रेसी बल), गतिशील तथा ऊर्जा से लबालब द्रव इसमें भरा हुआ है।

इस द्रव द्वारा ही किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में खाली स्थान में से पदार्थों की रचना हुई है। श्री तिवारी द्वारा लिखित पुस्तकों "स्पेसवोर्टेक्स थ्योरी" तथा "ओरिजिन आफ इलेक्ट्रान्स फ्राम एम्टी स्पेस" में इसका विस्तृत वर्णन है।

श्री तिवारी ने गणित के माध्यम से सिद्ध करके बताया कि गतिशील द्रव जब प्रकाश की गति से चलता है तो छोटे-छोटे छिद्र "द्रव में" पैदा हो जाते हैं। यही छिद्र (परशून्य) जो वास्तव में खाली हैं और १।३०००,००,००००० मी० मी० व्यास के हैं।

श्री तिवारी के अनुसार मूल बल (बेसिक फोर्स) की उत्पत्ति घूमते हुए ब्रह्माण्डीय द्रव से हुई है। हमें ज्ञात गुरुत्वाकर्षण विद्युत चुम्बकीय तथा नाभिकीय बल इस "बेसिक फोर्स" के ही कारण हैं। भौतिकी की सभी मूल इक्वेशन्स "वोरटेक्स थ्योरी" के अनुसार प्रतिपादित की जा सकती हैं। जिसमें आइन्स्टीन की "थ्योरी आफ रिलेटिविटी" भी शामिल है। एक और नया तथ्य ब्रह्माण्ड की इस शोध से उभर कर आया है। अब तक प्रकाश की गति को ही सर्वोपरि गति माना जाता रहा है। आइन्स्टीन कहते थे, इससे तीव्रगति नहीं हो सकती। पर अब 'कर्क' नीहारिका की गतिविधियों का विश्लेषण करते हुए इस गतिशीलता का नया कीर्तिमान सामने आया है। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के डा० एल० एल० और डा० ज्याफे एनडीन ने इस नीहारिका के विद्युतीय चुम्बकीय क्षेत्र की चल रही गतिशीलता को प्रति सैकण्ड ५,६५,२०० मील नापा है जो प्रकाश गति की तुलना में लगभग चार गुना अधिक है। इस नीहारिका के मध्य एक छोटा सूर्य ऐसा पाया गया है जिसका तापमान अपने सूर्य से १०० गुना अधिक है। वह अपनी धुरी पर प्रति सैकण्ड ३३ बार परिक्रमा कर लेता है। यह भ्रमण गति भी अब तक की कल्पनाओं से बहुत आगे है।

कार्ल सांगा जैसे कुछ साइन्स फिक्शन लिखने वाले ब्रह्माण्ड वैज्ञानिकों का विचार है कि अब शीघ्र ही वह दिन निकट आता चला आ रहा है,जब अपनी आकाश गंगा के साथ जुड़े हुए ग्रह उससे छिटक कर दूर चले जायेंगे और अनन्त अन्तरिक्ष में स्वतन्त्र रूप से विचरण करने लगेंगे। इसका प्रभाव सौर परिवार पर ही नहीं, ग्रहों के साथ भ्रमण करने वाले उपग्रहों पर भी पड़ेगा और एक विशृंखल अराजकता की ऐसी बाढ़ आवेगी कि सर्वत्र एकाकीपन दृष्टिगोचर होने लगेगा, पर अन्तर्ग्रहीय आदान की शृंखला टूट जाने से ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी कि हर नक्षत्र विविधताओं के कारण बनी हुई विशेषताओं और सुन्दरताओं को खोकर अपने स्वरूप की तुच्छताओं से सीमाबद्ध अपंग और कुरूप स्तर को ही प्राप्त होगा लेकिन यह मात्र कल्पना ही है। विधेयात्मक चिन्तन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले वैज्ञानिकों का मत है कि "अपने सौर मण्डल में नौ ग्रह हैं, इक्कीस उपग्रह हैं और जो गिन लिये गये ऐसे बीस हजार क्षुद्र ग्रह हैं। ये सभी अपनी-अपनी कक्षा मर्यादाओं में निरन्तर गतिशील रहने के कारण ही दीर्घ जीवन का आनन्द ले रहे हैं। यदि वे व्यतिक्रम पर उतारू हुए होते तो इनमें से एक भी जीवित न बचता। कब के वे परस्पर टकराकर चूर्ण विचूर्ण हो गये होते।

इन नौ ग्रहों में से जो ग्रह सूर्य के जितना समीप है उसकी परिक्रमा गति उतनी ही तीव्र है। बुध सबसे समीप होने के कारण प्रति सैकिण्ड ४८ किलोमीटर की गति से चलता है और एक परिक्रमा ८८ दिन में पूरी कर लेता है। पृथ्वी एक सैकण्ड में २८.६ किलोमीटर की चाल से चलती हुई ३६५.२५ दिन में परिक्रमा पूरी करती है। प्लूटो सबसे दूर है वह सिर्फ ४.३ कि० मी० प्रति सैकिण्ड की चाल से चलता है और २४८.४३ वर्ष में एक चक्कर पूरा करता है।

वास्तविकता यह है कि अपना सौर मण्डल इतना व्यवस्थित, जीवित और गतिशील है कि वहाँ प्रत्येक ग्रह अपनी मर्यादाओं में चल रहा है और एक दूसरे के साथ अदृश्य बन्धनों में बँधा हुआ है। यदि यह प्रकृति इन ग्रहों की न होती तो वह न जाने कब का बिखर गया होता और टूट फूट कर नष्ट हो गया होता।

सौर परिवार अति विशाल है। सूर्य की गरिमा अद्भुत है। उसका वजन सौर परिवार के समस्त ग्रहों उपग्रहों के सम्मिलित वजन से लगभग ७५० गुना अधिक है। सौर-मण्डल केवल विशाल ग्रह और उपग्रहों का ही सुसम्पन्न परिवार नहीं है, उसमें छोटे और नगण्य समझे जाने वाले क्षुद्र ग्रहों का अस्तित्व भी अक्षुण्य है और उन्हें भी समान सम्मान एवं सुविधायें उपलब्ध हैं। यह क्षुद्र ग्रह किस प्रकार बने? इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का मत है कि दो समर्थ ग्रह परस्पर टकरा गये। टकराहट किसी को लाभान्वित नहीं होने देती। उसमें दोनों का ही विनाश होता है, विजेता का भी और उपविजेता का भी। यह विश्व सहयोग पर टिका हुआ है, संघर्ष पर नहीं, संघर्ष की उद्धत नीति अपना कर बड़े समझे जाने वाले भी क्षुद्रता से पतित होते हैं। यह क्षुद्र ग्रह यह बताते रहते हैं कि हम कभी महान थे पर संघर्ष के उद्धत आचरण ने हमें इस दुर्गति के गर्त में पटक दिया।

मंगल और बृहस्पति के बीच करोड़ों मील खाली जगह में क्षुद्र ग्रहों की एक बहुत बड़ी सेना घूमती रहती है। सीरिस, पैलास, हाइडालगो, हर्मेस्ट, वेस्ट,ईरास आदि बड़े हैं। छोटों को मिलाकर इनकी संख्या ४४ हजार आँकी गई है इनमें कुछ ४२० मील व्यास तक के बड़े हैं और कुछ पचास मील से भी कम।

कहा जाता है कि कभी मंगल और बृहस्पति के बीच कई ग्रह आपस में टकरा गये हैं और उनका चूरा इन क्षुद्र ग्रहों के रूप में घूम रहा है। पर यह बात भी कुछ कम समझ में आती है क्योंकि इन सारे क्षुद्र ग्रहों को इकट्ठा कर लिया जाय तो भी वह मसाला चन्द्रमा से छोटा बैठेगा। दो ग्रहों के टूटने का इतना कम मलवा कैसे? कल्पना यह है कि सौर मण्डल बनते समय का बचा खुचा फालतू मसाला इस तरह बिखरा पड़ा है और घूम रहा है।

वैज्ञिनाकों की एक कल्पना यह भी है कि प्रशान्त महासागर की जमीन किसी खण्ड प्रलय के कारण उखड़ पड़ी और उड़कर चाँद बन गई। जहाँ से वह मिट्टी उखड़ी—वहाँ का गड्ढा समुद्र बन गया। यह उखड़ी हुई जमीन आकाश में मंडराने लगी और धरती का चक्कर काटती हुई चन्द्रमा बन गई। इस प्रकार वह पृथ्वी का बेटा हुआ। इसी सन्दर्भ में यह भी कहा गया है कि जिन दिनों पृथ्वी की सतह लाल अंगारे की तरह तप रही थी, उन दिनों वह घूमती भी तेजी से थी, अपनी धुरी पर तब वह एक चक्कर तीन घन्टे में ही लगा लेती थी और आये दिन गरम लावे के ज्वार-भाटे जैसे भूकम्प आते थे। उन्हीं दिनों कई विशालकाय उलकायें धरती से टकराई और कई समुद्र तथा झील-सरोवर बन गये।

स्थूल दृश्यमान इन पिण्डों की चर्चा न भी करें तो भी हमारे समक्ष एक पहेली तो अब भी रह जाती है। वह है इस पोले आकाश में अवस्थित प्लाज्मा की। गैलेक्सी की व्याख्या करते हुए एस्ट्रोफिजिसिस्ट कहते हैं कि दस खरब नक्षत्रों के समुच्चय से विनिर्मित इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्रीय क्षेत्र में कणों का विघटन तेजी से होता है। तारों से अदृश्य कण निकलकर प्लाज्मा के रूप में पोले दीखने वाले आकाशीय क्षेत्र में फैल जाते हैं। इनके इस फैलाव से ही विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र तथा गुरुत्वाकर्षण आदि की क्रियायें सम्पन्न होती हैं। ऐसे फैले हुये प्लाज्मा को आयनीकृत प्लाज्मा (आइनो स्फेरिक प्लाज्मा) कहते हैं। आइनोस्फेरिक प्लाज्मा द्वारा कई तरह के क्षेत्र बनते हैं। आइनोस्फेरिक प्लाज्मा के रूप में फैले हुये ये कण ही विभिन्न विचारों प्रक्रियाओं, घटनाओं, दृश्यों वाले हलचल पूर्ण जगत का कारण हैं तथा उसे प्रभावित नियन्त्रित करते हैं। लाखों वर्षों से आवारागर्दी करते करते ये कण भूल ही गये हैं कि वे कहाँ से आये हैं।

ये भूले हुए कण ही कास्मिक कणों के रूप में पृथ्वी की ओर भी आते रहते हैं। इन कणों में उच्च गति वाले प्रोटान तथा कई तत्वों के परमाणु होते हैं, इनमें अत्यधिक ऊर्जा होती है। वायुमण्डल में इनके प्रवेश करते ही हलचल मच जाती है। इसी हलचल से एक्सटेन्डेड एयर शावर्स (फैले हुए वायु—शावरों) का निर्माण होता है। पृथ्वी की स्थूल हलचल इस प्रकार इन अनेक स्वभाव तथा गुणों वाले कणों के कारण ही होती है।

१६५६ में डा. मेघनाद साहा ने अपनी खोजों से यह सिद्ध किया था कि सूर्य के प्लाज्मा में दृश्य जगत का हर तत्व विद्यमान है। उनका मत था कि लोगों को सूक्ष्म अस्तित्व में भी आत्मिक आनन्द की सभी सामग्री बताई जाती है तो लोग विश्वास नहीं करते उनकी स्थूल दृष्टि में दृश्य जगत और स्थूल पदार्थ ही प्रसन्नता के मूल हैं, पर हमारी अनुभूतियाँ जितनी सूक्ष्म और विशाल होती जाती हैं रस और आनन्द के तत्व भी उसी अनुपात में असीम तृप्ति वाले बनते चले जाते हैं। इस भारतीय वैज्ञानिक से सम्मति व्यक्त करते हुए विज्ञानी हाइसेन वर्ग ने प्रतिपादन किया था कि "अन्तरिक्ष में अमुक स्थिति पर पहुँचने पर परमाणु पदार्थ न रहकर अपदार्थ में —ऊर्जा में परिणत हो जाते हैं। पदार्थ सत्ता परिधि, काल और रूप में ढाँचे में बँधी है मनःसत्ता में अनुभूतियाँ, स्मृतियाँ, विचार और बिम्ब के रूप में व्याख्या होती है। इतना अन्तर रहते हुए भी इन दोनों के बीच अत्यधिक घनिष्ठता है यहाँ तक कि वे दोनों एक दूसरे को प्रभावित ही नहीं वरन् परस्पर रूपान्तरित भी होते रहते हैं।

इस तथ्य को नोबुल पुरस्कार विजेता यूजीन विगनर ने और भी अधिक स्पष्ट किया है। वे कहते है कि "यह जान लेना ही पर्याप्त नहीं कि वस्तुओं की हलचलों से चेतना ही प्रभावित होती है। वस्तुस्थिति यह कि चेतना से पदार्थ भी प्रभावित होता है।"

गेटे ने कहा था ब्रह्माण्डीय चेतना का अस्तित्व सिद्ध कर सकने योग्य ठोस आधार मौजूद हैं। रुडोल्फ स्टीनर ने अपने ग्रन्थ में गेटे के प्रतिपादन को और भी अच्छी तरह सिद्ध करने के लिये आधार प्रस्तुत किये हैं।

जीव विज्ञानी टामस हकसले ने ब्रह्माण्डीय चेतना के अस्तित्व और उसके कार्य क्षेत्र पर और भी अधिक प्रकाश डाला है वे उसे जीवाणुओं में अपने ढंग से और परमाणुओं में अपने ढंग से काम करती हुई बताते और भारतीय दर्शन की परा और अपरा प्रकृति को ब्रह्मपत्नी के रूप में प्रस्तुत करने वाली मान्यता के समीप ही जा पहुँचते हैं।

एक घने झुरमुट में उल्लुओं की जमात रहती थी। एक दिन कहीं से हंस उड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा और ठहर गया।

हंस समझाता रहा,—"भाइयो ! बाहर निकलो सूर्य के प्रकाश से संसार कितना सुन्दर लगता है। चलो, उसे तो देखो।" उल्लू सूर्य के अस्तित्व से सर्वथा इन्कार करते रहे और उसकी सलाह को हँसी में उड़ाकर मूर्ख कहने लगे।

बुलबुल ने हंस को समझाया "वंश परम्परा के अनुसार ही मान्यता बनाकर जो लोग चलते हैं, उन्हें औचित्य समझाना बहुत कठिन है। आप चुप रहें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्राद्ध का महात्म्य एवं मुक्ति का दर्शन

गया श्राद्ध से जीव की सद्गति होती है ऐसी मान्यता है। परन्तु भागवत् माहात्म्य कथा के पात्र धुंधकारी का गया श्राद्ध उसके भाई गोकर्ण ने विधिवत् किया फिर भी उसकी प्रेत योनि न छूटी। इसका कारण शौनक जी ने व्यास जी से पूछा। उन्होंने बतलाया— 'गया' श्राद्ध का आध्यात्मिक मर्म समझ लोगे तो बात समझ में आयेगी। उन्होंने गया श्राद्ध की एक कथा सुनाई।

"एक असुर था, गयासुर। उसने तप शक्ति से सारी विभूतियाँ पा लीं। तप से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी आये, वर माँगने को कहा। असुर बोला "मैं आपसे क्या वर माँगू मुझे क्या कमी है?" आप चाहें तो मुझसे कुछ माँग लें।"

ब्रह्माजी ने सोचा यह अहंकारी असुर किसी के मारे न मरेगा। शायद यज्ञ के प्रभाव से मर जाय। उन्होंने यज्ञ के लिए उसका शरीर माँग लिया। उसकी छाती पर सौ वर्ष तक यज्ञ किया गया। पर वह मरा नहीं, वह उठने को हुआ। ब्रह्माजी ने भगवान का स्मरण किया। उन्होंने प्रकट होकर गयासुर की छाती पर दोनों चरण रखे। चरण छाप पड़ने से असुर नष्ट हुआ। उसने मरते समय वर माँगा। इस यज्ञ क्षेत्र में विष्णुपाद पर जिसका श्राद्ध हो उसे सद्गति मिले। भगवान ने गयासुर की इस मंगल कामना का आदर किया। उसे भी सद्गति दी तथा वरदान भी प्रदान किया।

कथा सुनाकर व्यास जी बोले, हे भद्र! 'गय' प्राणों को कहते है। प्राण अपने सहयोगी अनुचरों, शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियों के सहयोग से कुछ भी अर्जित कर सकता है। अभिमानी प्राणी ही गयासुर है वह भूल जाता है कि उसे किसी उद्देश्य विशेष के लिए बनाया गया है। बनाने वाले से अपने लिए दिशा प्राप्त करने की अपेक्षा उसीसे वर माँगने की अहंकार भरी बात करता है।

यह अहंकारी जीव सामान्य देव वृत्तियों के काबू में नहीं आता। उन्हें सताता है। ब्रह्माजी ने ठीक ही सोचा कि लम्बे समय तक यज्ञ का परमार्थ का संस्कार मिले तो शायद यह अभिमान समाप्त हो जाय। इसी दृष्टि से उन्होंने उससे उसका शरीर यज्ञ के लिए माँग लिया।

सौ वर्ष मनुष्य की आयु है। पूरे समय यज्ञ हुआ, पर वह केवल द्रव्य से हुआ। अभिमान के भाव से किया गया द्रव्य यज्ञ अधूरा यज्ञ होता है, राजसिक यज्ञ होता है। सात्विक यज्ञ जब तक वह न बने उसका वह प्रभाव नहीं होता जैसा चाहिए। ब्रह्माजी की समझ में भूल आयी। उन्होंने भगवान का आह्वान किया। गयासुर के हृदय पर भगवद् चरण पड़े, अर्थात् प्रभु के प्रति श्रद्धा उपजी तो जीवाभिमान गल गया। मुक्ति हो गयी।

गयासुर ने ब्रह्मा को शरीर दान कर दिया था। शरीर को पिण्ड भी कहा गया है। 'जो ब्रह्म में सो पिण्ड में इस उक्ति में पिण्ड का अर्थ मनुष्य देह ही होता है। गयासुर का शरीर दान, पिण्ड दान कहला सकता है, परन्तु उससे श्रद्धा तो थी नहीं इसी लिए वह श्राद्ध नहीं बना और जब तक श्रद्धा नहीं जुड़ी तब तक मुक्ति नहीं हुई।

व्यास जी बोले "शौनक जी गया श्राद्ध किसी भी तीर्थ में किया जा सकता है जहाँ यज्ञीय चेतना का जीवन्त प्रयोग होता हो। गयासुर को भगवान ने जो वरदान दिया है उसकी लौकिक अर्थों में लकार पीटने से उद्देश्य पूरा नहीं होता। आध्यात्मिक सन्दर्भ में किया गया प्रयास अवश्य सफल होता है। परन्तु परमात्मा के प्रति श्रद्धा भाव के बिना न यज्ञ होता है न श्राद्ध। यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरणोत्तर जीवन को नकारा नहीं जा सकता-

एक समय था जब नव विकसित विज्ञान ने मनुष्य को भी पेड़ पौधों की तरह उगने और मरने वाला कहा था। उसके पुनर्जन्म की वैसी मान्यता को झुठलाया था जैसी कि धर्मग्रन्थों में व्यक्त की गई थी। बीज से पेड़—पेड़ से बीज—वाले सिद्धान्त को ही पदार्थ विज्ञानी मान्यता देते थे और कहते थे कि यदि पुनर्जन्म होता है तो वह वंशजों के रूप में ही होना चाहिए। आत्मा का अलग अस्तित्व मानने और मृत्यु के उपरान्त भी उसकी कोई सत्ता बनी रहने से वे इनकार करते थे।

यह प्रतिपादन कुछेक दार्शनिकों को भी भाया और उनमें से चार्वाक जैसों ने कहा इस देह का भस्मीभूत होने पर अन्त हो जाता है। दुबारा जन्म नहीं होता। पर यह मान्यताएँ नये उत्साह के उभार में ही पनपी थीं। पीछे इस सन्दर्भ में जब गहराई के साथ दार्शनिक आधार पर विचार किया गया और विज्ञान ने अपनी विकास पृष्ठ-भूमि पर विचार करना आरम्भ किया तो माना कि आरम्भिक अत्युत्साह में कही गई इनकारी पर नये सिरे से विचार की आवश्यकता है। उन्हें ऐसे अनेकों प्रमाण मिले जो मरने के बाद भी जीवन का अस्तित्व बने रहने की पुष्टि करते थे।

जन्मजात रूप से पशु पक्षियों और कीट पतंगों में प्रायः एक जैसी आदतें होती हैं। किन्तु मनुष्य में ऐसी विलक्षणताएँ बहुत बार पाई गई हैं जिनका वंश परम्परा एवं विशेष प्रशिक्षण के साथ कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता। पड़ौसियों से साथियों से अनुकरण का अवसर मिला होगा ऐसा भी कोई प्रमाण नहीं मिलता।

साम्प्रदायिक मान्यताओं के अनुसार यह तो मतभेद है कि मरने के बाद कितने दिन बाद—किस कारण—किस रूप में नया जन्म होता है। पर सभी धर्म यह मानते हैं कि मरने के बाद दूसरा जन्म भी होता है और उसमें भले-बुरे कर्मों का फल भुगतना पड़ता है। भले-बुरे कर्म क्या हैं? इसमें भी मतभेद है। कई मान्यताओं में इसके लिए स्वर्ग नरक में रहना पड़ता है और वहाँ सुविधाओं तथा असुविधाओं का उपभोग करना पड़ता है।

कुछ मान्यताएँ यह बताती हैं कि मरने के बाद पशु पक्षियों की योनि में जाना पड़ता है और असुविधा जन्य त्रास भुगतना पड़ता है। दूसरी मान्यताएँ यह हैं कि मनुष्य को दूसरा जन्म भी मनुष्य रूप में ही मिलता है। सुख-दुःख इस शरीर में भी कम नहीं हैं। मनुष्यों में से कितने ही बहुत सुखी होते हैं और कितने ही रोग आदि के कारण कष्ट भी बहुत सहते हैं।

पिछले जन्म की स्मृति गाथा सुनाने वालों में से कितनी ही घटनाएँ अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करती हैं जिनसे प्रतीत होता है कि मनुष्य को दूसरी बार भी मनुष्य जन्म ही मिला। एक जन्म का अन्त होने पर दूसरा कितने दिन में मिला और वह मध्यवर्ती समय कहाँ व्यतीत हुआ। इस पर थोड़ा प्रकाश परामनोविज्ञान की आधुनिक शोधों के अनुसार मिला है।

पूर्व जन्म की स्मृति सुनाने वालों के पुराने और नये जन्मों के बीच कई वर्षों का अन्तर रहा है। इससे प्रतीत होता है कि उस अन्तर वाले समय में स्वर्ग नरक आदि में निवास करना पड़ा होगा।

कितनी ही घटनाएँ भूत-प्रेतों की भी इस रूप में सामने आई हैं जिनसे प्रतीत होता है कि मध्यवर्ती समय सम्भवतः इस प्रकार सूक्ष्म शरीर में रहते हुए व्यतीत करना पड़ता होगा।

पाश्चात्य देशों में पुरानी मान्यता प्रलय के बाद नया जन्म मिलने की रही है। पर मध्ययुग के दार्शनिकों ने इस शास्त्र प्रतिपादन का खण्डन किया है। पैथागोरस—प्लेटो, प्लाटीनस, केल, ब्रिटन के अतिरिक्त यहूदी एवं हिब्रू धर्माचार्यों ने भी अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर यह कहा है कि पुराने और नये जन्म के बीच दस वर्ष से अधिक का अन्तर होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसाई और इस्लाम धर्म की मान्यता के अनुसार प्रलय काल तक नये जन्म पाने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। हिन्दू धर्म के अनुसार प्रेतात्मा एक वर्ष तक अपने कुटुम्बियों के साथ सम्बन्ध बनाये रहता है और इसके बाद प्रेत लोक में स्वर्ग नरक की अनुभूतियों के लिए चला जाता है। पुनर्जन्म होता है यह तो कहा गया है पर यह नहीं बताया गया कि इसमें कितना समय लगता है।

वंशानुक्रम वाद की मान्यता भी निर्विवाद नहीं है क्योंकि कितने ही बच्चों की आकृति तथा प्रकृति ऐसी पाई जाती है जो माता-पिता की कई पीढ़ियों तक नहीं पाई गई। चमड़ी का रंग बाल जैसी मोटी पहचान ही वंश परम्परा में चलती है। इनमें वर्ण भेद उदाहरणों में दोनों के सम्मिश्रित लक्षण पाये जाते हैं अफ्रीकी काले तथा योरोपियन गोरों के सम्पर्क से उत्पन्न हुई सन्तान के बारे में जब मिश्रित चिन्ह पाये जायें तो उसे किसका वंशज कहा जाय? मिश्रित होने पर आत्मा के पुनर्जन्म का सिद्धान्त कटता है।

हैक्सले, मैलस्का, आर्थर, थामसन, डार्विन जैसे विकासवादी कहते हैं कि वंश परम्परा में विकासवाद के सिद्धान्त भी जुड़ते हैं और सन्तानें—अपने जन्म दाताओं की अपेक्षा अधिक समर्थ एवं सुयोग्य होती हैं।

डा० डंकन मैकडानल्ड ने मरणासन्न रोगियों को काँच के बक्से में रखकर तोला तो मालूम हुआ कि जीवन और मरण के मध्य एक औंस वजन घट गया। इस आधार पर वे आत्मा को कोई भौतिक पदार्थ मानते हैं जो मृत्यु के उपरान्त अन्तरिक्ष में चला जाता है।

'अमेरिकन सोसाइटी फार साइकिक रिसर्च' के अन्वेषण का निष्कर्ष यह है कि जीवन एक पदार्थ है जिसका आकार भी है और वजन भी। शरीर के इर्द-गिर्द जो तेजोवलय पाया जाता है वह बाहर ही नहीं भीतर भी होता है यही आत्मा का रूप है और जीवन और मरण के बीच जो वजन घटता है वह उसका वजन। इस प्रकार जीवात्मा भी एक खास प्रकार का पदार्थ ही होना चाहिए।

बरनार्ड जानसन फाउण्डेशन के डा० वाटर्स ने भी काँच के चम्बर में प्राणियों को रखकर उनके जीवन और मरण के अन्तर को देखा। एक चूहे का प्राण चैम्बर के भीतर ऊपर हवा में तैरता पाया गया। इस आधार पर वे प्राणी के सूक्ष्म शरीर की कल्पना करते हैं और सोचते हैं कि मृतक का अस्तित्व भाप जैसा होना चाहिए।

पैरासाइकिक रिसर्च द्वारा अनेक क्षेत्रों में अनेक आधार पर जो खोजें की हैं उनसे प्रतीत होता है कि प्राणी अपने साथ अपनी आदतें और इच्छाएँ साथ लेकर जाता है। नया जन्म लेने पर वे विशेषताएँ भी पाई जाती हैं। भले ही आकृति पूर्व जन्म की तुलना में भिन्न हो।

कई आत्म विज्ञानी वंशानुक्रम का इतना ही सम्बन्ध मानते हैं कि किसी माता-पिता की सन्तानें उनके रंग रूप से मिलती-जुलती हों। पर आत्मा का उस शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं होता। आत्मा का सूक्ष्म शरीर ही प्रबल होता है और वह नया जन्म लेने के लिए ऐसे वातावरण की तलाश करता है जिसमें उसके पूर्व संचित संस्कारों का चरितार्थ करने का अवसर मिल सके। मनुष्य प्रगतिशील है अपनी भली या बुरी आदतों को आगे बढ़ाने के लिए वह पिछली स्थिति में प्रेरणा ग्रहण करता है और जैसा भी कुछ था अगले जन्म में उससे प्रगतिवान बनने की कोशिश करता है।

कर्मेन्द्रियैः पंचभिरञ्चितोऽयं, प्राणो भवेत् प्राणमयस्तु कोशः।
येनात्मवानन्नमयोऽन्नपूर्णः, प्रवर्ततेऽसौ सकल क्रियासु ।।

—विवेक०—१६७

अर्थात्—'अन्नमय कोश' जिससे युक्त होकर अन्न से तृप्त होता है और समस्त कर्मों में प्रवृत्त होता है, वह पाँच कर्मेन्द्रियों से युक्त प्राण-समुच्चय (प्राण—अपान—समान—उदान—व्याण आदि) ही 'प्राणमय कोश' कहलाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम सत्ता के सन्देशवाहक देव-दूतों के दिव्य दर्शन

देवदूत अनेक बार मनुष्यों को चेतावनी, सत्परामर्श, भविष्यवाणी बताते एवं मनुष्यों को अपने अदृश्य रूप का प्रत्यक्ष दर्शन कराते हैं। उनके बताये संकेतों पर चलकर कितने ही धर्मप्रेमी लाभ भी उठाते हैं। ऐसे घटनाक्रमों में से कुछ प्रामाणिक प्रसंग बहुचर्चित भी रहे हैं एवं कौतूहल के विषय भी।

यूरोप में दैवी सत्ता के अस्तित्व एवं उनके चमत्कारों पर विश्वास करने वाले सर्वाधिक व्यक्ति पाए जाते हैं। कुछ तथ्यान्वेषियों द्वारा पश्चिम जर्मनी के बर्लिन शहर में ५ वर्ष पूर्व किये गये पर्यवेक्षणों से पता चला है कि वहाँ की ५३ प्रतिशत जनता अलौकिक चमत्कारों पर पूरी तरह विश्वास करती है।

एक घटना १९४७ की है। ब्रेसिया (इटली) से पाँच किलोमीटर दक्षिण में 'मौन्टीकियारी' नगर में पैरिना-गिली नाम की एक परिचारिका (नर्स) रहती थी। अचानक ही पैरिना की दृष्टि एक हवा में तैरती हुई महिला पर पड़ी। अस्पताल के प्रार्थना स्थल की ओर से आती इस अजनबी महिला की छाती पर तीन तलवारें गढ़ी हुई थीं। लेकिन खून का नामो निशान तक नहीं था। इस भयावह दृश्य को देखकर साथ चल रहे अनेकों व्यक्ति चीख उठे और चीत्कार करते हुये इधर-उधर दौड़ते बने। पैरिना नहीं घबराई। अपने सत्साहस का परिचय देते हुये उस दिव्य प्रतिमा से उसके प्रकटीकरण का कारण पूछने लगी। प्रत्युत्तर में उस विलक्षण प्रतिमा ने बड़े ही दुःखद शब्दों में कहा कि तप, त्याग और प्रार्थना का व्रत जीवन में निरन्तर बना रहना चाहिए। इसका अभाव ही आज की विपन्न परिस्थितियों का मूल कारण है।

१३ जुलाई, १९४७ को यह घटना पुनः घटी। अबकी बार तलवार के स्थान पर तीन फूल उसके पास थे। जिनका रंग सफेद, लाल और पीला था। पैरिना ने जब इस प्रेतात्मा से इस रहस्य के विषय में पूछा तो श्वेत वस्त्रधारी महिला ने बताया कि "मैं ईसा मसीह की ही नहीं वरन् जगत जननी हूँ।" १३ जुलाई को हर वर्ष "रोज़ा मिस्टिका" के रूप में मनाया जाना चाहिए जिससे लोगों में धार्मिकता की भावनाएँ जग सकें।" तब से निरन्तर यह दिन उसी रूप में मनाया जाता है।

(फेथ हीलिंग) रोगोपचार में भी इस दिव्यात्मा की भूमिका बड़ी ही विलक्षण रही है। अभी भी मौन्टीकियारी के निवासियों का ऐसा विश्वास है कि सामूहिक प्रार्थना के बल पर इस शक्ति का आह्वान करके अनेकानेक आधि-व्याधियों से मुक्ति पाना सम्भव है। इसी घटना के परिणाम स्वरूप रोम तथा इटली के लोगों ने सामूहिक उपासना तथा धर्मानुष्ठानों को जीवन का अति आवश्यक अंग मानते हुए अपनाया एवं अपने पूर्व जीवन-क्रम को आमूल-चूल बदला है।

स्पेन में आइवोरा नामक एक स्थान है। जहाँ पर स्मृति अवशेष के रूप में रखा हुआ एक रक्त रंजित वस्त्र आज भी लोगों की श्रद्धा का प्रतीक बना है। वर्ष में हर १६ अगस्त को यहाँ सामूहिक उपासना का क्रम चलता है। धर्मानुष्ठान का यह उपक्रम ईसवी शताब्दी १०१० से प्रचलित है। लोगों का अभिमत है कि यह वस्त्र किसी बलिदानी शहीद का है जो अपने धर्म की रक्षा हेतु प्राण न्यौछावर कर चुका है। जब सामूहिक उपासना का क्रम चलता है तो यह रक्त अचानक ही खौलने लगता है। घटनाक्रम की सत्यता का गहनता से अवलोकन करते हुये पोप चतुर्थ ने इसे सार्वजनिक साधना का केन्द्र घोषित किया। लोग बड़ी श्रद्धा से आते एवं यहाँ उपासना कर प्राण शक्ति लेकर जाते हैं।

"मिरेकल्स आफ दी गौडस्" के लेखक एरिक बॉन डैनीकेन ने विश्व के लगभग सभी तीर्थ स्थानों को बड़ी गहनता के साथ अवलोकन किया है। मिलान के दक्षिण में सैन डैमियानो एक ऐसा तीर्थ स्थल है जहाँ पर अभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी सूर्य की देवी की उपासना का उपक्रम चलता है। जप पुरश्चरण की ध्वनि बड़े ही लयबद्ध ढंग से धीमे स्वर में यात्रियों को सुनाई देती है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि सूर्य की देवी की उपासना से रोगोपचार में काफी सफलता मिलती है। वहाँ के पुरोहित अध्यात्म चिकित्सा को अत्यधिक महत्व देते हैं। प्रत्येक गुरुवार को "मामा रोजा" जो वहाँ की प्रसिद्ध देवी समझी जाती है, उपस्थित श्रद्धालुओं को अभिनव प्रेरणा प्रदान करती है। १७ नवम्बर, १९७० को वहाँ उपस्थित सैकड़ों व्यक्तियों ने सूर्य-चिकित्सा से लाभ उठाया। इस घटना का उल्लेख "औब्जरवेटरे रोमानो" में हुआ है।

जिन पुण्य आत्माओं ने अपने धर्म और संस्कृति की सुरक्षा हेतु अपने को बलिदान कर दिया उनकी प्रेतात्माएं आज भी लोगों के लिए प्रेरणाप्रद बनी हुई हैं। २३ फरवरी १२३९ को मुस्लिम सैनिकों ने स्पेन की कोडोल पहाड़ी पर निवासरत पुरोहितों की हत्या कर दी और उन्हें अलग-अलग कपड़ों में बाँधकर फेंक दिया। दर्शकों का कहना है कि कोई भी दुराचारी प्रवृत्ति का मनुष्य उनके दिव्य प्रकाश के पास जाते ही विकलाँगता का शिकार होता तथा बेहोश होकर गिर पड़ता है। डैरोका धर्म-स्थल पर प्रतिष्ठापित इन छै पुरोहित सैनिकों की रक्त-वेदी आज भी पूरे स्पेन के लोगों के लिए श्रद्धा का विषय बनी हुई है। प्रायश्चित्त करने एवं उपासना कृत्य अपनाने पर दुराचारियों को भी क्षमा मिल जाती है एवं थोड़ा कष्ट भुगतने के बाद वे स्वस्थ हो जाते हैं।

अपर ऐल्सेक (फाँस) में ट्रौइस—ऐपिस के निकट एक धार्मिक प्रवृत्ति के किसान की बड़े ही दर्दनाक ढंग से हत्या कर दी गयी। ३ मई १४९१ को डैटर स्कोर नाम का एक लुहार वहाँ से गुजरा तो उसे नारी स्वरूप शक्ति का दिव्य दर्शन हुआ जिसके एक हाथ में श्वेत हिम वर्त्तिका तथा दूसरे हाथ में हरितिमा का प्रतीक अनाज की तीन बालियाँ थी। उसका कहना था कि यदि अपराधों की गति ऐसी ही रही तो लोगों को प्राकृतिक प्रकोपों का शिकार बनना पड़ेगा। दुर्भिक्ष से लेकर अनेकानेक बीमारियाँ फैलेंगी। ट्रौइस-ऐपिस में ऐसा ही हुआ और वहाँ के लोगों को बड़ी ही मुसीबतों का सामना करना पड़ा। तभी से एल्सेक को वहाँ के एक सुप्रसिद्ध धर्म स्थल के स्वरूप में माना जाने लगा है। भारत की ही तरह वहाँ भी वार्षिक मेले लगते हैं एवं नित्य लोग दर्शन कर देव-दूतों के सन्देश को दुहराते हुए संकल्प लेकर जाते हैं।

धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत लोगों को ईश्वर न प्रत्यक्ष रूप से अनुग्रहीत किया है। जैसाकि अनेकों उदाहरणों से प्रकट होता है। फ्रांस में बैसंकन नाम का एक नगर है। ३ दिसम्बर, १७१२ को वहाँ के मैगाफोलिस नामक मन्दिर में एक घटना घटी। उस समय पुजारी के अतिरिक्त स्थानीय लोग भी १० हजार की संख्या में उपस्थित थे। उपस्थित जन समुदाय ने प्रातःकाल ९ बजे एक विशालकाय आकृति वाले मनुष्य को हवा में तैरते हुये देखा। उसने बड़े तेजी के साथ तीन आवाजें निकाली "मनुष्यो, मनुष्यो, मनुष्यो"! तुम्हें अपनी रीति-नीतियों को सही ढंग से निर्धारित करना चाहिए। अन्यथा विपत्तियों का सामना करना पड़ सकता है।" दृश्य को देखने वालों का ऐसा विश्वास है कि यह दिव्य ज्योति कोई दिव्य चेतना का ही सन्देश पहुँचाने आई है। अपराधों में वृद्धि के परिणाम स्वरूप ही ऐसा हुआ है। भय से आक्रान्त होकर कुछ की मृत्यु तो तत्काल हो गयी। कुछेक ने अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हुए धार्मिक कृत्यों की परम्परा को पुनः आरम्भ कर दिया। घनघोर वर्षा तथा भूकम्प के कारण पूरा नगर नष्ट हो चुका था लेकिन तीन इमारतें सुरक्षित बच गयीं। जहाँ पर उक्त धर्मकृत्यों को पूरा किया गया। बैसंकन में उस समय से ही अपनी चिर पुरातन मान्यताओं को पुनः स्थापित करने हेतु उत्साहवर्धक प्रयास जारी हैं।

ये कतिपय उदाहरण दैवी सत्ता के अस्तित्व के परिचायक तो हैं ही. यह भी प्रमाणित करते हैं कि समय-समय पर परम सत्ता इनके माध्यम से जन-जन को चेतावनी देती है। यदि समय रहते अपनी जीवन पद्धति बदल ली जाय, आचरण में परिवर्त्तन लाया जा सके तो दैवी प्रकोपों से बचा एवं अन्यों को बचाया जा सकता है।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्ग्रही सुविशों का पृथ्वी पर आगमन

पृथ्वी पर अन्य लोकवासियों के आवागमन के प्रमाण चिन्हों में उड़नतश्तरियों की चर्चा होती है। इन दिनों प्रति रविवार को टेलीविजन पर एक सीरियल 'प्रोजेक्ट यू०एफ० ओ०' भी प्रसारित हो रहा है जो कथा प्रसंग नहीं अपितु ऐसी घटनाओं पर आधारित एक तथ्यपूर्ण फिल्म है, इससे वैज्ञानिकों की रुचि का पता लगता है। वस्तुतः प्रागैतिहासिक काल के चिन्ह जहाँ-तहाँ ऐसे पाये गये हैं जिन्हें किन्हीं अतिमानवों की कृतियाँ ही माना जा सकता है। सबसे बड़ी बात है मनुष्य के अन्तराल में पाई जाने वाली आदर्शवादी सदाशयता और योगाभ्यास के आधार पर अथवा कईबार बिना प्रयास के भी अतीन्द्रिय क्षमताओं का विकसित होना। यह सभी बातें ऐसी हैं जो डार्विन की विकास थ्योरी से तालमेल नहीं बिठाती। क्रमिक विकास का सिद्धान्त मनुष्येत्तर छोटे जीव-जन्तुओं पर तो किसी कदर लागू हो सकता है, पर मनुष्य पर नहीं। उनकी मानसिक स्थिति ही असाधारण नहीं है वरन् भाव संरचना भी ऐसी है जिसे वंशानुक्रम प्रवाह से उपलब्ध हुआ सिद्ध करना कठिन है। वह स्वउपार्जित भी नहीं है। क्योंकि जिन परिस्थितियों में मनुष्य रहता है उसमें ऐसी गुंजायश है नहीं कि आदर्शवादी दृढ़ता को इतने क्रमबद्ध ढंग से नियोजित किया जा सके। मनुष्य प्राणी समाज में अनेक दृष्टियों से एक मौलिक संरचना है। उसमें शारीरिक और मानसिक क्षेत्र में ऐसी विलक्षणताएँ बीज रूप में विद्यमान हैं कि उनके विकास का तनिक सा प्रयास करने पर ही वह अपनी विलक्षण विभूतियों का परिचय देने लगता है। यह क्यों है? इसका उत्तर वंशानुक्रम परम्परा के आधार पर दिया जा सकना शक्य नहीं है।

अध्यात्मवादी इस रहस्य का समाधान इस प्रकार करते हैं कि मनुष्य दैवी परिवार का एक घटक है। वह देवताओं की सन्तति है। पुरातत्व वेत्ता और जीवन विज्ञानी ऐसा ही कुछ सोचते हैं कि मानवी संरचना मात्र रासायनिक पदार्थ की परिणति नहीं है कि वे विकास क्रम को नभचरों एवं जल थल में विचरण कर सकने वाले पक्षियों से आगे बढ़ने में अत्यन्त कठिनाई अनुभव करते हैं। वे जीव विज्ञानी भी अब कुछ इसी तरह से सोचते हैं कि मनुष्य स्तर का जीवन किसी अन्य ग्रह से धरती पर उतरा है। ग्रह-नक्षत्रों को सर्वथा रासायनिक संरचना नहीं माना जाता है वरन् इस मान्यता को बहुत हद तक सही माना जाता है कि पृथ्वी से भी पुरानी और विकसित सभ्यताएँ इस ब्रह्माण्ड के कितने ही तारकों में विद्यमान रही होंगी।

इस दिशा में विशिष्ट प्रमाण वे अवशेष हैं जो उड़न-तश्तरियों के धरती पर गिरने के उपरान्त हस्तगत हुए हैं। चमकने और घूमने वाले और लुप्त होने वाले घटकों को प्रकृति के चमत्कार एवं मानवी दृष्टि भ्रम कहा जाता है पर उन अवशेषों को क्या कहा जाय जो टूटकर धरती पर गिरे हैं। इतना ही नहीं ऐसे प्राणियों के अस्तित्व को भी एक विचारणीय रहस्य माना गया है जो उड़न तश्तरियों के साथ पृथ्वी पर आये किन्तु परिस्थितियाँ गड़बड़ा जाने से वापस न लौट सके। यह मान्यता इसलिए और भी पुष्ट होती है कि इन अवशेषों और आगन्तुकों को जिनने देखा या हस्तगत किया है उन्हें इस सन्दर्भ की कोई बात न कहने लिए के प्रतिबन्धित किया गया है। हो सकता है कि मनुष्य कृत अन्तरिक्षीय खोज में इन उपलब्धियों से कुछ ऐसे सूत्र हाथ लगे जो अन्तर्ग्रही आवागमन सम्बन्धी तथ्यों का कोई रहस्योद्घाटन कर सकें और मानवी प्रयासों में सहयोगी सिद्ध हो सकें? इस सन्दर्भ में जहाँ भी जो जानकारियाँ मिली हैं, उन्हें इतना गोपनीय रखा गया है कि बात जहाँ की तहाँ रुक जाय। सहयोगी या विपक्षी उस सम्बन्ध में कोई सुरक्षा हस्तगत न कर सके।

अमेरिका के न्यू मैक्सिको क्षेत्र में सन् १९४६ से १९४८ तक इतनी उड़न तश्तरियाँ देखी गईं कि इस बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को आश्चर्यजनक माना गया कि संसार के अन्य स्थानों की अपेक्षा यह अभिवर्धन लगातार एक ही क्षेत्र में इतना अधिक क्यों होता है। अनुमान लगाया गया कि लुप्त प्रायः मय सभ्यता के पुरातन अवशेष इसी क्षेत्र में सर्वाधिक पाये गये हैं। हो सकता है उस सभ्यता का प्रतिनिधित्व करने वालों का सम्पर्क अभी भी उस क्षेत्र से बना हुआ हो।

जुलाई १९४७ में एक उड़नतश्तरी पृथ्वी से टकरा कर गिर पड़ी थी। इन्हीं दिनों अमेरिकी गुप्तचर विभाग को अन्तरिक्ष में ऐसी ही विचित्र वस्तुओं से पाला पड़ा था। इसलिए गश्त तेजकर दी गयी ताकि वस्तुस्थिति का पता लगाया जाय। २५ जून को इससे पहले डाक्टर आर० एफ० सेन से बाबर ने ऐसी घटना पहले भी देखी थी। उनने इस सम्बन्ध में कितने ही अन्य प्रत्यक्ष दर्शियों से पूछताछ की थी। २६ जून को ऐसा ही एक अद्भुत प्रमाण कैंटकी के डाक्टर लियो आरगिह ने देखा। २७ जून को मेजर जार्ज विलिवाक्स ने उसे और भी नजदीक से देखा। डा० विलिमोर की धर्मपत्नी ने भी उसे पास से देखा। इस सन्दर्भ में जो ऊहापोह हुआ उसके एक सप्ताह के तारतम्य का सिलसिला जोड़ते हुए" रीजवेल के स्थानीय सम्वाददाता ने खबर को प्रकाशनार्थ भेजने की जैसे ही तैयारी की वैसे ही उसके पास प्रतिबन्ध पहुँचा कि खुफिया पुलिस नहीं चाहती कि यह समाचार प्रकाश में आये। यह मामला टाप सीक्रेट का है। इसी प्रकार की पाबन्दी वायु सेना पर भी लगा दी गई और कहा गया कि वे इस सन्दर्भ में किसी से कुछ न कहें।

दूसरे दिन सरकार की ओर से एक फौजी दफ्तर में प्रेस कान्फ्रेन्स बुलाकर इतना भर कह दिया गया कि "वह एक मौसमी आँकड़े एकत्रित करने वाला गुब्बारा भर था।" पर इस सम्बन्ध में कोई प्रकाश न डाला गया कि जो मलवा फैंजिनको में भर-भर कर ले जाया गया था। उसका क्या हुआ। ब्रिटेन की रायल फोर्स से सम्बन्धित एक अधिकारी ने तो इस पर भी कह दिया कि एक उड़नतश्तरी 'रायवेल' क्षेत्र में गिरी है।

इसके अतिरिक्त प्रत्यक्षदर्शी गवाहों का तांता लगा रहा। श्रीमती बैनेट ने कहा उनने वह तश्तरी जमीन से टकराती स्वयं देखी है और उसमें कुछ मृत प्राणी भी थे।

एक दूसरी सूचना के अनुसार १९४७ में सेन्ट आगिस्टियान के मैदान में एक उड़नतश्तरी गिरी थी जिसमें १६ मृत और १ जीवित प्राणी भी थे। इस सूचना का विस्तृत विवरण स्प्रिंग फील्ड नामक जासूस ने एकत्रित किया था, किन्तु उसे भी यह रहस्य प्रकट न करने की हिदायत कर दी गई।

इन प्रतिबंधों के बावजूद एक सैनिक ने अपने बेटे को जो पत्र लिखा था उसमें गिरे हुए मृतकों तथा जीवितों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी दी। उसमें प्राणियों को चार फुट का बताया गया था और शरीर बलदार होने के कारण किसी प्रकार की पोशाक न पहने होने का उल्लेख किया गया था। यह पत्र अखबारों के हाथ लग गया और उसकी चर्चा जनता की जानकारी तक पहुँची।

> प्रत्येक बालक यह सन्देश लेकर आता है कि ईश्वर अभी मनुष्यों के सुधारने से हताश नहीं हुआ है। —रवीन्द्रनाथ टैगोर

किन्तु उसके बाद यह पता नहीं चला कि उस मलवे का मृत एवं जीवित शरीरों का क्या हुआ।

यह एक विवरण है जिससे कुछ घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। रूस में, दूसरे देशों में, पर्वतों, जंगलों या जलाशयों में भी ऐसी घटनाएँ घटी हैं और उन्हें जिनने पाया हो उन्होंने 'टाप सीक्रेट' की तरह अपने कब्जे में कर लिया हो तो क्या आश्चर्य है।

फिर यह आवश्यक नहीं कि जो अन्तरिक्षीय विमान धरती पर आते हों वे सभी गिर पड़ते हैं। यह हो सकता है कि सकुशल वापस लौटने वालों और अपने जन्म नक्षत्रों में पृथ्वी की वर्तमान स्थिति के विवरण पहुँचाते हों।

निश्चय ही यह कोई आक्रामक योजना नहीं है जिससे हमें किसी अन्तर्ग्रही विपत्ति की आशंका से भयभीत होना पड़े। यह एक खोज प्रयास है जिसका उद्देश्य पारस्परिक आदान-प्रदान और सहयोग का सिलसिला आगे बढ़ाना ही हो सकता है। जैसा कि मय सभ्यता अथवा दूसरे अन्य अवसरों पर होता रहा है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलयानों की प्रेतात्माएँ

उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन में विनिर्मित दो कुख्यात जलपोतों को प्रेतात्माओं द्वारा अभिशप्त करने की घटनाओं को नाविकों द्वारा यथार्थ माने जाने के कारण बड़ा महत्व मिला। इनमें "हिनेमोआ" जो कि २००० टन इस्पात से विनिर्मित किया गया था, ने अपनी प्रथम जलयात्रा सन् १८६२ में लन्दन के एक प्राचीन कब्रिस्तान से गिट्टी और मलवे की खेप भरकर आरम्भ की थी। अपनी प्रथम यात्रा की अवधि में ही उसके चार शिक्षार्थी नाविकों की टाइफाइड ज्वर से मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् यह क्रम चलता रहा। उसका प्रथम कैप्टन पागल हो गया, दूसरा अपराधी बना, तीसरे को अपने पद से इसलिये च्युत कर दिया गया क्योंकि वह सदैव नशे में धुत रहने लगा था। चौथा कैप्टन अपने केबिन में मृत पाया गया पाँचवे ने अपनी जीवन लीला को स्वयं ही अपने आपको गोली मारकर समाप्त कर लिया। छठे कैप्टन के नियन्त्रण में पहुँचने पर यह जलपोत एक दुर्घटना में उलट ही गया। इस दुर्भाग्यशाली जलपोत, हिनेमोआ का अन्त सन् १६०८ में एक तूफान में हो गया। कुछ दिनों के बाद जब यह जलपोत बरबाद होकर स्काटलैण्ड के पश्चिमी तट पर बहते हुए पहुँचा तो लोगों ने देखा कि वह पूर्ण रूप से नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था। उस पर कुछ भी उपयोगी सामान नहीं बचा था। नाविकों की मान्यता थी कि उसकी प्रथम यात्रा में मिट्टी और मलवे की खेप के साथ-साथ उसमें मानव कपाल एवं अस्थियों का भी समावेश था जिससे प्रेत आत्माओं ने कुपित होकर उस जलपोत को अपनी प्रथम यात्रा में ही अभिशप्त कर दिया था।

"ग्रेट इस्टर्न" नामक एक अन्य जहाज का इसामबर्ड किंगडम ब्रुनेल नामक एक विख्यात ब्रिटिश इन्जीनियर द्वारा १८५४ में निर्माण आरम्भ किया गया था। यह अपने समय के एक विशालतम जलपोतों में से था किन्तु यह बड़ा ही दुर्भाग्यशाली सिद्ध हुआ। इसका निर्माण एक महान सागरीय आश्चर्य व तैरने वाले एक राज महल के रूप में किया गया था, जिसमें चार हजार व्यक्तियों को पूर्ण सुख-सुविधा, आमोद-प्रमोद सहित सम्पूर्ण विश्व का भ्रमण करवाने की पूर्ण व्यवस्था थी। इसमें छः मस्तूल और पाँच चिमनियाँ धुएँ के निकास के लिये लगी थीं, जो कि किसी भी जहाज पर उन दिनों प्रथम बार ही देखी गई थीं।

"ग्रेट इस्टर्न" में भारी इस्पात की चादरें बड़ी मजबूती से लगाई गई थी। इतना ही नहीं उनमें ३ फीट के अन्तर से दूसरी उतनी ही मजबूत स्पात की चादर और लगाई गई थी इनको जोड़ने के लिये एक इंच मोटे स्पात के रिबिटों का प्रयोग किया गया था। दो चादरों के बीच में १६ कम्पार्टमेंट बनाये गये थे जो कि पूर्णतः जलरोधी थे। इसकी रूपरेखा बनाते समय इस बात पर विशेष रूप से बल दिया गया था कि यह जलपोत किसी भी स्थिति में न डूबने पावे और अन्तिम समय तक यह देखा गया कि यह जहाज डूबा नहीं यद्यपि विभिन्न कारणों से यह दुर्भाग्यशाली जहाज नितान्त निकम्मा ही सिद्ध हुआ।

इसके निर्माण में एक इंच मोटे ३० लाख रिविट हथौड़ों की चोटों के द्वारा लगाये गये थे, जिसके लिये एक हजार दिनों तक २०० रिविट दस्तों को कार्य करना पड़ा था। इसके निर्माण की अवधि में होने वाली दुर्घटनाओं में एक दर्शक और चार मजदूरों ने प्राण गँवाये। इसके अतिरिक्त एक रिविट करने वाला और एक एप्रेन्टिस कार्य करते हुए लुप्त हो गये थे। कुछ लोगों का मत था कि वे किसी कम्पार्टमेंट में फँसकर रह गये होंगे और उनकी सहायता के लिये की गई पुकार हथौड़ों की आवाज में डूब गयी होगी।

इसी बीच स्पात की प्लेटों के भाव में वृद्धि होने से आर्थिक कठिनाइयाँ आईं और कुछ दिनों के लिये निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य को स्थगित करना पड़ा, किन्तु ब्रुनेल ने शीघ्र ही और अधिक द्रव्य जुटा लिया। निर्माण का एक चरण पूर्ण होने पर इस महान व सबसे भारी जलपोत को थेम्स नदी के जल तक पहुँचने के लिए ३३० फीट के अन्तर को तय करना था जो कि एक बड़ी चुनौती बनकर सामने आया। इस साधारण सी लगने वाली दूरी को तय करने में पूरे तीन महीने का चौंका देने वाला समय लगा। इस विशालतम ढाँचे को एक-एक इंच खिसकाने में अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ा। अनेक बार जंजीरें टूटती गईं। अनेक नौकाएँ डूब गईं व अनेकानेक हाइड्रॉलिक रेम्स फट गये तब कहीं यह थेम्स नदी के जल में पहुँचा। सन् १८५८ की ३१ जनवरी को यह महान पोत अपनी यात्रा के योग्य बना तब तक इस पर १० लाख से अधिक व्यय किया जा चुका था। अब आगे की यात्रा के लिये और धन की आवश्यकता थी अतः डायरेक्टरों के नये बोर्ड का गठन किया गया, जिन्होंने इस जलपोत से जल्दी ही लाभ कमाने की बात सोची और उसे भारत और आस्ट्रेलिया की ओर न भेजकर उसे अमेरिका की ओर भेजने का निश्चय किया। अभी तक उसमें केवल पहिले दर्जे के केबिन ही बन पाये थे। दूसरे और तीसरे दर्जे के प्रवासियों के लिये निर्माण कार्य को अगले कुछ वर्षों के लिये रोक दिया गया। इस महान जलपोत की यात्रा आरम्भ होने से एक दिन पूर्व ५३ वर्षीय ब्रुनेल उसका अन्तिम निरीक्षण करने आया। उसने अपने कुछ विशिष्ट साथियों के साथ फोटो खिंचवाया ही था कि अचानक वह लड़खड़ाया, एक झटका खाया और गिरते ही उसके प्राणान्त हो गये। ब्रुनेल की मृत्यु को एक सप्ताह ही बीता था कि एक समाचार मिला कि ग्रेट इस्टर्न की एक चिमनी में भयंकर विस्फोट हो गया है जिसके फलस्वरूप पाँच कर्मचारी जलकर और एक कर्मचारी पैडल व्हील में फँसकर मर गये हैं। विस्फोट के कारण उसका दीवानखाना जिसमें चारों ओर आयने जड़े हुए थे व बड़े ही सुन्दर ढंग से सँवारा गया था, पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था। विस्फोट का कारण था एक भाप के बाल्व का असावधानी से बन्द की स्थिति में ही रह जाना।

अब इस स्थिति में उसकी मरम्मत अनिवार्यतः होनी थी, जिसमें अपेक्षा से अधिक समय लगा, अतः संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा को रद्द कर दिया गया और डायरेक्टरों ने इस कुख्यात जलपोत से कुछ अर्थलाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से उसे वेल्स की एक धार्मिक यात्रा के लिए दर्शनार्थियों को रवाना करने का निश्चय किया। इसी बीच एक जोर की आँधी ने उसके समस्त बंधन और लंगरों को तोड़कर इस जलपोत को बीच समुद्र में पहुँचा दिया, जहाँ कि यह १८ घण्टे तक तूफान से जूझता रहा जब कि आस-पास के सारे जहाज डूब चुके थे। इसकी सर्वोत्तम बनावट के कारण ही यह डूबने से बच गया, यद्यपि तूफान के कारण उसका दीवानखाना फिर से पूर्णतः क्षतिग्रस्त हो चुका था। इसके तीन माह पश्चात् ग्रेट इस्टर्न के कैप्टन, उसके कर्णधार व उनके खजाँची का एक ६ वर्षीय पुत्र किनारे पर एक नौका द्वारा जाते हुए डूबकर मर गये।

किसी भी जहाज की प्रारम्भिक यात्रा के समय उसके कैप्टन की मृत्यु होना एक बड़ा ही अशुभ चिन्ह माना जाता है। जैसे ही लन्दन में यह समाचार पहुँचा ग्रेट इस्टर्न के मैनेजिंग डायरेक्टरों ने अपना स्तीफा दे दिया। दूसरे बोर्ड का गठन होने पर उन्होंने उसकी यात्रा की तिथि ६ जून १८६० निश्चित की किन्तु जो ३०० टिकिट बेचे जा चुके थे, उनमें से केवल ३५ प्रवासी ही शेष बचे थे क्योंकि अन्य यात्री प्रतीक्षा करते-करते थक चुके थे और वे अन्य जहाज से रवाना हो चुके थे। अन्त में इन ३५ यात्रियों को ही लेकर यह जहाज १६ जून १८६० को अपनी यात्रा पर रवाना हुआ। नये कैप्टन की सहायता के लिये ४१८ कर्मचारियों का एक बड़ा दल था।

न्यूयार्क पहुँचने पर इस जहाज का भव्य स्वागत किया गया। न्यूयार्क में इस जहाज पर दो दिन के भ्रमण का विज्ञापन किया गया। २००० टिकिट बिके किन्तु जहाज पर केवल ३०० व्यक्तियों के विश्रामार्थ ही बिस्तर थे। लोगों ने बड़ी परेशानी में रात्रि व्यतीत की। इसी बीच भण्डार गृह में एक पाइप के फट जाने से पूरा खाद्यान्न भीगकर बेकार हो गया। खाने योग्य केवल थोड़ा-सा बेक्ड बीफ और सख्त बिस्कुट ही थे जिन्हें बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कीमत पर बेचा गया। भूखे प्यासे जल्दी ही किनारा आने पर उतर जाना चाहते थे किन्तु रात्रि में मल्लाहों की गलती के कारण इस जहाज ने मार्ग छोड़ दिया था और यह १०० मील दूर समुद्र में पहुँच चुका था। जहाज को उचित दिशा में घुमाया गया किन्तु यात्रियों को जब किनारा मिला तब वे भूख और प्यास के कारण बुरी तरह थक चुके थे। भ्रमण की एक और यात्रा का प्रयत्न असफल ही रहा। न्यूयार्क वासियों को अब इस विशालकाय जलपोत में कोई रुचि नहीं रह गई थी।

जब यह जलपोत रात्रि में चुपचाप न्यूयार्क से रवाना हुआ तो उस पर केवल ६० यात्री ही थे। अभी अटलांटिक महासागर को आधा ही पार किया था कि उसकी एक स्क्रू-शाफ्ट निकल गई। मिलफोर्ड हेवेन में एक छोटी नौका को छूने भर से उसके दो यात्री डूबकर मर गये। आगे चलकर ब्लेन हेम नामक एक जहाज को इसने टक्कर मारकर क्षतिग्रस्त कर दिया।

तीसरे कैप्टन को लाया गया किन्तु बोर्ड द्वारा कर्मचारियों के एक तिहाई व्यक्तियों को कम कर देने से उसने अपना पद छोड़ दिया। अब चौथे कैप्टन को लाया गया, जो केवल १०० यात्रियों को लेकर ही रवाना हुआ।

सन् १८६१ के सितम्बर में ग्रेट इस्टर्न एक बड़े तूफान में फँस गया, जिसमें किसी अन्य जहाज का बचना दूभर ही होता। इस तूफान के कारण उसके दोनों ओर के पैडल क्षतिग्रस्त हो गये, समस्त बचाव नौकाएँ टूट-टूट कर बह गईं, उसका पतवार टूट गया और उसके स्क्रू को क्षति पहुँचाने लगा। इसकी मरम्मत में ६० हजार पौण्ड का व्यय हुआ। अगले वर्ष जब यह जलपोत लांग आयलैण्ड साउण्ड के पास से यात्रा कर रहा था। एक नुकीली चट्टान से वह टकरा गया जिसने उसके बाह्य आवरण को लम्बाई में ८३ फीट और चौड़ाई में ९ फीट तक चीर दिया। यात्रा चार्ट में इस चट्टान का कहीं उल्लेख नहीं था। इस बार मरम्मत पर ७० हजार पौण्ड व्यय करना पड़ा।

इस दुर्भाग्यशाली जहाज से परेशान होकर डायरेक्टरों ने इसे बेचना उचित समझा और सन् १८६४ में यह जहाज केवल २५००० पौण्ड के मूल्य पर बिका। अब इस जहाज का उपयोग समुद्र में केबिल बिछाने के लिए किया गया। किन्तु दुर्भाग्य ने उसे वहाँ भी नहीं छोड़ा। जब वे आयरलैण्ड से न्यू फाउण्डलैण्ड की ओर ११८६ मील पर पहुँचे ही थे कि केबिल का अन्तिम छोर उनके पास से खिसक कर समुद्र में तीन मील गहरा चला गया। उसकी शोध की गई किन्तु जब कोई उपयोग होता नहीं दीखा तो जहाज को इंग्लैण्ड वापस लौटना पड़ा। सन् १८६६ में एक प्रयास और दूसरे जहाज से किया गया जिसके सफल होने पर यूरोप और उत्तरी अमेरिका के बीच प्रथम सन्देश २७ जुलाई को भेज पाना सम्भव हो सका। बाद में सन् १८६९ में इस जहाज ने अदन और भारत के बीच केबिन बिछाने में सफलता प्राप्त की।

सन् १८७४ में इस जहाज ने केबिल डालने का कार्य पूर्ण किया और इसे मिलफोर्ड हेवेन में लाकर रखा गया जहाँ कि यह पन्द्रह वर्षों तक उसी स्थिति में जंग खाता खड़ा रहा। इसकी कोई उपयोगिता न मानकर इसे उसके दूसरे मालिकों ने सन् १८८६ में २० हजार पौण्ड में बेच दिया। कुछ दिनों तक इस तैरते हुए राजमहल से विज्ञापन प्रसारण का कार्य लिया गया। इस पर विज्ञापन लिखे जाते थे। अन्त में इसे लोहे व अन्य धातुओं के व्यापारी को बेच दिया गया।

इसको तोड़ना भी उतना ही कष्टप्रद सिद्ध हुआ जितना कि उसका निर्माण करना। जब उन दुहेरी चादर से निर्मित कम्पार्टमेंन्टों को तोड़ा गया, तब उसमें दो मानव हाड़-कंकाल पाये गये। ये दोनों हाड़ कंकाल उस रिबिट करने वाले और उसके एप्रेन्टिस के ही थे जो कि निर्माण के समय लुप्त हो गये थे। अब उन लोगों की शंका का समाधान हो गया था जो कि इस सागरीय आश्चर्य, तैरते हुए राजमहल को प्रेतात्माओं द्वारा शापित होने की बात कहते थे।

प्रस्तुत घटनाक्रम बताते हैं कि कोई भी वस्तु चाहे कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, यदि वे शापग्रस्त हों अथवा निरीहों की आहें इनसे जुड़ी हों, अन्ततः वे हानिकारक ही सिद्ध होती हैं। मिस्र के पिरामिडों से लेकर कोहिनूर के हीरे तक के प्रसंग यही तथ्य प्रामाणित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्था की परीक्षा

पारसी धर्म के प्रवर्त्तक महात्मा जरथुश्त्र का प्रभाव बढ़ रहा था। सुसंस्कारी बादशाह गुश्तास्प ने विवेक पूर्वक परख कर उन्हें गुरु मान लिया था। उनके बढ़ते प्रभाव से संकीर्ण सभासद जलने लगे। उन्होंने धूर्तता पूर्ण चाल चली। जरथुश्त्र के चौकीदार को लालच देकर मिला लिया और उनके घर में मनुष्य की खोपड़ी तथा हड्डियाँ रखवा दीं। बादशाह से शिकायत की कि जरथुश्त्र संत नहीं छिप कर हीन जादू टौने करते हैं। प्रमाण के रूप में घर से वे वस्तुएं बरामद करा दीं। चौकीदर ने भी बयान दे दिया कि जरथुश्त्र की गैर हाजिरी में कोई भी घर में नहीं गया है। इस प्रकार बादशाह भ्रम में पड़ गये और उन्होंने जरथुश्त्र को कैद खाने में डाल दिया। प्रभु की लीला मानकर संत उस समय चुप रहे।

कुछ ही दिनों बाद बादशाह के सबसे प्रिय घोड़े की चारों टाँगें पेट से चिपक कर रह गयीं। वह उठने में लाचार हो गया। हर प्रकार की दवा दारू बेकार जाने लगी।

एक पहरेदार ने सूचना दी कि संत जरथुश्त्र ने कहा है कि बादशाह चाहें तो वे एक प्रयास कर सकते हैं। बादशाह ने उन्हें कैद खाने से बाहर बुलवाया और कहा आपके महान प्रभु का प्रभाव देखना चाहता हूँ।

संत बोले शहंशाह महाप्रभु का प्रभाव आँखों से नहीं आस्था से देखा जाता है। आस्था की दृष्टि आपकी ठीक होगी तो देख लेंगे। मैं आस्था की चार परीक्षाएं लूंगा और उसी आधार पर उपचार करूंगा। बादशाह मान गये।

जरथुश्त्र ने पहला प्रश्न किया गुश्तास्प तुम विवेक पूर्वक मेरी परीक्षा कर चुके हो, मेरे जीवन और उसके उद्देश्य को भी परख समझ चुके हो। बोलो क्या तुम्हारे अंदर से यह विश्वास उठता है कि मैं ईश्वर के लिए समर्पित उसका संदेश वाहक ?

बादशाह ने आत्म चिन्तन किया और अनुभव किया कि सचमुच ही उसने महान सन्त पर सामान्य लोगों के कहने से शक किया ? वह बोला हे पवित्र आत्मा ! मुझे क्षमा करें मैं सचमुच भ्रम में पड़ गया था। अब आपके और महाप्रभु के निर्देशों का ही पालन करूंगा।"

सन्त सन्तुष्ट हुए। उन्होंने प्रार्थना की हे प्रभु ! बादशाह भ्रमित था, यह अपनी आस्थाएं शुद्ध कर रहा है, इसे विकास का मौका दें।" इस प्रार्थना के साथ घोड़े का एक पैर मुक्त हो गया।

जरथुश्त्र ने दूसरा प्रश्न किया "तुम स्वयं जिस मार्ग पर बढ़ रहे हो क्या उस पर अपने बेटे को भी चलाना चाहोगे ? बादशाह ने स्वीकार किया तथा युवा बेटे को संत के सामने हाजिर कर दिया। सन्त बोले " नौजवान तुम राज्य के सबसे वीर पुरुष हो। क्या यह प्रतिज्ञा ले सकते हो कि अपनी बहादुरी का उपयोग सदा न्याय के पक्ष में ही करोगे ? शाहजादे ने यह प्रतिज्ञा की। संत ने पुनः प्रार्थना की हे परमपिता ! बादशाह अपने उत्तराधिकारी को भी आपके आदर्शों के लिए समर्पित कर रहा है इसे शरण में आने दें।" इसके साथ घोड़े का दूसरा पैर भी मुक्त हो गया।

अब संत ने महारानी को तलब किया। उनसे पूछा " हे बुद्धिमान पति और वीर पुत्र वाली सौभाग्य शालिनी ! क्या आपको भी प्रभु की राह स्वीकार है ? अपने प्रभाव और साधनों का उपयोग उसके लिए करेंगी ? रानी ने श्रद्धापूर्वक अनुगमन की शर्त स्वीकार की। जरथुश्त्र ने प्रार्थना की "प्रभु ! बादशाह अपनी अर्धांङ्गिनी को भी आपके चरणों में झुकाता है, इसे अपने तक पहुंचने का रास्ता दें और घोड़े का तीसरा पैर भी ठीक हो गया।

चौथी परीक्षा में उनके घर के चौकीदार का

(शेष पृष्ठ ५८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि अरविन्द का पूर्णयोग

मानसिक-विकास की आवश्यकता को आज इसलिए भी जरूरी समझा जा रहा है, कि जब से मनुष्य का जन्म हुआ है, तब से अब तक लम्बे काल में वह बुद्धिवाद के धरातल तक में ही विकास कर पाया है। पिछले दो सदियों से वह उसी रूप में पड़ा हुआ है और मनुष्य उसे ही सब कुछ मान बैठा है, जिससे अनेकानेक समस्याएँ आ खड़ी हुई हैं, वह उन्हीं के जाल में बुरी तरह उलझा अपंग-असहायों की तरह छटपटा रहा है।

मनुष्य मन और बुद्धि के वर्त्तमान धरातल से जब तक ऊपर नहीं उठ जाता समस्याएँ और परेशानियाँ उसका पीछा करती रहेंगी। 'सावित्री' महाकाव्य में योगी अरविंद ने कहा है—मानव के अन्दर अनेकानेक संभावनाएँ उसी प्रकार प्रतीक्षा में हैं, जिस प्रकार एक बीज में छिपा विशाल वट वृक्ष विकसित होने के लिए उपयुक्त समय का इन्तजार करता रहता है।

वे समझाते हुए कहते हैं—"आरोह" अर्थात् विकास, "अवरोह" अर्थात् अवतरण प्रगति के ये दो चरण हैं। दूसरे शब्दों में आरोह मानवी प्रयास पुरुषार्थ से सम्बद्ध है एवं अवरोह भगवद् करुणा से अर्थात् जब हम प्रयत्नपूर्वक मनसा—वाचा—कर्मणा से पवित्र बन जायगे, अपने सुपात्र को विकसित कर लेंगे तभी भागवत् करुणा स्वयं को निर्मल मानवी अन्तःकरण में उड़ेलेगी और फिर उस पवित्र अन्तराल में अतिमानवी 'अतिमानस' का प्रादुर्भाव होगा।

अरविंद ने—जड़, तथा चेतन मन—इन्हें चेतना के निम्नस्तरीय एवं आरम्भिक सोपान बताया गया है, जबकि उच्चतर मन, प्रकाशित मन, संबुद्ध मन ओवर माइण्ड तथा अतिमन को उच्चस्तरीय चेतना-सोपान में रखा गया है और इन्हें विकास की अन्तिम स्थिति बतायी गयी है।

दर्शन के अनुसार बुद्धि ने निश्चय ही मनुष्य को काफी प्रगतिशील बनाया है और प्रतिगामी आदिम स्थिति से उबार कर विकास की वर्त्तमान अवस्था तक पहुँचाया है। यही इसका चर्मोत्कर्ष है। आगे की प्रगति उसके बस की बात नहीं, वह इसके सीमा-क्षेत्र से बाहर है। इसके बाद का विकास अब संबुद्धि (इन्ट्यूशन) द्वारा ही संभव है, तत्पश्चात् ओवर माइण्ड और फिर अतिमन। अति-मानसी धरातल पर पहुँच कर मानव प्रगति के शिखर पर पहुँच जाता है। यह विकास का अन्तिम पड़ाव है। इस स्तर पर आकर मनुष्य सर्वज्ञ बन जाता है।

अरविंद दर्शन के अनुसार अतिमानसी विकास कोई कपोल-कल्पना नहीं, वरन् एक सुनिश्चित तथ्य है और समष्टि को इस स्तर तक पहुँचना ही है किन्तु श्री अरविंद ऐसा तभी संभव बताते हैं जब मानव स्वयं को वर्त्तमान तुच्छ स्तर से ऊपर उठायेगा, अन्यथा उसकी बुद्धि उसे सर्वनाश के कगार तक पहुँचा देगी। पर दूसरी ओर वे यह भी कहते हैं कि विनाश आने से पूर्व ही वह सम्भल जायेगा और अपने अस्तित्व को बचा लेगा। फिर मनुष्य की जो स्थिति होगी, वह उसकी सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोच्च स्थिति होगी।

योगीराज ने यहाँ तक कहा है, कि रूपान्तरण अपनी स्वाभाविक गति से होगा, न तो इसमें कोई दैवी-चमत्कार जैसी बात दीखेगी, न ही यह आकस्मिक रूप में आयेगा, उसकी प्रगति धीरे-धीरे होगी।

जब आध्यात्मिकी की ससार की स्थापना हो जायेगी, तो महर्षि के अनुसार व्यष्टिगत चेतना समष्टिगत चेतना से मिलकर एकाकार हो जायेगी। तब मनुष्यों को न तो आज जैसी त्रासदी झेलनी पड़ेगी, न ही उसमें राग-द्वेष का, कामना-वासना, तृष्णा—अहंता का लेश मात्र भी रहेगा। सब स्वल्प- सन्तोषी बनेंगे और आनन्द की जिन्दगी जीयेंगे।

यह सब यूटोपिया जैसा लगते हुए भी वास्तविक प्रतीत होता है। अनेक बार अनेक मनीषियों ने इस प्रकार की कल्पना की है, पर महर्षि अरविंद का कल्पना से इसलिए आशा बँधती है, कि वे एक मनीषी के साथ-साथ योगी भी थे, भविष्य-दर्शन की अपनी अर्जित क्षमता के आधार पर ही उनने सब कुछ लिखा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसा के उपदेश जो भलाई का द्वार खोलते हैं

तुमने मुफ्त में पाया है । इसे मुफ्त में दो । अपने पास दौलत जमा न करो । परिग्रही मत बनो । विलासी मत बनो, अन्यथा वही तुम्हारे पैर की बेड़ी बनेगा।

× × ×

तुम सर्प की तरह चतुर और कबूतर की तरह भोले बनो । चौकन्ने रहो ताकि अपने और बिराने तुम्हें पथ भ्रष्ट न करें ।

× × ×

उनसे मत डरो, जो शरीर को घायल या नष्ट कर सकते हैं । डरने योग्य वे हैं जो तुम्हारी आत्मा को गिराते, चरित्र बिगाड़ते और अन्धेरे में धकेलते हैं ।

× × ×

यह न समझो कि मैं मेल-मिलाप बढ़ाने और सुख-सुविधाएँ बरसाने आया हूँ । मैं तलवार की धार पर चलना सिखाता हूँ और छोट परिवार की उपेक्षा कर बड़े परिवार में प्रवेश करने की शिक्षा देता हूँ ।

× × ×

जो अपने प्रियजनों को मुझसे अधिक चाहता है वह मेरे योग्य नहीं । जो अपने को बचाता है वह खोयेगा और जो उसे खोने में नहीं झिझकता वह उसे पायेगा ।

× × ×

एक विद्वान ने कहा—"मैं आपके आश्रम पर रहा करूँगा ।" ईसा ने कहा-"लोमड़ियों की माद होती है और पक्षियों के बसेरे । तू मुझ निरन्तर भ्रमण करने वाले के साथ कहाँ टिकेगा ।"

× × ×

एक शिष्य ने पूछा—मेरा बाप मर गया है—आज्ञा दें तो उसे गाड़ आऊँ । ईसा ने कहा–मुर्दों को मुर्दे गाड़ने दे, तू मेरे साथ चल ।

× × ×

ईसा के साथ मछुए और दूसरे गिरे हुए लोग लगे रहते थे । धनियों ने कहा—'यह आपको शोभा नहीं देता । ईसा ने कहा—वैद्य को रोगियों की जरूरत होती है । मैं पापियों और पतितों के बीच क्यों न जाऊँ ?

× × ×

निस्पृह ईसा को किसी ने समाचार दिया—आपके कुटुम्बी लोग बाहर बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं—ईसा ने कहा—मेरा कुटुम्बी वह है जो मेरे साथ चले । जिनको ईश्वर के आदेशों पर विश्वास है वे ही मेरे सच्चे कुटुम्बी हैं ।

× × ×

स्वर्ग का राज्य किसके लिए है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए ईसा ने एक छोटा बालक गोदी में उठाया और सबको दिखाते हुए कहा--'जिसका मन इस बालक की तरह निर्मल है, स्वर्ग का राज्य उन्हीं के लिए है ।'

× × ×

धनी नीकुदेमुसन ने पूछा—ईश्वर के दर्शन कब होते हैं । ईसा ने कहा—नया जन्म होने पर । जब शरीर से ऊँचा उठकर मनुष्य आत्मा के लोक में प्रवेश करता है तो भगवान के दर्शन पाता है ।

× × ×

शिष्यों ने ईसा की नीति पूछी—उनने कहा—सच कहने में डरना नहीं । मौत से अकारण उलझना नहीं और मरने का दिन आ खड़ा हो तो डरना नहीं । हमें विवेक और वीरता का समन्वय करना चाहिए ।

× × ×

ईसा को मृत्यु दण्ड मिला तो उनने लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा । मेरा मरना तुम्हारे लिए अच्छा है क्योंकि मैं परलोक जाकर तुम्हारे लिए प्रेरक आत्माएँ भेज सकूँगा ।

× × ×

गेहूँ का दाना जमीन में घुसकर मर नहीं जाता । वरन् अपने जैसे असंख्यों दाने पैदा करता है ।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर से प्रेम करने का अर्थ है—जीवन, बुद्धि और मन को ईश्वर मय बनाना।

× × ×

खून न कर, व्यभिचार न कर, चोरी न कर, झूठ मत बोल, ठगी न कर और पड़ौसी से अपने समान प्यार कर। धर्म का यही सार है।

× × ×

लाठी का बदला लाठी, गाली का बदला गाली और खून का बदला खून नहीं हो सकता। तुम लोग का दिल बदलने की कोशिश करो। जो कुरता छीने उसको दोहर भी दे दो। भलमनसाहत की मार बदला लेने की अपेक्षा अधिक कारगर होती है।

× × ×

कहा गया है कि व्यभिचार करना पाप है। पर मैं कहता हूँ कि जो स्त्रियों को कुदृष्टि से देखता है और उनके बारे में अशुद्ध चिन्तन करता है वह व्यभिचार कर चुका।

× × ×

पृथ्वी पर धन जमा न करो। इसमें चोरी होने, ईर्षा बढ़ने और अहंकारी विलासी होने का डर है। अपने धन परलोक में जमा करो जहाँ वह घटता नहीं बढ़ता ही रहता है।

× × ×

तुम वैभव और परमेश्वर दोनों की सेवा एक साथ नहीं कर सकते।

× × ×

परमेश्वर के राज्य में धनवान का प्रवेश उतना ही कठिन है जितना सुई के छेद में से ऊँट का निकलना।

× × ×

माँगों तो पाओगे। खोजोगे तो मिलेगा और खटखटाओगे तो खोला जायगा।

× × ×

रट्ट कोई जो हे प्रभु, कहता है, स्वर्ग में प्रवेश न पा सकेगा। द्वार उसी को खुला मिलेगा जो परमेश्वर की इच्छा पर चलता है।

× × ×

धन्य वे हैं जो नम्र हैं। प्राणियों और पदार्थों पर उन्हीं का शासन होगा।

× × ×

दान करना है तो उन्हें मत दो जिनका पेट भरा है। उनसे उपहास ही मिलेगा। देना हो तो उन्हें दे जो उसके बिना पिछड़ गये हैं और दुःख पाते हैं।

× × ×

प्रभु का मार्ग सीधा बनाओ। समतल लाने के लिए खाई भरनी पड़ेगी और पहाड़ों को खोदना पड़ेगा।

× × ×

देवालय के विश्राम घर में जो सट्टा लगा रहे थे और कबूतर बेचने खरीदने का धन्धा कर रहे थे। ईश्वर पुत्र ने उनकी चौकियाँ उलट दीं और कहा—'परमेश्वर के घर को डाकुओं की खोह न बनाओ।'

× × ×

यह याजक को कहते हैं उन्हें सुनो, उनमें से जो उचित हो उसे अपनाओ। पर वे जो करते हैं सो न करो। क्योंकि इन पुरोहितों की कथनी और करनी में जमीन आसमान जैसा अन्तर पाया जाता है।

× × ×

तुम जैसा सलूक दूसरों से अपने तईं चाहते हो उनके साथ तुम वैसा ही व्यवहार आरम्भ कर दो।

× × ×

लोक सेवा में निरत होकर तुम अपने गाँव और घर में सम्मान नहीं पा सकते। इसलिए अच्छा है कहीं अन्यत्र आश्रम ढूँढो।

× × ×

बड़ाई सुनने का लालच न करो। ढिंढोरा न पीटो न पिटवाओ। ढोंगी लोगों की तरह मंच सजाने और बढ़-बढ़कर बातें करने का प्रयत्न न करो। जो देना है दाँये हाथ से ही दे डालो ताकि बाँया हाथ उसे जान न पाये।

× × ×

भलाई इसलिए करो कि ईश्वर को प्रसन्नता हो। दीपक की तरह जलो ताकि उजाला फैले। उचकने की कोशिश न करो। दीपक सदा दीवट पर रखा जाता है। उपयुक्त जगह उसे अनायास ही मिल जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिपात और उसका आधार

सत्संग और कुसंग के भले बुरे परिणामों से सभी अवगत हैं। इसमें कुछ भाग तो कथन परामर्श का भी रहता है और कार्य पद्धति के अवलोकन का भी। किन्तु अधिक प्रभाव व्यक्तित्व का रहता है जो प्रकाश की तरह अपने सम्पर्क क्षेत्र पर अपनी छाप छोड़ता है। अग्नि के समीप जाने पर उसकी गर्मी एक परिधि तक स्वयमेव पहुँचती है।

इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि उसका स्पर्श आवश्यक हो। पुष्पों की सुगन्ध और कूड़े करकट की सड़न का एक दायरा बन जाता है और उसका प्रभाव सहज ही उन लोगों तक पहुँचता है जो उस परिधि में होते हैं। आग में मिर्च जलाये जाने पर उससे छींकें आने और खाँसी उठने का सिलसिला दूर-दूर तक उठता दिखाई देता है। हर व्यक्ति का अपना एक प्रभाव क्षेत्र होता है और वह बिना कुछ कहे भी एक आदान-प्रदान का क्रम चला देता है। सत्संग और कुसंग का प्रभाव मात्र वातावरण से भी सम्भव है।

मनुष्य के शरीर के चारों ओर एक तेजोवलय होता है उसे यन्त्रों की सहायता से प्रकाश युक्त भाप की तरह देखा जा सकता है। इसके साथ जुड़े रहने से विद्युत कण आगे-आगे उड़ते रहते हैं और सामर्थ्य के अनुरूप समीपवर्ती व्यक्तियों पर ही नहीं पदार्थों पर भी छाप छोड़ते हैं इस प्रसंग में निकटता का और भी अधिक महत्व है। कमजोर पक्ष पर समर्थ पक्ष अनायास ही छा जाता है।

बच्चों को जिन बड़े व्यक्तियों के साथ रहने—गोदी में चढ़ने या खेलने का अवसर मिलता है। उनका स्वभाव तद्नुरूप ढलना आरम्भ हो जाता है। इसलिये उन्हें यदि सुसंस्कारी बनाना है तो अनुपयुक्त व्यक्तियों के सान्निध्य से यथा सम्भव बचाया ही जाना चाहिए।

यह प्राण ऊर्जा उन पदार्थों में भी घुस पड़ती है जो व्यक्ति विशेष के सम्पर्क में आते हैं। वस्त्र, छड़ी, कलम माला आदि जो वस्तुएँ अधिक समय तक जिस किसी के साथ रहती हैं उसका प्रभाव ग्रहण कर लेती हैं और फिर जिनके भी पास जाती हैं उन्हें प्रभावित करती हैं।

नारी और नर में यह चुम्बकत्व विशेष रूप से काम करता है। नारी में आकर्षण और पुरुष में विकर्षण स्तर का चुम्बकत्व होता है जो निकटता होने पर अपनी चुम्बकीय ऊर्जा का हस्तान्तरण करने लगता है।

अध्यात्म साधकों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जाती है और कहा जाता है कि वे विपरीत लिंग के साथ घनिष्ठता न बनाये। उनसे यथा सम्भव अधिक से अधिक दूरी बनाये रहें। विशेषतया दृष्टि न मिलायें क्योंकि चुम्बकत्व की मात्रा उनके माध्यम में अपना गहरा प्रभाव छोड़ती है। यौनाचार में तो जननेन्द्रियों का ही नहीं प्राण ऊर्जा का भी पारस्परिक घुलन-मिलन और आदान-प्रदान एक सीमा तक होता है कि दोनों ही पक्ष एक दूसरे के साथ मिलकर व्यक्तित्वों के स्तर में एक आश्चर्यजनक परिवर्त्तन करते हैं। इतना ही नहीं बहुधा भ्रूण स्थापित होने और दोनों के संयोग का प्रतिफल एक नये व्यक्ति का जन्म होने तक भी जा पहुँचता है।

व्यभिचार का प्रतिबन्ध आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी किया गया है क्योंकि उसमें नर पक्ष अधिक घाटे में रहता है अपनी प्राण ऊर्जा का एक अंश गँवा बैठता है। साथ ही नारी पक्ष का चुम्बकत्व अनायास ही उससे बहुत कुछ अपहरण करके स्वयं तो लाभान्वित रहता है और अपने बहुत से दोष दुर्गुण नारी पक्ष में छोड़ देता है। ऐसे ही रहस्यमय कारणों से पतिव्रत और पत्नी व्रत मर्यादाओं के अनुशासन पालन पर अंकुश लगाया गया है। विशेषतया आत्मिक प्रगति को लक्ष्य मानकर समर्थ पक्ष अपनी आध्यात्म सम्पदा को हस्तान्तरित करते समय यह विशेष रूप से परखता है कि किन्हीं अपनी बहुमूल्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पदा को किसी कुपात्र के कीचड़ जैसे व्यक्तित्व पर तो नहीं उड़ेला जा रहा है। इसके लिए पात्रता को विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है। अन्यथा उस उपलब्धि का दुरुपयोग होने पर ग्रहण कर्त्ता को ही नहीं देने वाले चलने वालों को विशेष रूप में सतर्क किया गया है।

अध्यात्मक्षेत्र में इसी प्रक्रिया का आदान-प्रदान उच्च-स्तरीय भूमिका पर गुरु शिष्य के बीच भी होता है। गुरु अपनी संग्रहीत प्राण ऊर्जा का एक बड़ा भाग कारण विशेष के निमित्त शिष्य के लिए भी हस्तान्तरित कर सकता है। इस प्रक्रिया को शक्तिपात कहते हैं। इसमें भी संकट उठाना पड़ता है और भस्मासुर जैसी स्थिति बन पड़ती है। विभूति वरदान को पचा न पाने के कारण भस्मासुर तो बेमौत मरा ही। शंकर पार्वती ही नहीं, विष्णु भगवान तक को उस कारण हैरान होना पड़ा।

विवेकानन्द, दयानन्द आदि की निज की साधना उतनी नहीं थी, उन्हें गुरु पक्ष से जो असाध्य अनुदान मिले उनके कारण वे इतना कुछ कर सके जितना एकाकी पुरुषार्थ से कदाचित् वे न कर पाते।

प्राचीन काल के गुरुकुलों की एक विशेषता यह भी थी कि वे अध्यापन करने वाले छात्रों में से सभी की पात्रता परखते रहते थे और उनमें से जो जिस प्रकार की जितनी प्राण ऊर्जा का अनुदान प्राप्त करने का अधिकारी होता था उसे उतना देकर उन्हें निहाल करने में कृपणता नहीं बरतते थे। किन्तु साथ ही यह भी अनुशासन निर्धारित करते थे कि इस अनुदान का उपभोग लिप्सा, तृष्णा, अहन्ता की पूर्ति जैसे क्षुद्र प्रयोजनों के लिए न किया जाय। उस सामर्थ्य के सहारे कहीं कोई अनीति परक दुष्कर्म न किया जाय। ऐसी दशा में उस अनुदान देने वाले को भी दण्ड भुगतना पड़ता है कि क्यों उसने पात्रता परखे बिना—उपलब्धि का उद्देश्य जाने बिना क्यों देने में उतावली बरती। कोई अपनी बन्दूक किसी अनाड़ी के हाथ सौंप दे और उसे पाकर वह किसी को मौत के घाट उतार दे या धमका कर लूट-पाट करे तो इस अनर्थ में वह व्यक्ति जिसने बन्दूक अनुपयुक्त प्रयोग की आशंका का अनुमान लगाये बिना देने वाला व्यक्ति भी अपराधी बनता है और उसे भी आक्रमणकारी की सहायता करने का दण्ड भुगतना पड़ता है। शक्तिपात के सम्बन्ध में यह सतर्कता भी रखी जाती है। जिनके पास इस प्रकार का भण्डार है उसे प्रायः प्रकट करने से कतराते हैं ताकि कोई धूर्त चापलूस झूठ-मूठ भक्ति-भाव दिखाकर या झूठे आश्वासन देकर उनकी सज्जनता का अनुचित लाभ न उठा ले।

जहाँ सामर्थ्य के अभाव में कोई उच्चस्तरीय कार्य रुकता है वहाँ उस कार्य का बिगड़ने न देने के लिए बिना माँगे भी महान आत्माएँ अपनी शक्ति का एक बड़ा भाग उन सत्पात्रों को अनायास ही सौंप देते हैं। ऐसा भी होता है कोई महान कार्य कराने के लिए कोई उच्च आत्मा किसी सत्पात्र को आग्रहपूर्वक ह. ऐसा अनुदान हस्तान्तरित करे। शिवाजी और चन्द्रगुप्त ने बिना माँगे ही किसी उच्च प्रयोजन के निमित्त ऐसा अनुदान उपलब्ध किया था।

> धन पास रहने में उतना आनन्द नहीं मिलता, जितना कि उसके खोने या छिनने में कष्ट होता है।
>
> —सेन्ट ग्रेगरी
>
> × × ×
>
> संकल्प शक्ति के धनी और अपनी योजनाओं का साहसिक मूल्य चुकाने वाले व्यक्ति ही संसार को अपने साँचे में ढाल सकने में समर्थ हुए हैं।
>
> —गेटे

जो लोग शक्तिपात कर सकने की क्षमता का विज्ञापन करते हैं उनमें से कदाचित् ही कोई इस योग्य होता हो। जो कर सकते हैं वे अकारण जहाँ-तहाँ चर्चा नहीं करते अन्यथा जेब का पैसा बार-बार दिखाने वाले को कोई जेबकट सहज ही चकमा दे सकता है।

जिस प्रकार पिता अपनी सम्पदा का उत्तराधिकार अपनी प्रिय सन्तान को दे जाता है उसी प्रकार आत्म-बल के धनी योगी तपस्वी भी अपने शिष्यों को शक्ति का अनुदान देते हुए आना-कानी नहीं करते।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

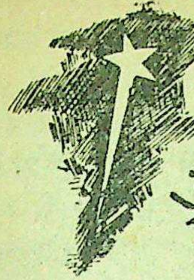

हेली-धूमकेतु से जुड़ी हुई आशंकाएँ

हेली धूमकेतु ७६ वर्ष बाद आगामी वर्ष सन् १९८६ में प्रकट होने वाला है। इससे पूर्व वह १४५६, १५३१, १६०७, १६८२, १७५८ में प्रकट होता रहा है। इसके सम्बन्ध में दैवज्ञ हेली ने बहुत खोज-बीन की थी, इसलिए उन्हीं के नाम पर इस पुच्छल तारे का नामकरण किया गया। उनकी मृत्यु के पश्चात दूसरे वैज्ञानिक उसकी कक्षा एवं गति का सही पता लगाने का प्रयत्न करते रहे हैं पर अभी उस सन्दर्भ में उतनी सुनिश्चित जानकारी नहीं मिली है जिस पर सन्तोष किया जा सके।

धूमकेतु की संरचना ठोस द्रवों एवं वाष्पीय पदार्थों से हुई है पर वह परिभ्रमण करते हुए जब सूर्य के निकट पहुँचता है तो बढ़ी हुई ऊर्जा का दबाव पड़ता है। जिस भाग पर यह दबाव पड़ता है वह वाष्पीकृत होकर फूलने और फैलने लगता है। इसी को धूमकेतु की पूँछ कहते हैं। इस पूँछ की विशेषता के कारण ही प्राचीन ज्योतिषी उसे पुच्छल तारा कहते थे।

मंगल ग्रह के परिक्रमा पथ के निकट पहुँचने पर दुम का यह विस्तार विशेष रूप से बढ़ने लगता है कभी-कभी सूर्य के गुरुत्वाकर्षण के कारण यह दुम छोटे-छोटे कई खण्डों में बँट भी जाती है। खगोल शास्त्रियों के गणितानुसार औसत धूमकेतु का वजन १९ विलियन टन होता है। उसकी परिक्रमा ७६.१ वर्ष में पूरी होती है। अपनी धुरी पर वह १०.३ घण्टे में घूम लेता है।

२४० वर्ष पूर्व ज्योतिर्विदों की दृष्टि इस पर गई थी। तब से अब तक उसके सम्बन्ध में नई जानकारियाँ जुड़ती आई हैं। इसकी लम्बाई १० करोड़ कि० मी० आँकी गई है। इस बार यों इसी वर्ष के क्रिसमस के एक दिन पूर्व में वह दीखने लगेगा। पर बिना दुर्बीन की सहायता के उसे खुली आँखों से ११ अप्रैल सन् ८६ को देखा जा सकेगा। उस दिन यह पृथ्वी से मात्र ८०७ करोड़ कि० मी० दूर होगा। ग्रह नक्षत्रों की गणना के हिसाब से इतनी दूरी निकटवर्ती ही मानी जाती है।

बम्बई की नेहरू वेधशाला के निर्देशक का कथन है कि सन् ८५-८६ में पृथ्वी को हेली लहर प्रभावित करेगी और उसके कारण धरती के स्वाभाविक क्रम में कई प्रकार की अस्त-व्यस्तताएँ उत्पन्न होने की सम्भावना है।

इस बार हेली धूमकेतु के सम्बन्ध में कितनी ही अभिनव जानकारियाँ एकत्रित करने की तैयारी अन्तरराष्ट्रीय सहयोग से की जा रही है। जापान, रूस, फ्रांस आदि के सहयोग से एक उपग्रह उन दिनों भेजा जायगा जो १००० कि० मी० दूर रहकर उसकी परिस्थितियों का पता लगायेगा और चित्र खींचेगा। इसे जुलाई ८५ में भेजने का प्रस्ताव है। इस पुच्छल तारे को दुर्बीनों के सहारे जनवरी ८६ से ही देखा जाने लगेगा। धूमकेतु के पृथ्वी के निकट से निकलना किसी संकट की आशंका उत्पन्न करता है। सन् १९०८ में साइबेरिया क्षेत्र में एक भयंकर विस्फोट हुआ था उसने धरती के सुदूर क्षेत्रों को प्रभावित किया था। इसके सम्बन्ध में खगोल वेत्ताओं का एक अनुमान यह भी है कि धूमकेतु की किसी आड़ी-टेढ़ी चपेट के कारण हुआ था। आवश्यक नहीं कि इसकी समीपता कोई संकट खड़ा ही करे पर यह आशंका अवश्य है कि उसकी धूल उड़कर पृथ्वी की ओर आने लगे तो सूर्य को अन्धेरे में बदल देने वाले अन्धड़ भी आ सकते हैं। कई प्रकार के ऐसे रोग कीटाणु भी पृथ्वी पर उतर सकते हैं जिनका अस्तित्व अभी पृथ्वी पर नहीं देखा गया। यह अवतरण किन्हीं असाध्य महामारियों की उत्पत्ति का निमित्त कारण हो सकता है। इस थोड़े से टकराव में हिमियुग लौट पड़ने की सम्भावना का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

पुरातन मान्यता के अनुसार धूमकेतुओं का उदय देवताओं द्वारा छोड़ी गई क्रोध सूचक दुर्गन्ध से होता है जो कि पृथ्वी निवासियों का अनिष्ट करता है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान्यता की आंशिक पुष्टि केपलर, गैलीलियो, कोपरनिक्स, न्यूटन, प्लेटो आदि वैज्ञानिकों ने भी की है और कहा है कि इनका पृथ्वी के निकट आना चिन्ताजनक ही हो सकता है। आधुनिक वैज्ञानिक ऐसा तो नहीं मानते, पर इस नवागन्तुक द्वारा उत्पन्न हो सकने वाले खतरों से बेखबर भी नहीं हैं। वैज्ञानिक फ्रेडहाइल का कथन है कि उसकी पूँछ पृथ्वी पर कई प्रकार के नए अविज्ञात रोग कीटाणु बिखेर सकती है।

प्रस्तुत धूमकेतु का वजन अन्यों की अपेक्षा १० हजार बिलियन टन आँका गया है। वह १० नवम्बर ८५ से २६ अप्रैल ८६ तक पृथ्वी के निकट रहेगा। उस बीच कभी-कभी वह दुर्बीनों से ही नहीं नंगी आँखों से भी देखा जा सकेगा। संसार के अनेक देश, अपने पृथक साधनों से भी और संयुक्त साधनों से भी उसकी जाँच पड़ताल करेंगे और इसके लिये इस वर्ष के मध्य में अन्तरिक्ष यान भेज चुके हैं। अमेरीका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस आदि इस में अग्रणी रहे हैं। उसकी कुछ धूलि बटोर कर पृथ्वी पर भी लाने का विचार है ताकि उसके इतिहास और प्रभाव का अधिक अच्छा मूल्यांकन हो सके।

अन्तरिक्ष में छोटे-बड़े प्रायः १ खरब धूमकेतु विचरते खोजे गये हैं। इनमें सबसे बड़ा वर्त्तमान धूमकेतु 'हेली' है। पिछले छोटे धूमकेतु जब कभी पृथ्वी के निकट आये हैं तब भारी उथल-पुथल करते रहे हैं। उनने पृथ्वी का नक्शा बदला और विशालकाय प्राणियों का नस्लों का, अन्त कर दिया। सन् १६०८ में ३० जून को आये एक छोटे से धूमकेतु ने सायबेरिया की भूमि पर एक भयंकर विस्फोट तो किया ही था आकाश को चमकती धूलि से भी भर दिया था। प्रथम विश्वयुद्ध इसी की परिणति रूप में माना जाता रहा है।

धूमकेतु अध्ययन के लिए उसके निकट १० किलोमीटर रहने पर भी किसी दुर्घटना की आशंका की जाती है, ऐसी दशा में उसे दूर भगा देने के लिए शक्तिशाली अणु आयुध तैयार रखे गये हैं। जो उसका शीर्ष भाग उड़ा देने या रास्ता बदल देने में समर्थ हो सकें। इतने पर भी यह आशंका बनी ही रहेगी कि धकेले जाने पर सौर मण्डल के किसी अन्य ग्रह का सन्तुलन न बिगड़े। अच्छाई इतनी ही है कि वह निकटतम होते हुए भी पृथ्वी से ६५० लाख किलोमीटर दूर रहेगा। उसकी पूँछ ८ करोड़ किलोमीटर लम्बी होगी जो दूर रहते हुए भी पृथ्वी को प्रभावित करेगी।

इन सब आशंकाओं को ध्यान में रखते हुए ईश्वर से प्रार्थना यही की जानी चाहिए कि यह विपत्ति भी उसी तरह टल जाय जिस प्रकार कि इन परिस्थितियों में पहले भी "स्काई लैब" जैसी एवं अनेकों विपत्तियाँ, प्रकृति प्रकोप टलते रहे हैं अथवा कम हानि पहुँचाकर ही इतिश्री करते रहे हैं। हर दृष्टि से प्रस्तुत वर्ष एवं आने वाले तीन वर्ष विश्व वसुधा की भविष्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे। इन दिनों मानवता को एक नहीं, अनेकानेक विभीषिकाओं का सामना करना पड़ सकता है। परीक्षा की घड़ी तो है ही यह। ऐसे में सामूहिक धर्मानुष्ठानों का वातावरण परिशोधन की दृष्टि से सर्वोपरि महत्व है। धरती को यदि मँझधार पार करनी है तो सभी या तो एक साथ पार होंगे या डूबेंगे। आशा करनी चाहिए कि सब विपत्तियों के निवारण हेतु संघबद्ध होंगे। ★

(शेष पृष्ठ ५१ का)

पुनः बुलाया गया। संत ने पूछा "बादशाह अपनी पत्नी और पुत्र सहित प्रभु मार्ग पर चलना चाहता है। क्या उसके अधिकारियों को उसका सहयोग नहीं करना चाहिए? चौकीदार रो पड़ा, बोला "चाहे जो सजा दे दें, मैं झूठ बोला था। खोपड़ी आदि सभासदों ने घर में रखवायी थी। बादशाह आग बबूला हो उठा। उसने भ्रष्ट सभासदों को देश निकाला दे दिया।

सन्त बोले—"बादशाह! यह आपके लिए प्रभु का शिक्षण है। घोड़ा तुम्हारी प्रगति का प्रतीक है। इसके पैर ठीक न होने से तुम यात्रा नहीं कर सकते थे। इसी प्रकार जब तक मनुष्य अपनी निजी आस्था, धर्मपत्नी, उत्तराधिकारी पुत्र और अपने अधिकार क्षेत्र, इन चारों को ईश्वर के अनुकूल नहीं बनाता, तब तक पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता। ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विघातक इरादे बदल भी सकते हैं

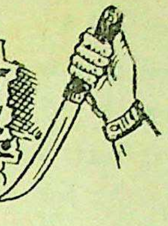

पाल ब्रंटन ने अपनी "गुप्त भारत की खोज" में जहाँ अनेकों योगियों की अद्भुत चमत्कारी घटनाओं का उल्लेख किया है वहाँ अध्यात्म विषय में अभिरुचि रखने वालों और खोजियों के मन्तव्यों का भी संकलन किया है। उनके अनुसार भारतीय वैज्ञानिक सी० वी० रमन के सम्मुख एक योगी को साइनाइड विषपान करने का उदाहरण सामने आया तो उनने इतना ही कहा कि यह विज्ञान के लिए एक चुनौती है। उसे तथ्य प्रमाणों एवं तर्कों द्वारा इनका खण्डन अथवा मण्डन करना चाहिए।

"लिविंग युनिवर्स" के लेखक सर यंग हस्बैण्ड का कथन है कि जिस जड़ ब्रह्माण्ड का ऊहापोह भौतिक विज्ञान द्वारा किया जाता है, उसके अन्तराल में एक चेतन ब्रह्माण्ड भी है जिसमें आत्मा की गतिविधियाँ और रीति-नीतियाँ काम करती हैं। इस सन्दर्भ में भारत अभी भी बहुत कुछ रहस्योद्घाटन करने की स्थिति में है। हिमालय की कन्दराओं में ऐसी आत्माएँ अवस्थित हैं जिन पर मानवी शरीर के साधारण नियम लागू नहीं होते।

अपने इसी ब्रह्माण्ड में एब्सोल्यूट वैक्युम (पूर्ण शून्य) की यत्र-तत्र परिस्थितियाँ हैं। वे स्वेच्छाचारी प्रतीत होती हैं। मनमर्जी से जहाँ-तहाँ परिभ्रमण करती हैं पर यह सम्भव है कि उन्हें आत्म-शक्ति द्वारा किसी स्थान विशेष पर घसीट कर लाया जा सके और उस क्षेत्र में चलने वाली समस्त गतिविधियों को ठप्प किया जा सके, भले ही वे कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हों।

इन दिनों अणु बम—हाइड्रोजन बम, रसायन बम, नापाम बम आदि की बहुत चर्चा होती है और इनकी विघातक शक्ति का भयावह वर्णन किया जाता है। यह हो सकता है कि जिस क्षेत्र में इनका उत्पादन एवं प्रयोग की योजना है उसे पूर्ण शून्य के प्रभाव में ले लिया जाय और इनका प्रयोग ही न हो सके। अन्तरिक्ष में एक इस प्रकार की "पूर्ण शून्य" की रचना हो सकती है जिसमें "लैसर" और मृत्यु किरणों तक को ठप्प किया जा सके। उनके सामने प्रक्षेपणास्त्रों और बमों की क्षमता तो खिलौने जैसी कही जा सकती है।

विनाश की शक्तियाँ अद्भुत हैं, वे अपने मारक कृत्यों और क्षमताओं का प्रदर्शन बहुधा करते रहते हैं। पर यह भी असम्भव नहीं है कि पूर्ण शून्य की क्षमता के सम्मुख वे अपने को असहाय एवं असमर्थ अनुभव करें और विघातक योजनाएँ उनके निर्माताओं के मस्तिष्क तक ही सीमित रहें। जो करना चाहती हैं, वे न कर सकें।

प्रकाश की गति सर्वोपरि मानी गई है। अब तक के गणित की पहुँच यहीं तक है कि एक सैकिण्ड में १,८६,००० मील चल सकने वाला प्रकाश ही सर्वाधिक द्रुतगामी है। किन्तु इससे भी आगे गुरुत्वाकर्षण की दौड़ है। पृथ्वी एक छोटा ग्रह है, इसलिए उसकी भ्रमण क्षमता स्वल्प है। किन्तु बड़े ग्रह पिण्डों के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में प्रवेश पा सकने पर प्रकाश की गति से भी अधिक गति हस्तगत हो सकती है।

"ब्लैक होल" जिन ग्रहों के—पदार्थ के सम्पर्क में आते हैं उसे इस प्रकार पराभूत कर लेते हैं कि उसे तनिक दूरी तक भी देखा न जा सके। किन्तु इन ब्लैक होलों के केन्द्र बिन्दु जहाँ होता है वहाँ इतनी गति होती है कि प्रकाश का समूचा परिकर ही उसमें अदृश्य हो सके। यह गति की ज्ञात चरम सीमा है। इसे प्रकाश गति से कहीं अधिक समर्थ माना गया है।

जिस प्रकार वर्षा के दिनों में पानी, ठण्डक के दिनों में ओस और गर्मी के दिनों में धूल ऊपर से नीचे की ओर बरसती देखी जाती है। उसी प्रकार अनन्त अन्तरिक्ष के कितने ही तारक और प्रवाह अपनी धरती पर विभिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तर के परमाणु एवं तरंग विकिरण बिखेरते रहते हैं। इनमें पृथ्वी की पाचन शक्ति जिन्हें उपयोगी एवं आवश्यक समझती है उन्हें ग्रहण करती एवं पचाती रहती है। जो अनुपयोगी होते हैं उन्हें अपने इर्द-गिर्द तनी छतरी से रोकती और जिधर-तिधर छितरा जाने देती है। फिर भी उस छतरी को बेधकर कुछ न कुछ मात्रा में वह विशिष्ट विद्युत प्रवाह नीचे आता रहता है।

छतरी तान लेने पर कड़ी धूप का एक अंश ऊपर रुक जाता है फिर भी उसे पार करके गर्मी का एक अंश नीचे उतर आता है और मनुष्य अनुभव करता है कि उसे गर्मी लग रही है। इसी प्रकार वर्षा के दिनों में छाता लगा होने पर पानी का एक अंश इधर-उधर वह जाता है फिर भी उसके बारीक छेदों में से रिसकर पानी हलकी फुहारों के रूप में नीचे आता रहता है और छाता लगाकर चलने पर भी कपड़े या शरीर का कुछ भाग नम हो जाता है। छाते का कपड़ा मोटा है या झीना इस बात पर छनकर नीचे आने वाली बात बहुत कुछ निर्भर करती है।

पृथ्वी से कुछ मील ऊँचाई पर विचित्र पदार्थों की विनिर्मित छतरियाँ तनी हैं जिन्हें आयनोस्फियर, ट्रोपोस्फियर, लीथोस्फियर, बायोस्फियर आदि नाम दिये गये हैं। यह कवच पृथ्वी से लेकर ४००० किलोमीटर तक चले गये हैं। इन्हें एक छलनी के बाद दूसरी छलनी कह सकते हैं। इनसे टकराते और छितराते हुए अन्तरिक्षीय विकरण का अनुपयुक्त भाग इधर-इधर बिखर जाता है और ऊपर ही रुक जाता है और पृथ्वी अपनी काम चलाऊ स्थिति में बनी रहती है। यदा-कदा ऐसे अवसर भी आते रहते हैं कि अधिक सशक्त दबाव ऊपर से नीचे तक आ पहुँचता है और उससे वातावरण असाधारण रूप में प्रभावित होता है। ऐसे अवसर पृथ्वी के जन्म से लेकर अब तक अनेक बार आये हैं जिसमें अन्तरिक्षीय तरंग वर्षा की प्रबलता से पृथ्वी की परिस्थितियों में असाधारण उथल-पुथल होती रही है। हिम युग, जल प्रलय, अत्यधिक उष्मा, प्राण घातक वायु आदि के अभिवर्षण से ऋतुओं में भारी उलट-पुलट हुई है और अभ्यस्त वातावरण में अन्तर आने से जीवधारियों ने या तो अपनी प्रकृति बदली है या फिर उनमें से अधिकांश समाप्त हो गये हैं। यही बात वनस्पतियों के सम्बन्ध में है। उनकी आकृति और प्रकृति में हेर-फेर हुआ है। प्राणधारी जल, वायु और वनस्पति जन्य आहार के आधार पर अपना जीवन धारण किये रहते हैं। इस आधार पर उनकी आदतें बदलती हैं और गुण स्वभाव में परिवर्तन होता है। यों ऐसे अवसर यदाकदा ही हजारों वर्षों बाद कारण विशेष में आते हैं अन्यथा एक बार का निर्धारित ढर्रा लम्बे समय तक चलता रहता है थोड़े परिवर्तन को ध्रुव प्रदेशों की संरचना और कार्य पद्धति अपने ढंग से सन्तुलित कर लेती है। यह क्रम इस प्रकार चलता रहता है कि सर्व साधारण को उसका पता भी नहीं चल पाता और आने वाले आँधी तूफान अपने ढंग से उतर जाते हैं।

पृथ्वी के ऊपर चढ़े हुए छातों का यथा स्थिति बने रहना आवश्यक है। वह ऐसे ही हैं जैसे शरीर पर कपड़े या मकान पर छत का आच्छादन। यह आवरण फट जाय

> दया प्रेम की चेरी है।
>
> —डेनियल

या झीना पड़ जाय तो ऋतु प्रभाव शरीर को प्रभावित करेगा और असाधारण होने पर स्वस्थता को लड़खड़ा देगा।

ब्रह्माण्ड में बरसने वाले तरंग प्रवाह को जितना पृथ्वी की साधारण संरचना रोक सकती है उतना ही सम्भाल कर पाती है यदि वह दवाब अत्यधिक मात्रा में हो जाय तो बेचारी पृथ्वी क्या, कोई भी सशक्त ग्रह पिण्ड भी उसकी चपेट में आ सकता है और उसका कचूमर निकल सकता है। तारकों का जन्म-मरण इसी आधार पर होता रहता है। स्वाभाविक मौत तो उनमें से बहुत कम की आती है। उनमें से अधिकांश को ऐसे ही किसी अन्तरिक्षीय प्रवाह की चपेट में आकर दुर्घटनाग्रस्त होना पड़ता है।

आवश्यकता इस बात की है कि भौतिक विज्ञान के आधार पर विघातक शक्तियों पर अंकुश लगा सकने जैसी कोई विशिष्ट क्षमता विकसित हो और अनर्थ को रोक सकने के लिए ऐसे साधन जुटायें जो भयभीत मानवता को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सान्त्वना दे सके और जो उपलब्ध सामर्थ्य के आधार पर मदोन्मत्त हो रहे हैं उन्हें नये ढंग से सोचने के लिए सहमत कर सके। आवश्यक नहीं कि जो आज का निश्चय है, वह कल भी उसी रूप में बना रहे। एकांगी चिन्तन मनुष्य को दुराग्रही बनाता है पर जब विपरीत पक्ष को ध्यान में रखते हुए विचार करने का अवसर मिलता है तो वह अपनी राह बदल भी सकता है।

परा मनोविज्ञान के अन्तर्गत मेण्टल ट्रान्स फार्मेशन की, 'ब्रेन वाशिंग' की एक सशक्त प्रक्रिया है जो मनुष्य को आज की अपेक्षा कल दूसरे ढंग से सोचने और अह-कारी उन्माद को दूरदर्शी विवेक अपना कर नये ढंग से सोचने के लिए सहमत कर सकती है।

यहाँ अणु आयुध सब कुछ हैं, अन्तरिक्ष बढ़िया किस्म का रण क्षेत्र है, दूसरे का विनाश करके हम सुरक्षित रह सकते हैं, यदि इस विचारधारा का कोई दूसरा विकल्प सूझ पड़े, अपनी भूल का आभास हो और साथ ही यह अनुभूति हो कि जिस आक्रामक योजना को सफल सुनिश्चित माना गया था वह व्यर्थ निरर्थक भी सिद्ध होने जा रही है तो कोई कारण नहीं कि आक्रमण की दिशा में उठते पैर और बढ़ते हाथ रुक न सकें।

राजा जनक महल की छत पर सोये हुए थे। हंस हंसिनी, अटारी की मुण्डेर पर बैठे वार्त्तालाप करने लगे। हंसिनी बोली—इन दिनों सबसे बड़े ब्रह्मज्ञानी राजा जनक हैं। हंस ने बात काट कर कहा—तुम रैक्य को जानती नहीं। अपने समय के वे ही सबसे बड़े ब्रह्मवेत्ता हैं। हंसिनी ने पूछा—भला कौन है—रैक्य? हंस ने उत्तर दिया—अरे, वही गाड़ी वाला रैक्य, जो गाड़ी खींचकर बोझ ढोता और अयाचित वृत्ति से निर्वाह करता है।

जनक अधजगे थे। वे पक्षियों की भाषा जानते थे। सो करवट बदलकर हंस हंसिनी की वार्त्ता ध्यान पूर्वक सुनने के निमित्त करवट बदलने लगे। आहट पाकर युग्म चौकन्ना हुआ और उड़ गया। बात अधूरी रह गई।

राजा को नींद नहीं आई। रैक्य कौन हैं? कहाँ रहते हैं? उनसे सम्पर्क कैसे सधे? यह विचार उन्हें बेचैन किये हुए था। सबेरा होते ही दरबार लगा। राजा ने सभासदों से गाड़ी वाले रैक्य को ढूंढ़ निकालने का आदेश दिया। दौड़-धूप तेजी से आरम्भ हो गई।

कठिनाई से बहुत दौड़-धूप के बाद रैक्य का पता चला। राजदूतों ने उनसे जनक नगरी चलने का अनुरोध किया। जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। मुझे राजा से क्या लेना-देना—अपना प्रस्तुत कर्त्तव्य पूरा करूँ या इधर-उधर भागता फिरूँ?

दूतों ने सारा विवरण कह सुनाया। जनक स्वयं ही चल पड़े और वहाँ पहुँचे जहाँ गाड़ी खींच धकेलकर निर्वाह चलाते और साधना सेवा का समन्वित क्रम चलाते थे।

राजा ने इतने बड़े ब्रह्मज्ञानी को ऐसा कष्ट साध्य जीवनयापन करते देखा तो द्रवित हो उठे। सुविधा साधनों के लिए उनने धनराशि प्रस्तुत की।

अस्वीकार करते हुए रैक्य ने कहा—राजन्, यह दरिद्रता नहीं, ब्रह्मवेत्ता का अपरिग्रह है। जिसे गंवा बैठने पर तो मेरे हाथ से ब्रह्म तेज भी चला जायगा।

तत्वज्ञान के अनेक मर्म रहस्यों को सत्संग से जानने के उपरान्त जनक यह विचार लेकर वापस लौटे कि विलासी नहीं अपरिग्रही ही सच्चा ब्रह्मज्ञानी हो सकता है। उन्हें नई दिशा मिली। उस दिन से उन्होंने अपने हाथों कृषि करने, हल चलाने की नई योजना बनाई और श्रम उपार्जन के सहारे निर्वाह करते हुए राज-काज चलाने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यदि अणु युद्ध हुआ तो........"

जहाँ एक ओर विश्व के अनेकों राष्ट्र भुखमरी, अशिक्षा, बीमारी से ग्रसित हैं। वहीं दूसरी ओर कुछ विकसित देश—विश्व के कुल उत्पादन का ८५ प्रतिशत मूर्खतावश सैनिक साज-सज्जा एवं अस्त्र-शस्त्रों पर व्यय कर रहे हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व का रक्षा व्यय चौगुना हो गया है जो इन दिनों ६०० विलियन डालर है।

अन्तर्राष्ट्रीय मिलीट्री स्ट्रेटेजी संस्था लन्दन के आँकड़ों के अनुसार विश्व की दोनों महा शक्तियों के अणु अस्त्रों तथा शस्त्रों पर १०० मिलियन डालर प्रतिदिन खर्च होता है। इन दिनों सैनिक कुल २५ मिलियन और उनके लिए साज-सज्जा तैयार करने वाले व्यक्ति ५० मिलियन हैं। विश्व की दुर्दशा और युद्ध की तैयारी का परस्पर अति घनिष्ठ सम्बन्ध है।

युद्ध लिप्सु देशों पर यह अर्थ शास्त्र सवार है कि युद्ध का वातावरण बनाए रखो, कहीं न कहीं उसके विस्फोट कराते रहे ताकि अन्य देश डर से या आक्रोश से अधिक हथियार उन देशों से खरीदें जिससे उनकी शस्त्र उत्पादन क्षमता का व्यापार अक्षुण्ण बना रहे।

एक ओर अस्त्र उत्पादन की यह चरम प्रक्रिया है वहां दूसरी ओर भुखमरी के आँकड़े भी कम भयानक नहीं हैं। पिछले चार वर्षों में कुपोषण से मरने वाले बच्चों की संख्या हर वर्ष १ करोड़ ७० लाख के अनुपात में रही है। चीन, पाकिस्तान, बंगला देश, भारत जैसे अनेकों ऐशियाई और अफ्रीकी देशों को बाहर से अन्न मँगाने के लिए लालायित रहना पड़ा है।

सैनिक व्यय कुछ ही वर्षों में ६० गुना अधिक बढ़ गया है। इससे भी अधिक भयंकरता प्रक्षेपणास्त्रों और अणु बमों की है। इस समय विश्व में १३८६ प्रक्षेपणास्त्र हैं और पाँच देशों के पास जो अणु बमों का जखीरा है वह समूची पृथ्वी को दस बार भून डालने के लिए काफी है।

जापान का अनुभव लोग अभी भी भुला नहीं पा रहे हैं। दो छोटे बम गिराकर उस देश को पूरी तरह आत्म-समर्पण के लिए विवश कर दिया गया था। वही सपने अभी भी देखे जा रहे हैं किन्तु इन ४० वर्षों में परिस्थितियाँ कितनी बदल गईं। यह बात ध्यान में लाई नहीं जाती। उन दिनों जापान अणु आयुधों की दृष्टि से निहत्था था जबकि आज प्रमुख पाँच देशों के पास इतने भयानक बम हैं जिनका उपयोग वे सीधे या पिछलग्गुओं के माध्यम से करा सकते हैं।

इस बार का सीमित युद्ध भी असीम होगा और उसका प्रभाव कुछ देशों तक सीमित न रहकर विश्व-व्यापी होगा। परमाणु वैज्ञानिक बरनार्ड लिस बौडर्ड के कथनानुसार सीमित युद्ध में भी दुनिया की आक्सीजन का बड़ा भाग नष्ट हो जायगा। महीनों सूर्य के दर्शन न होंगे। विषैला धुआँ छाया रहेगा और उस घुटन में मरने वालों की संख्या अणु प्रहार से मरने वालों की तुलना में कहीं अधिक होगी। तापमान गिर जायगा। फसलें नहीं उगेंगी। विकिरण के प्रभाव से घास वनस्पतियों का उगना कम हो जायगा। जो उगेंगी, वे जहरीली होंगी। ऐसी दशा में पशु पक्षियों का बचना भी कठिन पड़ेगा। उस समय इतने प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होंगी जिनकी आज तो कल्पना तक नहीं की जा सकती। जब पेट भरना और बीमारों के लिए कारगर दवा का मिलना ही सम्भव न होगा तो अन्य कठिनाइयों का तो कहना ही क्या? मनुष्य आदिमकाल की असभ्य स्थिति से बुरी दशा में पहुँचेगा। आशा करनी चाहिए कि दुर्बुद्धि पर विवेक का अंकुश लगेगा और ऐसा कुछ न होगा जिससे यह सृष्टि नष्ट हो जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अपनों से अपनी बात

इस सुयोग से कोई विवेकशील वंचित न रहे

तैराकी तालाब में घुस कर सीखी जाती है और पहलवानी अखाड़े में। पढ़ना पाठशाला में होता है और व्यवसाय हाट बाजार में। इस धरती पर सबसे अधिक समर्थ माना जाने वाला आत्मबल जुटाना और बढ़ाना हो तो सेवा मार्ग अपनाने का और कोई उपाय नहीं। संयम साधना के बिना—उदारता और सज्जनता विकसित करना आध्यात्मिक प्रगति के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है। जप तप इसी पृष्ठभूमि पर उगते और फलते-फूलते हैं। मात्र कर्मकाण्डों के सहारे दिशा निर्धारण और स्वाध्याय सत्संग से उपयुक्त मार्ग-दर्शन होता है। जिस कल्प वृक्ष पर गौरव और वर्चस्व के फूल खिलते और फल लगते हैं वह आत्मशोधन के खाद और परमार्थ परायण का पानी पाकर ही ऊँचा उठता और किसी को छाया में बिठा कर अभीष्ट अनुदानों से निहाल करता है।

इस तथ्य को प्रज्ञा परिजनों को समय-समय पर अवगत कराया जाता रहा है। जो सीखा और सिखाया गया है उसकी परीक्षा प्रतियोगिता का इन्हीं दिनों विशेष आयोजन किया गया है—हीरक जयन्ती का। किसकी जयन्ती इसे जानने को किसी को भ्रमित नहीं होना चाहिए। पच्चीस वर्ष में रजत जयन्ती, पचास में स्वर्ण जयन्ती, पचहत्तर में हीरक जयन्ती और सौ वर्ष में शताब्दी मनाई जाती है। यह काल गणना गुरुदेव से यत्किंचित ही सम्बन्ध रखती है। उनका शरीर भले ही पचहत्तर वर्ष का हुआ हो उनका तप साधना भले ही साठ वर्ष पूरे कर चुका हो, पर वस्तुतः वे इस प्रकार के गणित से बहुत ऊपर हैं। आत्माएँ न जन्मती हैं, न बढ़ती हैं और न मरती हैं। जो अजर अमर है उसकी किस पैमाने से नाप-तौल की जाय। वे भगवान बुद्ध के शब्दों में अनेक बार दुहराते रहे हैं कि जब तक एक भी प्राणी बँधन में बँधा है तब तक हमें स्वर्ग या मुक्ति में नहीं जाना। जब सभी पार हो चुके, मल्लाह के डाँड़ तभी रुकेंगे। जिन्हें निरन्तर जन्म लेने हैं और विश्व परिवार के साथ जीना मरना है, उनके लिए हर दिन नया जन्म और हर रात नई मौत बन कर रहती है। ऐसी दशा में किस काल गणना के हिसाब से उनकी हीरक या कोई जयन्ती मनाई जाय?

अब अवसर विशेषतया एक महान प्रयोजन की पूर्ति के लिए किया गया है जिसमें स्वर्ण सदृश परिजनों को तपा हुआ कुन्दन बनाया जाय। जिसमें कोयले की खदान को उलट-पलट कर उसमें से हीरों का ढेर लगाया जाय। इतना ही नहीं साथ ही यह भी किया जाता है कि उन्हें खरादा, चमकाया एवं जौहरी के बाजारों में ऊँचा मूल्यांकन हो सकने योग्य बनाया जाय। यह अवसर एक प्रतिस्पर्धा समारोह है जिसमें सभी प्राणवनों को अपना जौहर दिखाने और उपयुक्त पुरस्कार पाने का अवसर मिलेगा। विवाह शादियों के समय एक उल्लास बरसता है उसी के आनन्द लेने के लिए सभी स्वजन सम्बन्धी एकत्रित होते हैं। उसमें समय, श्रम औ धन की दृष्टि से घाटा ही रहता है। हीरक जयन्ती को इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए और उसके सर्न में किन्हें क्या करना है इसका निर्धारण किया जाना चाहिए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुभ कामना, बधाई, घनिष्ठ पारिवारिक होने की दिशा में ओछे शिष्टाचार भर रह जाते हैं। धूमधाम और समारोह आयोजन की भी इन दिनों उपयोगिता नहीं समझी गई ताकि लक्ष्य से किसी का ध्यान न हटे। कुछ प्रत्यक्ष कृत्य करना हो तो दो बातें नोट की जा सकती हैं। एक यह कि बसन्त पर्व तक निरन्तर चलने वाले सत्रों में से किसी में सम्मिलित होने का समय निकाला जाय और अतिरिक्त प्राण ऊर्जा साथ लेकर वापस लौटा जाय। दूसरा यह कि आगामी बसन्त पर्व पर स्थानीय स्तर का छोटा गायत्री यज्ञ और युग निर्माण सम्मेलन अपनी स्थिति के अनुरूप कर लिया जाय। उसके लिए बाहर से मिशन के प्रवक्ताओं के आने वाले की आशा न की जाय क्योंकि वे अपने-अपने स्थानों में गायत्री यज्ञ और ज्ञानयज्ञ युग निर्माण सम्मेलन का प्रबन्ध करने में लगे होंगे।

यह अभिव्यक्ति का प्रदर्शन है। ठोस काम वह किया जाना चाहिए जिसे करने का दायित्व महाकाल ने वरिष्ठ प्रज्ञापुत्रों के कन्धों पर सौंपा है। वह कार्य एक ही है— जनमानस में महाप्रज्ञा का आलोक भर देना। इसके लिए किस स्थिति में किन्हें क्या करना चाहिए इसका उल्लेख इन पंक्तियों में होता रहा है। उस पर एक बार फिर दृष्टिपात किया जा सकता है कि जो सौंपा गया था वह बन पड़ा या नहीं। बन पड़ा तो इतना कम तो नहीं है जो तपती धरती को मूसलाधार जल बरसने वाले महामेघ की गरिमा से कम पड़े। समय की माँग बड़ी है उसके लिए उथली पूजा से काम नहीं चल सकता। जलते तवे पर पानी की कुछ बूँदें पड़ने से क्या काम चलता है। इसके लिए इन दिनों समर्थों का ऐसा पुरुषार्थ होना चाहिए जो उलटे को उलट कर सीधा कर सके।

इसके लिए प्रत्येक वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र सर्वथा समर्थ है। यदि परिस्थितियाँ बाधक हैं तो उन्हें ठोकर मारकर रास्ता रोकने से हटाया जा सकता है सृष्टा का राजकुमार मनुष्य केवल इसलिए दुर्बल पड़ता है कि उसे लोभ, मोह और अहङ्कार की बेड़ियाँ बेतरह जकड़कर असहाय बना देती हैं। यदि औसत भारतीय स्तर का निर्वाह अपनाया जाय परिवार को छोटा, सभ्य, सुसंस्कृत, स्वावलम्बी रखा जा सके तो युग धर्म के उच्चस्तरीय निर्वाह की सुविधा हर किसी को सहज ही मिल सकती है। संकीर्ण स्वार्थ-परता और अहङ्कारी साज-सज्जा जुटाने में तनिक कटौती की जा सके तो हर विचारशील को इतना अवकाश मिल सकता है जिसमें वह आत्म-कल्याण और युग निर्माण की महती आवश्यकताओं को पूरा कर सके। प्रकारान्तर से यही कोयले के बहुमूल्य हीरा बनाने वाला काया कल्प है। इसे स्वेच्छापूर्वक किया जा सकता है। सहयोग की कमी हो तो सत्पात्र की सुगन्ध सूँघकर खिले पुष्प पर मँडलाने वाले भ्रमरों की तरह समूचा देव परिकर दौड़ पड़ता है। गुरुदेव ने मात्र अपनी पात्रता बढ़ाने में अथक प्रयास किया है और वह पाया है जो सच्चे अध्यात्म का सच्चा अवलम्बन करने पर मिलना चाहिए। इसी के अनुकरण की आवश्यकता है। हीरक जयन्ती का एक ही सन्देश है कि यदि किसी की प्रज्ञा अभियान में उसके सूत्र-संचालक में वास्तविक श्रद्धा हो तो उसका बखान करके नहीं कार्य रूप में अपनी ऐसी श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत करनी चाहिए जिसकी इस विनाश के ज्वालामुखी पर बैठे संसार को नितान्त आवश्यकता है। ऐसी आवश्यकता है जिसकी अनिवार्य आवश्यकता है। इतनी अनिवार्य कि उसे एक क्षण के लिए भी टाला नहीं जा सकता।

क्या किया जाय? इसका संक्षिप्त उत्तर इतना ही है कि अपने प्रभाव क्षेत्र में दीपक की तरह अपने को श्रद्धा का प्रतीक बनाया जाय और सम्पर्क क्षेत्र में युग चेतना का आलोक जगाया जाय। घर-घर नव परिवर्तन का अलख जगाने के लिए कटिबद्ध होकर निकल पड़ा जाय। इसके निमित्त क्या किया जाय। इसका सार संक्षेप छ सूत्री योजना के रूप में मई की अखण्ड-ज्योति में तथ बाद की अन्यान्य पत्रिकाओं, टाइटिल के तीसरे पृष्ठ पर छप चुका है। उसमें नवीनता कुछ नहीं पुनः स्मरण कराया जाना मात्र है। इसे परिजन चाहें तो अनुरो आग्रह या निर्देश भी मान सकते हैं। ऐसा अनुरोध जि फिर कभी के लिए नहीं ही टाला जाना चाहिए।

कोयले का काया कल्प हीरा है। हममें से कौन अ तक क्या था इसकी चर्चा अप्रासंगिक है। अभीष्ट परिवर्तन है। ऐसा परिवर्तन जिसे नये जन्म का ना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्ड ज्योति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ें और पायें

१- सुनिश्चित वरदायी—आत्मदेव — १
२- शाश्वत आनन्द का अनुसन्धान — २
३- सृष्टा की अगम्य संरचना — ३
४- मानवी तेजोवलय — ६
५- साधना बनाम मनोकामना — ७
६- बहिरंग योग की सरल साधनाएँ — ९
७- पूर्वाग्रहों से उबरिए — ११
८- उपासना का उद्देश्य समझें — १३
९- प्रतिपादन और उसका प्रभाव — १५
१० थियोसोफी का तत्वदर्शन — १७
११ प्रकृति के रहस्य अपने अन्तराल में खोजें — १९
१२- जीवन जीने की कुशलता — २३
१३- मनोबल का अभिवर्धन और सदुपयोग — २५
१४- मनुष्य की विलक्षण अतीन्द्रिय क्षमताएँ — २९
१५- जीवन सम्पदा की फुलझड़ी न जलाये — ३१
१६- दृश्य के साथ जुड़ा हुआ अदृश्य — ३३
१७- आसुरी शक्तियों का कुप्रभाव — ३६
१८- यह संसार सह अस्तित्व सिद्धान्त पर टिका है — ३७
१९- क्या मनुष्य स्वभावतः आक्रामक है — ४०
२०- सन्तति की उत्कृष्टता के लिए जन्मदाता उत्तरदायी — ४१
२१- अजब तेरी कुदरत अजब तेरा खेल — ४३
२२- मरने के बाद भी आत्माएँ धरतीवासियों से सम्बन्ध रखे रहती हैं — ४६
२३- स्वप्न बहुधा सार्थक भी होते हैं — ४९
२४- भौतिक विज्ञान के अभिशाप और वरदान — ५२
२५- बलिवैश्व हमारा दैनिक धर्म कर्त्तव्य — ५५
२६- संगीत का प्राणियों और वनस्पतियों पर प्रभाव — ५७
२७- कुण्डलिनी महाशक्ति—एक परिचय — ५९
२८- अपनों से अपनी बात—साधु ब्राह्मण परम्परा का पुनर्जीवन — ६२
२९- गायत्री चालीसा पाठ अनुष्ठान — ६५

नवम्बर — १९८५
अङ्क — ११
वर्ष — ४८
वार्षिक चन्दा — २०)
आजीवन — २००)
विदेश में वार्षिक — १७५)

पता—अखण्ड-ज्योति संस्थान, मथुरा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

अखण्ड ज्योति

प्रज्ञायोग अध्यात्म विज्ञान

४८

वर्ष ४८
अङ्क ११

नवम्बर १९८५

वार्षिक २०)
आजीवन २००)
विदेश में: वार्षिक १७५)

सुनिश्चित वरदायी - आत्मदेव

परोक्ष देवता अगणित हैं और उनकी साधना उपासना के माहात्म्य तथा विधान भी बहुतेरे। किन्तु इतने पर भी यह निश्चित नहीं कि वे अभीष्ट अनुग्रह करेंगे ही। इच्छित वरदान देंगे ही। यह भी हो सकता है कि निराशा हाथ लगे। मान्यता को आघात पहुँचे और परिश्रम निरर्थक चला जाय।

इस बुद्धिवादी युग में देव मान्यता के सम्बन्ध में सन्देह भी प्रकट किया जाता है. यहाँ तक कि अविश्वास एवं उपहास भरी चर्चाएँ भी होती हैं। ऐसी दशा में हमें सर्वजनीन ऐसे देवता का आश्रय लेना चाहिए जो साम्प्रदायिक अन्धविश्वासों से ऊपर उठा एवं सर्वमान्य हो। साथ ही जिसके अनुग्रह और वरदान के सम्बन्ध में भी उँगली न उठे।

ऐसा देवता एक है और वह है—आत्मदेव। अपना सुसंस्कृत आपा एवं परिष्कृत व्यक्तित्व। इसका आश्रय रहने पर कोई न अभावग्रस्त रह सकता है और न निराश-तिरष्कृत।

अन्य सभी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए कष्ट साध्य साधनाएँ करनी पड़ती हैं। आत्मदेव की सत्ता सबके भीतर समान रूप से विद्यमान रहते हुए भी उसे उत्कृष्ट बनाने के लिए भी निरन्तर अभ्यास की अवाश्यकता होती है। अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को ऊँचे स्तर का बनाने के लिए आत्मसुधार और आत्मविकास का आश्रय लेना पड़ता है। यही है सुनिश्चित फलदायिनी आत्मदेव की साधना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाश्वत आनन्द का अनुसंधान

आनन्द को पाना चाहते हो तो उसकी ओर कदम बढ़ाओ—लम्बी मंजिल पर एक-एक डग भरते चलने से ही उसकी समीपता का लक्ष्य पूरा हो सकेगा।

इसके लिए किसी सघन कुञ्ज में एकान्त साधना की आवश्यकता न पड़ेगी। कर्म को त्याग कर कल्पना लोक में विचरने से कुछ काम न चलेगा। सत्कर्मों में निरत रहकर श्वेद बिन्दुओं के साथ-साथ आनन्द के मणि-मुक्तकों का संचय किया जा सकेगा। प्रभु को भेंट करने योग्य यही सर्वोत्तम हार-उपहार है जो सत्प्रयासों में बहने वाले श्वेद सीकरों से गूँथा गया है।

आनन्द की खोज बालकों के भविष्य चिन्तन जैसी काल्पनिकता के आधार पर नहीं हो सकती और न बूढ़ों की तरह उसे अतीत की स्मृतियों की चर्चा करते रहकर पाया जा सकता है। उसके लिए कर्मनिष्ठ तरुणों की तरह वर्तमान से जूझना पड़ेगा। आनन्द गहरे कुएँ का जल है, जिसे ऊपर लाने के लिए देर तक प्रबल पुरुषार्थ करना पड़ता है। मोती लाने वाले गहराई में उतरते और जोखिम उठाते हैं। आनन्द पाने के लिए गोताखोरों जैसा साहस और कुआँ खोदने वालों जैसा संकल्प होना चाहिए।

यदि सचमुच ही आनन्दित रहने की इच्छा हो तो फूलों से कुछ सीखो। वे स्वयं खिलते हैं और जो उधर से निकलता है, उसके होठों को खिलाते हैं। अपना सौरभ उदारतापूर्वक वायुमण्डल में बखेरते हैं। यह नीति अपनाकर कोई भी भीतरी आत्म-सन्तोष और बाहरी सम्मान का भाजन बन सकता है। मधु मक्षिकाएँ अनवरत श्रम करती हैं। वे उसका लाभ नहीं उठातीं। उपभोग तो दूसरे ही करते हैं, पर इस श्रम में [illegible] कर्मनिष्ठा सहज ही आनन्द का उपहार देती रहती है। यदि ऐसा न होता तो दूसरों द्वारा मधु निचोड़ लिये जाने के उपरान्त वे दूसरे दिन फिर क्यों उसी प्रयास में संलग्न होतीं। उद्देश्यपूर्ण सत्कर्मों की प्रतिक्रिया ही आनन्द के रूप में अनुभव की जाती है। जिन्हें सरसता की खोज है, उन्हें इसी राह पर चलना पड़ेगा।

आनन्द का चिन्तन बुरा नहीं, पर उसे बीज की तरह गलना और उगना चाहिए अन्यथा नयनाभिराम वट वृक्ष की छाया में बैठकर सरसता का आस्वादन सम्भव न हो सकेगा। ध्यान और योग की अपनी उपयोगिता है, पर उतने भरसे सच्चिदानन्द का सान्निध्य सम्भव नहीं। भगवान का कोई स्थिर रूप नहीं, वे सक्रियता के रूप में गतिशील हो रहे हैं। इस विश्व की शोभा, स्वच्छता जिस दिव्य गतिशीलता पर निर्भर है। हम उसका अनुसरण करके ही प्रभु प्राप्ति के राजमार्ग पर चल सकते हैं। चिन्तन इसके लिए प्रेरणा देता है, लक्ष्य तक पहुँचने के लिए चलना तो पैरों को ही पड़ेगा। भावनाओं में प्राणों की प्रतिष्ठापना कर्मनिष्ठा ही काम करती है। सत्कर्मों में निरत हुए बिना आनन्द की अनुभूति आज तक किसी को भी नहीं हो सकी है।

नीरसता क्या है? निष्क्रियता, उद्विग्नता क्या है? अनर्थ में अभिरुचि। हमारे जन्मजात आनन्द अधिकार को इन दो ने ही छीना है। जीवन नीरस लगता है क्योंकि सत्प्रयोजन की दिशा में हम निष्क्रिय बने रहते हैं। हम उद्विग्न रहते हैं क्योंकि अकर्म और कुकर्म करके आत्मा को चिढ़ाते और बदले में चपत खाते हैं। यदि आनन्द अभीष्ट हो—तो निरानन्द की दिशा में चल रही अपनी दिग्भ्रान्त यात्रा का क्रम बदलना पड़ेगा। एक क्षण के लिए रुकें और देखें कि जो चाहते हैं उसे पाने की दिशा और चेष्टा सही भी है कि नहीं। चिन्तन के फलस्वरूप आनन्द की प्राप्ति का जो माहात्म्य बताया गया है उसका आधार यही है कि वस्तु स्थिति को नये सिरे से समझें और जीवन--नीति का नये सिरे से निर्धारण करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टा की अगम्य संरचना

शरीर के अन्तराल में जीवकोश, तन्त्रिकाएँ, ऊतक, द्रव रसायन, रक्त कण, हारमोन्स, जीन्स प्रभृति आँख से न दीख पड़ने वाले असंख्य पदार्थों से यह शरीर बना है। इतने पतले मोतियों से यह माला गूँथी है कि देखकर आश्चर्य होता है कि बनाने वाले औजार और हाथ कितने नन्हें होंगे। चावल के दाने पर गायत्री मन्त्र लिख देने वाले कई कारीगर अपनी कृतियों को जिसे भेंट करते हैं उससे अच्छा पुरस्कार पाते हैं। पर चावल की तरह निर्जीव नहीं, अरबों-खरबों घटकों को निरन्तर क्रमबद्ध गतिशीलता बनाये रखने वाले जिन जीव कणों की रचना हुई है उसे देखते हुए लगता है कि इनका सृजेता कोई बहुत ही लघु आकार का होगा।

पशु पक्षियों और चलते-फिरते गतिशील प्राणियों की बात छोड़िये मिट्टी पानी में मिले हुए सूक्ष्म जीवी, बैक्टीरिया और वायरस जैसे अदृश्य किन्तु शरीर में उथल-पुथल मचा देने वाले दैत्य जैसी सामर्थ्यों से भरे-पूरे अदृश्य जीव कणों की संरचना और कार्य पद्धति पर जब नजर डाली जाती है तो लगता है सृजेता भी प्रायः इतना ही छोटा होगा। परमाणुओं के भीतर एक समूचा सौर मण्डल नियोजित करके उसे भी नियमित गति से चलने वाला—और विस्फोट के समय प्रलय खड़ी कर देने वाला तत्व कितना छोटा है कि उसका परिचय अनुमान के आधार पर ही हस्तगत हो सका है। इसीलिए उसे नियन्ता को "अणोरणीयान" अणुओं का भी अणु, छोटे से भी छोटा कहा गया है।

किन्तु जब दूसरी ओर नजर पसार कर देखते हैं तो ब्रह्माण्ड की विशालता देखते हुए लगता है कि इतने बड़े-बड़े घटक जिस कुम्हार ने अपने चाक को घुमाते हुए बनाये होंगे उसका कारखाना और आवा कितना बड़ा होगा। जिसमें सृजन ही नहीं होता वरन् उनमें से किसी को भी चैन से न बैठने देने वाली—निरन्तर द्रुतगति से दौड़ने वाले पिण्डों में असीम सामर्थ्य भर दी है वह स्वयं आकार में कितना बड़ा होगा। उसकी कारीगरी एवं कुशलता देखते हुए सहज विश्वास होता है कि उसे 'महतो महीयान्' की उपमा दिया जाना सर्वथा सार्थक है।

ब्रह्माण्ड की विशालता की कल्पना करने मात्र से बुद्धि थकित और चकित रह जाती है और सोचना पड़ता है कि इतने विशाल घटकों की संरचना और उनकी बिना परस्पर टकराये निरन्तर गतिशील घुड़दौड़ की व्यवस्था बनाने में कितनी कारीगरी और दूरदर्शिता का समावेश हुआ है। उसे जाँचना, समझना तो दूर कल्पना मात्र कर सकने में मानवी बुद्धि अपने को असमर्थ पाती है। जिधर भी आँख उठाकर देखते हैं भीतर और बाहर आश्चर्य ही आश्चर्य दृष्टिगोचर होता है। गीताकार ठीक ही कहता था कि 'आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेन'।

यह देखना और कहना तथ्य को देखते हुए इतना स्वल्प है कि उसे समग्रता की तुलना में राई-रत्ती का भी लाख करोड़वाँ भाग कह सकते हैं।

पदार्थ विज्ञान की वर्णमाला पढ़ने वाले जब ब्रह्माण्ड की गुरुता और पिण्ड की लघुता को देखते हैं तो अपनी तोतली वाणी में छोटे बच्चों की तरह कुछ ऐसा बोलते हैं जो स्वयं उनकी समझ में नहीं आता। फिर दूसरों को वे किस प्रकार समझा सकेंगे।

हर कोई जानता है कि प्राणी में जीवन सत्ता काम करती है। उसका अन्त होते ही मृत्यु घोषित कर दी जाती है पर यह जीवन आखिर है क्या? इसका जान सकना अभी तक उनके लिए सम्भव न हो सका। यह कह देना सरल है कि मनुष्य एक चलता-फिरता पेड़-पौधा है। शरीर के अन्त के साथ ही उसका अन्त हो जाता है। पर यह बात भी गले नहीं उतरती क्योंकि मरने के बाद यदि शरीर को किसी उपयुक्त विधि से समाप्त न किया जाय तो उसके भीतर से ही असंख्य छोटे-बड़े कृमि उत्पन्न हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं और काया के सरंजाम को स्वयं ही खा-पीकर बह बराबर कर देते हैं। जब मृत शरीर में अनेक प्राणियों का जन्म हो सकता है तो उसे जड़ पदार्थ कैसे कहा जाय ? और यदि शरीर के रासायनिक पदार्थों को जीवन स्रोत कहा जाय तो मृत शरीर फिर पूर्ववत् काम करने योग्य क्यों नहीं रहता ?जीवन की पहली चेतना की विलक्षणता की अभी तक कोई व्याख्या नहीं की जा सकी तो उसकी सत्ता का स्रोत और भविष्य का विवेचन कर सकना तो और भी कठिन है। यन्त्र उपकरणों, आविष्कारों के जो छोटे-मोटे खिलौने बन पड़े हैं उन पर विज्ञान जगत को अहंकार करना ऐसा ही है जैसा गीली बालू का महल बनाने वाले का अपने को बहुज्ञ इन्जीनियर मानना।

प्रकृति जड़ है और यह सारा उसी ने अनायास ही बनाकर खड़ा कर दिया है। यदि ऐसा है तो उसके भीतर परस्पर पूरक और सहयोग-सन्तुलन बनाये रहनेवाली क्षमता किस प्रकार उत्पन्न हो गई। अनगढ़ और निर्जीव वस्तुएं घर में भी आये दिन जरा से आघात से टूटती-फूटती रहती हैं। फिर इतने छोटे और इतने बड़े घटकों में निरन्तर टकराव होना चाहिए था वह क्यों नहीं होता ? शरीर के जीवकोश और ब्रह्माण्ड के ग्रह नक्षत्र आपस में टकराते क्यों नहीं ? अपनी-अपनी निर्धारित कक्षा पर नियत चाल से क्यों कर चलते रहते हैं। यदि प्रकृति निर्जीव है तो उसकी कृतियाँ भी 'घुणाक्षर न्याय' के अनुसार जैसी-तैसी बनानी चाहिए और उनके बीच कोई पारस्परिक तालमेल नहीं होना चाहिए जबकि 'इकालॉजी के सिद्धान्त को सर्वत्र लागू हुआ देखते हैं। ऐसी दशा में यह कहना कि सृष्टि क्रम प्रकृति द्वारा स्वयमेव संचालित हो रहा है, इसमें किसी चेतन सत्ता का दखल होने की आवश्यकता नहीं पड़ी। यह कथन सर्वथा उपहासास्पद ही कहा जा सकता है।

शरीर के जीवकोश जल्दी-जल्दी मरते और नई वंश वृद्धि करते हुए रिक्तता की पूर्ति करते रहते हैं। एक का दूसरे घटक के साथ दूरदर्शिता पूर्ण सहयोग है तभी जीवन क्रम चल पाता है।

ब्रह्माण्ड की गतिविधियों पर तनिक-सी दृष्टि डालने पर प्रतीत होता है कि यह सब कितना जटिल और कितना अद्भुत है। अपने सौर मण्डल को ही लें। उसके ग्रह और उपग्रह कितनी चमत्कारी छटा दिखाते हैं कि उसकी विलक्षणता किसी जादूगर के तमाशे जैसी हैरत में डालने वाली प्रतीत होती है।

सूर्य पृथ्वी से कितनी दूर है पर उसकी किरणें ही यहाँ आकर जीवन और हरितिमा की परिस्थितियाँ प्राप्त करती हैं। ब्रह्माण्डीय किरणों की बौछार से पृथ्वी अपना सन्तुलन न गँवा बैठे इसके लिए उसके ऊपर एक से एक अद्भुत कवच चढ़े हुए हैं। उत्तर ध्रुव अन्तर्ग्रही अनुदानों में से जितने उपयोगी हैं उतने अपने पेट में ले जाता है और उपयोग करने के बाद जो कचरा बचता है उसे दक्षिण ध्रुव के द्वारा निखिल अन्तरिक्ष में धकेल देता है। यदि यह व्यवस्था न होती तो पृथ्वी भी अन्य निर्जीव पिण्डों की तरह ही एक होती और यहाँ जो अनुपम सौन्दर्य एवं वैभव बिखरा पड़ा है उसका कहीं अता-पता भी न होता।

सूर्य अपने साथ नौ ग्रह और ४३ चन्द्रमाओं का परिवार साथ लेकर एक महासूर्य की परिक्रमा के लिए निकला है। यह यात्रा लाखों वर्षों में पूरी होगी। इस बीच कोई बाल-बच्चा बिछुड़ न जाय इसलिए उन सबको अपने साथ एक चुम्बकीय रस्सी से बाँध रखा है। इतना ही नहीं उनमें क्रियाशीलता बनाये रखने के लिए आवश्यक ऊर्जा भी भेजता रहता है।

पृथ्वी से सूर्य १०९ गुना है। दोनों के बीच की दूरी ९३०००००० मील है। सूर्य की परिक्रमा वह एक वर्ष में पूरी करती है। उसमें उसकी गति प्रति घण्टा १००१९१ मील होती है। समूचे सौर मण्डल का व्यास १ शंख १८ अरब किलो मीटर है। इतने क्षेत्र की साज सम्भाल रखे रहने की जिम्मेदारी अपने सूर्य की है। सौर परिवार न केवल सूर्य से बँधा है वरन् उनके सम्बन्ध परस्पर भी इतने घनिष्ठ हैं कि बिना किसी टकराव के वे परस्पर एक दूसरे की अनेकों प्रकार से सहायता करते रहते हैं।

समूचा ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है। इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि आसमान में जो तारे दीख पड़ते हैं वे हम से लाखों प्रकाश वर्ष दूर हैं। प्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष एक पैमाना है जिसे प्रकाश की चाल एक सैकिण्ड में एक लाख छियासी हजार मील के हिसाब से माना जाता है। इस हिसाब से एक दिन, एक महीना या एक वर्ष कितनी दूरी का बोध है। इसका हिसाब लगाने में ढेरों कागज खप जायगा। फिर इतने प्रकाश वर्षों का तो कहना ही क्या जितनी कि दूरी उन सबके बीच में है।

ब्रह्माण्ड तेजी से फूल और फैल रहा है। उसके मध्यवर्ती करोड़ों नीहारिकाएँ और उन नीहारिकाओं में करोड़ों सौर मण्डलों का होना। इतने पर भी उन सबका एक दूसरे से दूर हटते आगे बढ़ते जाना यह असमंजस उत्पन्न करता है कि यह फुलाव और फैलाव आखिर कितना आगे तक बढ़ेगा और उसके लिए अन्तरिक्ष की विशालता कितनी होनी चाहिए। सन्तोष उसी सिद्धान्त से होता है कि ब्रह्माण्ड की बनावट गोलाई की है इसलिए फैलते चलते हुए नीहारिका मण्डल और सौर मण्डल भी परिभ्रमण की गति अपना लेंगे और एक सीमित अन्तरिक्ष में ही चक्कर काटते रहेंगे।

ब्रह्माण्ड में नीहारिकाओं में अभी अनगढ़ मसाला भरा पड़ा है। उनमें विस्फोट हो सकता है और नये सौर मण्डलों की सृष्टि हो सकती है वर्त्तमान ग्रह-नक्षत्रों में से कितनों की ही स्थिति पृथ्वी जैसी भी हो सकती है और उन में साधारण जीवधारियों से लेकर—मनुष्य से भी अधिक ज्ञान विज्ञान के धनी हो सकते हैं। यह प्रश्न भी विचाराधीन है कि ब्रह्माण्ड भर के बुद्धिमान मनुष्यों में परस्पर तालमेल बैठने से वर्त्तमान सृष्टि में से सजीव और निर्जीव पिण्डों की गतिविधियों में असाधारण परिवर्त्तन हो सकता है। स्थिति को देखते हुए उस पुरातन मान्यता को भी बल मिलता है जिसके अनुसार कि लोक लोकान्तरों में अन्य सशक्त देवताओं की उपस्थिति अन्य लोकों में मानी गई है और उनकी सहायता मनुष्यों को मिलते रहने की बात कही गई है। ग्रहों की नीहारिकाओं की उथल-पुथल से पृथ्वी वालों को क्या लाभ मिलता है और किन संकटों की आशंका रहती है। इस सन्दर्भ में ब्लैक होल, धूमकेतु आदि एक से एक बढ़कर आश्चर्यजनक रहस्य भौतिक विज्ञानियों की पकड़ में आते जा रहे हैं। और भविष्य में अन्तरिक्ष की अधिक शोध बन पड़ने पर मनुष्य की ससीमता असीम हो जायगी।

यहाँ तो हम सबको इतना ही जानना पर्याप्त होगा कि लघुतम पिण्ड घटकों और विशालतम ब्रह्माण्ड सदस्यों की संरचना करने वाली उस सृष्टा को मान्यता मिलनी चाहिए जो मनुष्य को मर्यादाओं में रखना चाहता है और कर्मों का प्रतिफल देने में किसी प्रकार का पक्षपात किसी के साथ नहीं करता।

—★—

प्रख्यात विभूति हातिम परदेश जाने लगे तो अपनी पत्नी से पूछ बैठे—"तुम्हारे लिए खाने-पीने का कितना सामान रख जाऊँ ?"

"जितनी मेरी आयु हो"—कहकर स्त्री हँस पड़ी।

"तुम्हारी आयु जानना मेरे बूते की बात नहीं।"

"तब तो मेरी रोटी का इन्तजाम भी आपके बूते से बाहर है। यह काम जिसका है उसी को करने दीजिये।" पत्नी की आस्था पर मुग्ध होकर हातिम परदेश चले गये। तब एक पड़ौसन ने पूछा—तो उसे भी हातिम की पत्नी ने जवाब दिया—"बहिन हम सद्गृहस्थ हैं। इसमें रहते हुए साधना का लाभ लेना है तो हर समय उच्च आदर्शों को ध्यान में रखकर जीवन चलाना होता है। मेरे पतिदेव ईश्वर आस्था और पुरुषार्थ के बल पर अनजान स्थानों पर लोकहित के लिए चले जाते हैं और सफल होते हैं। हम अपनी ईश्वर निष्ठा और पुरुषार्थ की परीक्षा और पुष्टि का प्रयास ऐसें ही अवसरों पर तो कर सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं और काया के सरंजाम को स्वयं ही खा-पीकर बह बराबर कर देते हैं। जब मृत शरीर में अनेक प्राणियों का जन्म हो सकता है तो उसे जड़ पदार्थ कैसे कहा जाय ? और यदि शरीर के रासायनिक पदार्थों को जीवन स्रोत कहा जाय तो मृत शरीर फिर पूर्ववत् काम करने योग्य क्यों नहीं रहता ?जीवन की पहली चेतना की विलक्षणता की अभी तक कोई व्याख्या नहीं की जा सकी तो उसकी सत्ता का स्रोत और भविष्य का विवेचन कर सकना तो और भी कठिन है। यन्त्र उपकरणों, आविष्कारों के जो छोटे-मोटे खिलौने बन पड़े हैं उन पर विज्ञान जगत को अहंकार करना ऐसा ही है जैसा गीली बालू का महल बनाने वाले का अपने को बहुज्ञ इन्जीनियर मानना।

प्रकृति जड़ है और यह सारा उसी ने अनायास ही बनाकर खड़ा कर दिया है। यदि ऐसा है तो उसके भीतर परस्पर पूरक और सहयोग सन्तुलन बनाये रहनेवाली क्षमता किस प्रकार उत्पन्न हो गई। अनगढ़ और निर्जीव वस्तुएँ घर में भी आये दिन जरा से आघात से टूटती-फूटती रहती हैं। फिर इतने छोटे और इतने बड़े घटकों में निरन्तर टकराव होना चाहिए था वह क्यों नहीं होता ? शरीर के जीवकोश और ब्रह्माण्ड के ग्रह नक्षत्र आपस में टकराते क्यों नहीं ? अपनी-अपनी निर्धारित कक्षा पर नियत चाल से क्यों कर चलते रहते हैं। यदि प्रकृति निर्जीव है तो उसकी कृतियाँ भी 'घुणाक्षर न्यान' के अनुसार जैसी-तैसी बनानी चाहिए और उनके बीच कोई पारस्परिक तालमेल नहीं होना चाहिए जबकि 'इकालॉजी के सिद्धान्त को सर्वत्र लागू हुआ देखते हैं। ऐसी दशा में यह कहना कि सृष्टि क्रम प्रकृति द्वारा स्वयमेव संचालित हो रहा है, इसमें किसी चेतन सत्ता का दखल होने की आवश्यकता नहीं पड़ी। यह कथन सर्वथा उपहासास्पद ही कहा जा सकता है।

शरीर के जीवकोश जल्दी-जल्दी मरते और नई वंश वृद्धि करते हुए रिक्तता की पूर्ति करते रहते हैं। एक का दूसरे घटक के साथ दुरदर्शिता पूर्ण सहयोग है तभी जीवन क्रम चल पाता है।

ब्रह्माण्ड की गतिविधियों पर तनिक-सी दृष्टि डालने पर प्रतीत होता है कि यह सब कितना जटिल और कितना अद्भुत है। अपने सौर मण्डल को ही लें। उसके ग्रह और उपग्रह कितनी चमत्कारी छटा दिखाते हैं कि उसकी विलक्षणता किसी जादूगर के तमाशे जैसी हैरत में डालने वाली प्रतीत होती है।

सूर्य पृथ्वी से कितनी दूर है पर उसकी किरणें ही यहाँ आकर जीवन और हरितिमा की परिस्थितियाँ प्राप्त करती हैं। ब्रह्माण्डीय किरणों की बौछार से पृथ्वी अपना सन्तुलन न गँवा बैठे इसके लिए उसके ऊपर एक से एक अद्भुत कवच चढ़े हुए हैं। उत्तर ध्रुव अन्तर्ग्रही अनुदानों में से जितने उपयोगी हैं उतने अपने पेट में ले जाता है और उपयोग करने के बाद जो कचरा बचता है उसे दक्षिण ध्रुव के द्वारा निखिल अन्तरिक्ष में धकेल देता है। यदि यह व्यवस्था न होती तो पृथ्वी भी अन्य निर्जीव पिण्डों की तरह ही एक होती और यहाँ जो अनुपम सौन्दर्य एवं वैभव बिखरा पड़ा है उसका कहीं अता-पता भी न होता।

सूर्य अपने साथ नौ ग्रह और ४३ चन्द्रमाओं का परिवार साथ लेकर एक महासूर्य की परिक्रमा के लिए निकला है। यह यात्रा लाखों वर्षों में पूरी होगी। इस बीच कोई बाल-बच्चा बिछुड़ न जाय इसलिए उन सबको अपने साथ एक चुम्बकीय रस्सी से बाँध रखा है। इतना ही नहीं उनमें क्रियाशीलता बनाये रखने के लिए आवश्यक ऊर्जा भी भेजता रहता है।

पृथ्वी से सूर्य १०९ गुना है। दोनों के बीच की दूरी ९३०००००० मील है। सूर्य की परिक्रमा वह एक वर्ष में पूरी करती है। उसमें उसकी गति प्रति घण्टा १००१९१ मील होती है। समूचे सौर मण्डल का व्यास १ शंख १८ अरब किलो मीटर है। इतने क्षेत्र की साज सम्भाल रखे रहने की जिम्मेदारी अपने सूर्य की है। सौर परिवार न केवल सूर्य से बँधा है वरन् उनके सम्बन्ध परस्पर भी इतने घनिष्ठ हैं कि बिना किसी टकराव के वे परस्पर एक दूसरे की अनेकों प्रकार से सहायता करते रहते हैं।

समूचा ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है। इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि आसमान में जो तारे दीख पड़ते हैं वे हम से लाखों प्रकाश वर्ष दूर हैं। प्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष एक पैमाना है जिसे प्रकाश की चाल एक सैकिण्ड में एक लाख छियासी हजार मील के हिसाब से माना जाता है। इस हिसाब से एक दिन, एक महीना या एक वर्ष कितनी दूरी का बोध है। इसका हिसाब लगाने में ढेरों कागज खप जायगा। फिर इतने प्रकाश वर्षों का तो कहना ही क्या जितनी कि दूरी उन सबके बीच में है।

ब्रह्माण्ड तेजी से फूल और फैल रहा है। उसके मध्यवर्ती करोड़ों नीहारिकाएँ और उन नीहारिकाओं में करोड़ों सौर मण्डलों का होना। इतने पर भी उन सबका एक दूसरे से दूर हटते आगे बढ़ते जाना यह असमंजस उत्पन्न करता है कि यह फुलाव और फैलाव आखिर कितना आगे तक बढ़ेगा और उसके लिए अन्तरिक्ष की विशालता कितनी होनी चाहिए। सन्तोष उसी सिद्धान्त से होता है कि ब्रह्माण्ड की बनावट गोलाई की है इसलिए फैलते चलते हुए नीहारिका मण्डल और सौर मण्डल भी परिभ्रमण की गति अपना लेंगे और एक सीमित अन्तरिक्ष में ही चक्कर काटते रहेंगे।

ब्रह्माण्ड में नीहारिकाओं में अभी अनगढ़ मसाला भरा पड़ा है। उनमें विस्फोट हो सकता है और नये सौर मण्डलों की सृष्टि हो सकती है वर्त्तमान ग्रह-नक्षत्रों में से कितनों की ही स्थिति पृथ्वी जैसी भी हो सकती है और उन में साधारण जीवधारियों से लेकर—मनुष्य से भी अधिक ज्ञान विज्ञान के धनी हो सकते हैं। यह प्रश्न भी विचाराधीन है कि ब्रह्माण्ड भर के बुद्धिमान मनुष्यों में परस्पर तालमेल बैठने से वर्त्तमान सृष्टि में से सजीव और निर्जीव पिण्डों की गतिविधियों में असाधारण परिवर्त्तन हो सकता है। स्थिति को देखते हुए उस पुरातन मान्यता को भी बल मिलता है जिसके अनुसार कि लोक लोकान्तरों में अन्य सशक्त देवताओं की उपस्थिति अन्य लोकों में मानी गई है और उनकी सहायता मनुष्यों को मिलते रहने की बात कही गई है। ग्रहों की नीहारिकाओं की उथल-पुथल से पृथ्वी वालों को क्या लाभ मिलता है और किन संकटों की आशंका रहती है। इस सन्दर्भ में ब्लैक होल, धूमकेतु आदि एक से एक बढ़कर आश्चर्यजनक रहस्य भौतिक विज्ञानियों की पकड़ में आते जा रहे हैं। और भविष्य में अन्तरिक्ष की अधिक शोध बन पड़ने पर मनुष्य की ससीमता असीम हो जायगी।

यहाँ तो हम सबको इतना ही जानना पर्याप्त होगा कि लघुतम पिण्ड घटकों और विशालतम ब्रह्माण्ड सदस्यों की संरचना करने वाली उस सृष्टा को मान्यता मिलनी चाहिए जो मनुष्य को मर्यादाओं में रखना चाहता है और कर्मों का प्रतिफल देने में किसी प्रकार का पक्षपात किसी के साथ नहीं करता।

—★—

प्रख्यात विभूति हातिम परदेश जाने लगे तो अपनी पत्नी से पूछ बैठे—"तुम्हारे लिए खाने-पीने का कितना सामान रख जाऊँ?"

"जितनी मेरी आयु हो"—कहकर स्त्री हँस पड़ी।

"तुम्हारी आयु जानना मेरे बूते की बात नहीं।"

"तब तो मेरी रोटी का इन्तजाम भी आपके बूते से बाहर है। यह काम जिसका है उसी को करने दीजिये।" पत्नी की आस्था पर मुग्ध होकर हातिम परदेश चले गये। तब एक पड़ौसन ने पूछा—तो उसे भी हातिम की पत्नी ने जवाब दिया—"बहिन हम सद्गृहस्थ हैं। इसमें रहते हुए साधना का लाभ लेना है तो हर समय उच्च आदर्शों को ध्यान में रखकर जीवन चलाना होता है। मेरे पतिदेव ईश्वर आस्था और पुरुषार्थ के बल पर अनजान स्थानों पर लोकहित के लिए चले जाते हैं और सफल होते हैं। हम अपनी ईश्वर निष्ठा और पुरुषार्थ की परीक्षा और पुष्टि का प्रयास ऐसे ही अवसरों पर तो कर सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवी तेजोवलय

मोटे तौर पर चेहरे को देखकर कितने ही व्यक्ति बहुत कुछ जानने और समझने में सफल हो जाते हैं। आकृति देखकर प्रकृति का अनुमान लगाने वाले सूक्ष्मदर्शी नाक, कान, आँख, मुँह आदि की बनावट को नहीं वरन् चेहरे के चारों ओर उमड़ते-घुमड़ते तेजोवलय को ही परखते हैं और उसी के आधार पर व्यक्ति के आन्तरिक व्यक्तित्व का प्रभाव एवं परिचय प्राप्त करते हैं।

तेजोवलय का एक केन्द्र चेहरे की ही तरह जननेन्द्रिय क्षेत्र में छाया रहता है, इस क्षेत्र में प्रजनन सम्बन्धी केन्द्र होने से वलय का प्रभाव यौन आकर्षण उत्पन्न करने वाला होता है। किशोर वय के भिन्न लिंगों के बीच यह वलय ही अधिक उभार उत्पन्न करता है। समलिंगों की समीपता में वह तेजस् उत्तेजित नहीं होता। कटि प्रदेश को सदा ढके रहने के पीछे यही आधार होता है कि समलिंगों का तेजोवलय भिन्न लिंगों के बीच अनावश्यक उभार न पैदा करे।

सामान्यतया रंग रूप का आकर्षण हर किसी को मुग्ध करता है, पर यह तेजोवलय तद्नुरूप न हुआ तो कुछ ही समय में वह मूल्यांकन बदल जाता है। रूपवान काया में भी विषधर सर्प जैसी विद्रूपता प्रकट हो सकती हैं एवं कुरूप व्यक्ति अष्टावक्र, सुकरात, गाँधी की तरह सिर आँखों पर बिठाया जाने लगता है। साज-सज्जा द्वारा तो शरीर की कुरूपता एक सीमा तक छिपायी भी जा सकती है, पर तेजोवलय के सूक्ष्म शरीर पर किसी भी प्रकार पर्दा नहीं डाला जा सकता है। सुविकसित अन्तःकरण सम्पन्न व्यक्तियों को किसी की भीतरी स्थिति को पहचानने में देरी नहीं लगती है। यही कारण है कि महामानव किसी की बाह्य सुन्दरता अथवा कुरूपता को अधिक महत्व नहीं देते हैं। वे रंग रूप की अपेक्षा तेजोवलय में संव्याप्त सुन्दरता एवं कुरूपता को वास्तविक व्यक्तित्व मानते हैं। भले-बुरे व्यक्तित्वों के प्रति जनसामान्य की श्रद्धा एवं अश्रद्धा भी इसी अन्तःऊर्जा के आधार पर बनती है।

शरीर को खुला-नग्न छोड़ देने पर शरीर विद्युत की मात्रा स्फुल्लिगों के रूप में उड़ने लगती है। वस्त्र पहनने का कारण शरीर को सर्दी से बचाना या शोभा बढ़ाना भी हो सकता है, पर मूल कारण तेजोवलय पर आवरण आच्छादित किये रहना ही है। भीतर की ऊर्जा बाहर न निकलने पाये इसीलिए वस्त्रों का आवरण ढका जाता है। आध्यात्मिक साधनाओं में निरत रहने वाले कठोर तपतितिक्षा के अभ्यासी साधु संन्यासी तथा योगी भी नग्न शरीर में भस्म या मिट्टी का आवरण चढ़ाये रहते हैं। पूर्ण नग्न शरीर रखना असभ्य आचरण माना जाता है। इस मान्यता के पीछे प्रमुख कारण सामाजिक मर्यादाएँ हैं, पर आत्मिक कारण यह है कि शरीर को नग्न रखने वाला अपनी शक्ति तरंगें बड़ी मात्रा में बाहर बिखेरता रहेगा, साथ ही दूसरों के भले-बुरे प्रबल भावों से अपने को बचा भी न सकेगा। धूप का तीव्र प्रभाव नग्न शरीर पर पड़ता है। इसी प्रकार दूसरों का चुम्बकत्व भी निर्वस्त्र लोगों को अधिक प्रभावित कर सकता है।

साधु, सन्तों, महापुरुषों की माला, जनेऊ, खड़ाऊँ, वस्त्र अथवा अन्य वस्तुएँ उपहार आर्शीर्वाद स्वरूप पाकर लोग कृतार्थ हो जाते और उनके प्रभाव से देर तक लाभान्वित होते रहते हैं। दीर्घकाल तक उनमें वह दिव्य प्रभाव बना रहता है। भगवान बुद्ध का एक दाँत लंका में आज भी सुरक्षित रखा है। मुहम्मद साहब का एक शिर का बाल काश्मीर की एक मस्जिद में रखा हुआ है। इंग्लैण्ड के एक गिरजाघर में ईसामसीह का रखा कफन कितने ही श्रद्धालुओं की प्रेरणा का केन्द्र बना हुआ है।

तेजोवलय मात्र प्रकाश ही नहीं उसमें चुम्बकत्व भी मिश्रित है। जो दुर्बलों को प्रभावित करता और सशक्तों से प्रभावित होता है। इसे अध्यात्म साधना के विभिन्न स्वरूपों को अपना कर निश्चित ही बढ़ाया जा सकता है। सुपात्र योगी यही कर अपनी सामर्थ्य बढ़ाते हैं। **

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना बनाम मनोकामना

साधना का उद्देश्य किसी के सामने गिड़गिड़ाना, झोली पसारना या नाक रगड़ना नहीं है। दीनता न आत्मा को शोभनीय है न परमात्मा को प्रिय ! परमात्मा न खुशामद का भूखा है और न है उसे प्रशंसा की आवश्यकता। उसकी महानता अपने आप में अपनी प्रशंसा है। मनुष्यों की वाणी न उसमें कुछ वृद्धि कर सकती है और न कमी। अपने ही बालक के मुख से प्रशंसा कराना किसी मनुष्य को भी अच्छा नहीं लगता फिर परमात्मा जैसे महान के लिए तो उसमें क्या आकर्षण हो सकता है। प्रशंसा करके किसी से कुछ प्राप्त करने का प्रयत्न ओछे दर्जे का कृत्य माना जाता है। उस चंगुल में ओछे लोग ही फँसते हैं और उसे करने के लिए ओछापन ही तैयार होता है। खुशामद व चापलूसी का गोरख-धन्धा उन्हें पसन्द आता है, जो वस्तुतः प्रशंसा के पात्र नहीं। वे अपने चापलूसों के मुँह से अपनी बड़ाई सुनकर खुशी मना लेते हैं। असली न मिलने पर उस आवश्यकता को नकलियों से पूरा कर लेते हैं भक्त और भगवान के बीच यदि यही खुशामद चापलूसी का धन्धा चले तो फिर समझना चाहिए दोनों की गरिमा गिर गई।

माँगना बुरा व्यवसाय है। चोरी से भी बुरा। चोर दुस्साहस करता है और खतरा मोल लेता है तब कहीं कुछ पाता है। पर भिखारी उतना भी तो नहीं करता। वह बिना कुछ किये ही पाना चाहता है। कर्म विज्ञान को एक प्रकार से वह झुठलाना ही चाहता है। संसार के स्वाभिमानी अपंग और असमर्थ भी स्वाभिमानी होते हैं। कोढ़ी और अन्धे भी कुछ कर लेते हैं। समाज उन्हें कर्तृत्व के साधन तो देता है, पर मुफ्त में बिठा कर नहीं खिलाता। इसमें देने वाले की उदारता भले ही हो पर लेने वाले को ऋण के भार से दबना पड़ता है और दीन बनकर स्वयं स्वाभिमान का हनन करना पड़ता है। यह हानि उस लाभ से बुरी है जो किसी दान से कुछ प्राप्त करके उपलब्ध किया जाता है।

उपासना से पाप नष्ट होने का वास्तविक अर्थ यह है कि ऐसा व्यक्ति जीवन साधना के प्रथम चरण का परिपालन करते हुए दुर्भावनाओं दुष्प्रवृत्तियों के दुष्परिणाम समझेगा और उनसे सतर्कतापूर्वक विरत हो जायगा, पाप नष्ट होने का अर्थ है पाप कर्म करने की प्रवृत्ति का नाश, पर उल्टा अर्थ कर दिया गया पाप कर्मों के प्रतिफल का नाश। कदाचित ऐसी उलटवाँसी सही होती तो फिर इस संसार में पाप को ही पुण्य और कर्त्तव्य माना जाने लगता। फिर कोई भी पाप से न डरता। राजदण्ड से बचने की हजार तरकीबें हैं। उन्हें अपना कर अनाचारी लोग सहज ही निर्द्वन्द निश्चिन्त रह सकते हैं दैव दण्ड ही एक मात्र बन्धन था सो इन धर्म ध्वजियों ने उड़ा दिया। अब असुरता को स्वछन्द रूप से फलने-फूलने और फैलाने का पूरा-पूरा अवसर मिल गया। पाप कर्मों के दण्ड से मुक्ति दिलाने का आश्वासन पूजा-पाठ की कीमत पर जिनने भी दिया है उनने मानवीय आदर्शों और अध्यात्म के मूलभूत आधारों के साथ व्यभिचार किया है।

लघुता को विशालता में—तुच्छता को महानता में समर्पित कर देने की उत्कण्ठा का नाम प्रार्थना है। नर को नारायण—पुरुष को पुरुषोत्तम बनाने का संकल्प प्रार्थना कहलाता है। आत्मा को आबद्ध करने वाली संकीर्णता जब विशाल व्यापक बनकर परमात्मा के रूप में प्रकट होती है तब समझना चाहिए प्रार्थना का प्रभाव दीख पड़ा, नर-पशु के स्तर से ऊँचा उठकर जब मनुष्य देवत्व की ओर अग्रसर होने लगे तो उसे प्रार्थना की गहराई का प्रतीक और चमत्कार माना जा सकता है। आत्म-समर्पण को प्रार्थना का आवश्यक अंग माना गया है।

एक शराबी ने नशे में धुत्त होकर किसी के हाथों अपना मकान सस्ते दाम में बेच डाला होश आया तो अदालत में अर्जी दी कि नशे में होश हवाश ठीक न होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण वह बिक्री की थी। अब होश में आने पर उस इकरार नामे से इनकार करता है। पूजा, प्रार्थना के समय लोग न जाने क्या-क्या स्तुति, प्रार्थना करते हैं। मैं तेरी शरण में आया हूँ, तेरा ही हूँ, तेरे चरणों में पड़ा हुआ हूँ, मेरा तो तू ही है। तेरे सिवा मेरा कौन है।" आदि आदि। वे इन शब्दों का अर्थ भी नहीं समझते और न फलितार्थ। जो शब्द कहे जा रहे हैं यदि वे समझ-बूझकर—होश-हवाश में कहे गये होते तो जरूर उस स्थिति के अनुरूप जीवन क्रम ढालने और विचारों तथा कार्यों में उनका समावेश करने का प्रयत्न किया गया होता। पूजा स्थल से निकलते ही—जब प्रार्थना कथन को कार्यान्वित होने की आवश्यकता अनुभव होती है तब सब कुछ बहुत कठिन प्रतीत होता है। होश में आये हुये शराबी की तरह तब उस कथनी को करनी में परिणति कर सकने की हिम्मत न होने से यही कहना पड़ता है उस इकरार नामे से इनकार करता हूँ जो पूजा के समय सब कुछ भगवान को समर्पण करने वाली शब्दावली के साथ कहा गया था।

प्रार्थना में यही कामना जुड़ी रहनी चाहिए कि परमात्मा हमें इस लायक बनाये कि उसके सच्चे भक्त अनुयायी एवम पुत्र कहला सकने का गौरव प्राप्त करें। परमेश्वर हमें यह शक्ति प्रदान करे जिसके आधार पर भय और प्रलोभन से मुक्त होकर—विवेकसम्मत कर्त्तव्य पथ पर साहसपूर्वक चल सकें और इस मार्ग में जो भी अवरोध आवें उनकी उपेक्षा करने में अटल रह सकें। कर्मों के फल अनिवार्य हैं। अपने प्रारब्ध भोग जब उपस्थित हों तो उन्हें धैर्य पूर्वक सह सकने और प्रगति के लिये परम पुरुषार्थ करते हुए कभी निराश न होने वाली मनःस्थिति बनाये रह सकें। भगवान हमारे मन को ऐसा निर्मल बनादें कि कुकर्म की ओर प्रवृत्ति ही उत्पन्न न हो और हो भी तो उसे चरितार्थ होने का अवसर न मिल पाये। मनुष्य जीवन की सफलता के लिये गतिशील रहने की पैरों में शक्ति बनी रहे ऐसी उच्चस्तरीय प्रार्थना को ही सच्ची प्रार्थना के रूप में पुकारा जा सकता है, जिसमें धन, सन्तान, स्वास्थ्य सफलता आदि की याचना की गई हो और जिसमें अपने पुरुषार्थ कर्त्तव्य के अभिवर्धन का स्मरण न हो ऐसी प्रार्थना को याचना मात्र कहा जायेगा। ऐसी याचनाओं का सफल होना प्रायः संदिग्ध ही रहता है।

भगवान से माँगने योग्य वस्तुयें श्रद्धा, हिम्मत, श्रम-निष्ठा, सच्चरित्रता, करुणा, ममता, पवित्रता और विवेकशीलता जैसी वे सद्भावना एवम् सत्प्रवृत्तियाँ हैं जो विपन्नता को सम्पन्नता में बदल देती हैं और अभाव रहते हुए जिनके कारण विपुल सम्पन्नता का सुख अनुभव होता रहता है। प्रगति और सफलता का सारा आधार सद्गुणों पर अवलम्बित है। उनके बिना अकस्मात किसी प्रकार कोई लाभ मिल भी जाय तो उसे सम्भालना और स्थिर रखना सम्भव न होगा। सदुपयोग केवल उस वस्तु का किया जा सकता है जो उचित मूल्य देकर उपार्जित की गई है। अनायास बिना परिश्रम के मिली हुई सम्पत्ति का अपव्यय ही होता है और उससे अनेक व्यसन और उद्वेग पैदा होते हैं जिनके कारण वह उपलब्धि सुखदायक न होकर अनेक विपत्तियाँ और विकृतियाँ उत्पन्न करने का कारण बन जाती हैं। भगवान जिस पर प्रसन्न होते हैं उसे सद्गुणों का उपहार देते हैं क्यों कि वे अपने आप में इतने महान हैं कि यदि साधन सम्पन्नता न भी हो तो भी केवल उन सद्गुणों की सम्पदा के आधार पर मनुष्य सुखी समुन्नत और सम्मानित जीवन जी सकता है। यही दिव्य सम्पदायें भगवान से माँगनी चाहिए। यही हैं वे विभूतियाँ जिन्हें वे अपने भक्तों को दिया करते हैं।

भौतिक सफलतायें हमें अपनी भुजाओं और कलाइयों से माँगनी चाहिए। अपनी अकल को तेज करना चाहिए और सूझ-बूझ से काम लेना चाहिए। अवरोध उत्पन्न करने वाली त्रुटियों को सुधारना चाहिए। सफलता का द्वार खुल जायगा।

भगवान स्वयं अपनी विधि-व्यवस्था में बँधे हुए हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने आपके साथ तक कोई रियायत नहीं की, अपने सगे सम्बन्धियों तक को छूट नहीं दी। कर्मफल की व्यवस्था को ही सर्वत्र प्रधान रखा। ऐसा न होता तो कोई पुरुषार्थ करने के लिए तैयार ही क्यों होता और कुकर्मों से बचने के लिए किसी को आवश्यकता ही क्या पड़ती? प्रार्थना मात्र से सारी सुविधायें मिल जातीं तो फिर कठोर, कर्मठता के लिए कटिबद्ध होने की इच्छा ही क्यों होती? ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहिरंग योग की सरल साधनाएँ

साधना का प्रथम चरण है शरीर का संशोधन। इसमें आहार और विहार में पिछले अभ्यासों को छोड़कर नवीन अवधारणाएं कार्यान्वित करनी होती हैं। आहार के सम्बन्ध में हमारे अभ्यास स्वाद प्रधान होते हैं और ठूँस-ठूँसकर खाने को भी। यह दोनों ही व्यवहार आहार को तामसिक बना देते हैं। स्वाद वही उपयुक्त हैं जो पदार्थ में प्रकृति समाविष्ट होते हैं। फलों के अपने-अपने शाक हैं। कच्चे खाये जा सकने योग्य शाकों के भी अपने। उन्हीं की भिन्नता में रस लेना चाहिए और प्रसन्न रहना चाहिए। अन्नों को—शाकों को उबाल लेने पर उनकी कठोरता या अस्वादिष्टता मिट जाती है। उबले शाक प्रायः एक जैसे स्वाद के होते हैं। उबले अन्नों में दाल, चावल, दलिया, खिचड़ी आदि का अपना स्वाद होता है। यह सभी सुपाच्य भी होते हैं। कठिनाई उत्पन्न होती है तलने भूनने में—चिकनाई का समावेश करने से यह शकर, एवं नमक मसालों की ऊपर से भरमार करने से। यह तामसिक स्वाद एक प्रकार से नशेबाजी की तरह आदत के अंग बन जाते हैं। इस लोलुपता में आहार की उचित मात्रा का ध्यान नहीं रहता और पेट की पाचन क्षमता से कहीं अधिक खा लिया जाता है। यह व्यतिक्रम आलस्य और प्रमाद पैदा करते हैं। मन में उत्तेजना और चंचलता भी। रोगों की जड़ यहीं से जमती है। यदि आधे पेट खाने—आधे में हवा पानी के लिए गुंजायश छोड़ने का नियम अपनाया जा सके तो समझना चाहिए कि सामान्य स्वास्थ्य में अभिवृद्धि होगी और रोगी शरीर में सुधार का सिलसिला तत्काल करना पड़ेगा। स्वल्पाहारी योगी होते हैं। इसके लिए सर्वप्रथम अस्वाद व्रत पालन करना पड़ता है। संयमों में सर्वप्रथम स्वाद जप है। इतना तात्पर्य है प्राकृतिक रूप में पदार्थों का जो स्वरूप है उसी में सन्तुष्ट रहना। ऊपर से चिकनाई या मसालों का समावेश नहीं होने देना। जो अन्न या आलू जैसे कठोर प्रकृति के हैं उन्हें उबाल लेना। स्वाद की उपेक्षा करते ही आहार की अनावश्यक मात्रा घट जाती है और उतना ही उदरस्थ करने का अभ्यास बन पड़ता है जो पाचन की मर्यादा के अन्तर्गत है।

बिहार में शयन—जागरण एवं विश्राम के घण्टों का निर्धारण है। आत्मानुशासन का यह दूसरा चरण है। समय का एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाया जाय। श्रम, विश्राम, टहलने, स्वाध्याय, सत्संग जैसे अनावश्यक कार्यों में अपने समय को इस प्रकार बाँध लेना चाहिए कि उसमें आलस्य प्रमाद के प्रवेश की कहीं कोई गुंजायश न रह पाये। मनमर्जी की दिनचर्या चलने देने में प्रकारान्तर से आवारागर्दी अपनाना है। ऐसी उच्छृंखलता लगती तो अच्छी है पर समय सम्पदा का ऐसा अनावश्यक अतिक्रमण होता है जिसमें कोई महत्वपूर्ण कार्य हाथ में लेकर पूरा करने की बात बन ही नहीं पड़ती। भौतिक या आत्मिक स्तर के जो भी कार्य किये जाते हैं सभी आधे-अधूरे—लँगड़े—काने-कुबड़े रह जाते हैं। उनके कारण असन्तोष उपजता है, अपयश मिलता है और कौशल का स्तर गिरता चला जाता है।

बिहार में स्वच्छता और सादगी का भी समावेश है। वस्त्र, उपकरण जिन्हें भी काम में लाया जाय वे भड़कीले, मँहगे न हों। हर वस्तु को स्वच्छ और सुव्यवस्थित रखा जाय। सादगी सज्जनता और सादगी की साक्षी देती है। स्वच्छ, स्वच्छता, सुरुचि, सुसंस्कारिता और व्यवस्थित बुद्धि की यह मानसिक जागरूकता का चिन्ह है कि वस्तुओं को साफ सुथरी रखा जाय और उन्हें सम्भाल सुधार कर इस प्रकार रखा जाय कि वे सुन्दर प्रतीत हों। व्यवस्था पूर्वक कूड़ा भी कूड़ेदान में ढक कर रखा जाय तो कुरूप नहीं लगता है और बहुमूल्य पात्रों, उपकरणों, वस्त्रों, पुस्तकों को भी बेतरतीब बखेर दिया जाय तो वे कूड़ा प्रतीत होती हैं। हर आँगन, दीवार, फर्नीचर यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भाला जाता रहे तो वह सब भी सुन्दर चेहरे की तरह आकर्षक लगते हैं। साधना का यह तीसरा प्रसंग है जिसमें मनोयोग का भी समावेश है। यों इसकी गणना विहार में भी हो सकती है।

सुव्यवस्था समय सम्पदा का सुनियोजन करने के साथ मितव्ययता पर भी आधारित है। हम उतना खर्च करें जितना जीवन धारण करने के लिए नितान्त आवश्यक है। कोई व्यक्ति अधिक कमाता है तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसे अनावश्यक खर्च करने की छूट मिल गई। समूचा मानव समुदाय एक परिवार है। इसमें समर्थ और असमर्थ सभी मिल-जुलकर रहते हैं। कमाने वाले ही सब कुछ खर्च नहीं कर डालते वरन् मिल-जुलकर खाते और एक जैसी सुविधा का लाभ उठाते हैं। कमाऊ अधिक खरचे और जो असमर्थ हैं वे मुँह-जोहें, तरसें तो यह अनीति किसी सहृदय के लिए अपनाने योग्य नहीं है। हमें औसत भारतीय स्तर का गुजारा करना चाहिए जो अदक्षता अथवा परिस्थिति के कारण गई-गुजरी स्थिति में दिन गुजारते हैं। यदि उन्हें सहारा मिल सके तो निश्चय ही ऊँचे उठने और आगे बढ़ने की स्थिति अपनाने के लिए गतिशील हो सकते हैं। नैतिक जीवन—आध्यात्मिक जीवन की यह भी एक अनिवार्य शर्त्त है। शान-शौकत में अनावश्यक अपव्यय करने पर हम अध्यात्मवादी जीवन नहीं जी सकते। इस अनाचार से प्रत्यक्ष ही अहंकार बढ़ता है और अनेकों का ईर्ष्याभाजन बनना पड़ता है। वैभव एवं प्रदर्शन की दृष्टि से नहीं हम मात्र सज्जनता और सदाशयता को अपनाये रहकर ही श्रद्धा एवं प्रशंसा के पात्र बन सकते हैं।

व्यावहारिक जीवन में अध्यात्मवादी बनने की बौद्धिक प्रक्रिया यह है कि हम दूरदर्शी विवेकशील बनें। अपने चारों ओर भले-बुरे का मिश्रित पुद्गल भरा पड़ा है। इसमें से कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे यथावत् अपनाया जा सके। यहाँ कीचड़ में कमल खिलते हैं और सुरम्य पौदे पर विष वृक्ष फलते हैं। सुन्दरता के पीछे कुरूपता झाँकती है और कुरूपता के अन्तराल में सुन्दरता भरी होती है। अनाज को छाँटा फटका, छाना न जायगा तो साथ में मिले हुए कंकड़ दाँत तोड़ेंगे और पेट में पहुँचकर शूल उत्पन्न करेंगे। न सब पुरातन ही अच्छा या बुरा है और न नवीन है। पुराने खण्डहरों और कपड़ों को छोड़ना पड़ता है। पुराना घी बदबू देने लगता है। इसी प्रकार नये प्रचलनों में फैशन परस्ती, नशेबाजी, उच्छृंखलता जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ प्रगतिशीलता कहलाने लगी हैं। अच्छे से अच्छे और बुरे से बुरे काम करने वाले अपनी ही इर्द-गिर्द बड़ी संख्या में विद्यमान रहते हैं फिर इनमें से किनका अन्धानुकरण किया जाय। सम्प्रदायों और धर्मोपदेशकों के कथन में इतना मतभेद होता है कि इनमें से किसी एक को पूर्ण सही ठहराया जाना कठिन है। ऐसी दशा में एक ही मार्ग सुरक्षित रहता है कि सोना खरीदते समय उसे कसौटी पर कसा और आग में तपाया जाय। इसके उपरान्त ही जो खरा हो उसे अपनाया और जो खोटा है उसे त्याग दिया जाय। विवेक की कसौटी पर कसने के उपरान्त किसी कथन या प्रचलन को अपनाया जाय तो यह सत्य के निकट पहुँचने की सरलतम और प्रामाणिक रीति होगी।

बहुत कार्य ऐसे होते हैं जो तत्काल लाभदायक प्रतीत होते हैं और अन्ततः दुःखदायी परिणाम उत्पन्न होते हैं। सस्ते अपराधों की तरह। बहुत से कार्य ऐसे होते हैं जो कष्ट पूर्वक हस्तगत होते हैं पर पीछे चिरकाल तक सुख देते हैं तप साधन और गोताखोर के मोती चयन की तरह। इनमें से किसे अपनाया जाय इसका सही निर्णय वह कर सकता है जिसे दूरगामी परिणाम का अनुमान लगा सकने की क्षमता है। अन्यथा कुछ के बदले ऐसा कुछ हाथ लगता है जिससे चिरकाल तक पश्चात्ताप करना पड़े।

अनगढ़ मन और सुसंस्कृत विवेक में सदा महाभारत मचा रहता है। लोभ मोह और अहंकार के दैत्य पालन अपनी ओर घसीटते हैं और मानवोचित गौरव गरिमा का आग्रह संयम अपनाने और शालीनता की राह पर चलने का होता है। यह अन्तर्द्वन्द्व छोटे बड़े रूप में सभी के भीतर चलता है। कुसंस्कारी मन और अनगढ़ परिवार धर्म की मूर्खता और अधर्म की बुद्धिमत्ता बताता है। तथाकथित स्वजन सम्बन्धी भी बहुमत और प्रचलन की दुहाई देकर कौरव सेना में भर्ती होने के लिए कहते हैं इस गीतोक्त महाभारत में अर्जुन की तरह गाण्डीव उठाना और भगवान के हाथों रथ की बागडोर सौंप देना विजय-श्री वरण करने का उपयुक्त मार्ग है। ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वाग्रहों से उबरिये

सीमाबद्ध रहने पर मनुष्य की स्थिति कुँए के उस मेंढ़क की तरह हो जाती है जो समस्त संसार को उस परिधि में सिमटा देखता है। विस्तार, गहराई एवं जल सम्पदा की दृष्टि से दूसरा कोई क्षेत्र बड़ा भी हो सकता है, इसकी वह कल्पना भी नहीं कर पाता। जो सामने है मात्र वह ही सत्य है, यथार्थ है और सब कुछ है, इस मान्यता के पूर्वाग्रह से वह इस कदर जकड़ा रहता है कि विराट् समुद्र एवं उसकी अथाह जलराशि की जब कभी भी उसके सामने चर्चा होती है तो उसे वह मिथ्या समझता तथा अपनी जानकारी एवं अनुभव को सर्वोपरि मानता है। ज्ञान के उस सीमित दायरे से निकल न पाने तथा पूर्वाग्रह के जाल में बुरी तरह जकड़े रहने की विडम्बना से उबरने का अवसर जीवन पर्यन्त नहीं मिल पाता। कुँए में पैदा होता, बढ़ता और अन्ततः वह मेंढ़क उसी में मरता है। इसके विपरीत नदियों के प्रवाह के साथ बहने वाली, तालाबों, नालों से निकलकर नदी के मार्ग से समुद्र की अथाह जलराशि में जा पहुँचने वाली मछलियाँ वास्तविकता से परिचित होती हैं उन्हें कुँए, तालाबों का सीमा बन्धन का ज्ञान होता है और समुद्र की विशालता का भी।

सीमा बन्धन से निकलकर विराट् की ओर छलाँग लगा सके तो मनुष्य को भी ज्ञात होगा कि संसार एवं सृष्टि के विषय में बनायी गयी उसकी मान्यताएँ कितनी एकांगी कितनी अपूर्ण तथा कितनी भ्रामक हैं। सम्भव है जिस क्षेत्र में मनुष्य रहता है, उस सीमित क्षेत्र के लिए वे उपयोगी हों पर आवश्यक नहीं कि बनाये गये पैमाने सर्वत्र ही प्रामाणिक सही और खरे उतरें। उदाहरणार्थ पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण शक्ति के सापेक्ष वस्तुओं के द्रव्यमान, लम्बाई चौड़ाई अथवा ऊँचाई मापे जाते हैं पर ये माप स्थिर नहीं हैं, गुरुत्वाकर्षण शक्ति के परिवर्त्तन के साथ बदलते रहते हैं।

आइन्स्टीन के अनुसार अपने द्रव्यमान के अनुपात में प्रत्येक वस्तु किसी दूसरे वस्तु को अपनी ओर आकर्षित करती है। पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति अधिक होने का कारण है, उसका बड़ा क्षेत्र फल और भारी द्रव्यमान, इस सिद्धान्त के आधार पर वैज्ञानिक न्यूटन द्वारा आविष्कृत गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त में परिवर्त्तन आया। वस्तुओं के पारस्परिक आकर्षण शक्ति पर प्रकाश डालते हुए रूस के प्रख्यात अन्तरिक्ष विज्ञानी कान्स्टेन्टीन एड्यूवर्डेविचत्सियोल कोवोस्की ने २३ जुलाई १९३५ को रूसी पत्र प्रावदा में लिखा कि "मैं किसी विषय पर इतना तल्लीन नहीं होता जितना कि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति पर विजय प्राप्त कर अन्तरिक्ष यात्रा की समस्या को सम्भव बना देने में आत्म-विभोर हो जाता हूँ।"

इस प्रकार विभिन्न ग्रहों, तारों तथा नक्षत्रों पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति उनके द्रव्यमान और घनत्व के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। इस आधार पर किसी भी वस्तु का द्रव्यमान एक निश्चित स्थान पर स्थायी तो हो सकता है पर दूसरे ग्रह पर उसका भार उतना नहीं होगा। किसी वस्तु का भार कितना होगा यह उस बात पर निर्भर करता है कि जिस धरातल पर वह है, उसका द्रव्यमान और घनत्व कितना है। अस्तु किसी भी वस्तु का भार स्थिर नहीं माना जा सकता। गुरुत्वाकर्षण शक्ति पृथ्वी के केन्द्र में शून्य होती है। यदि किसी प्रकार वहाँ पहुँचना सम्भव हो तथा वहाँ भार लिया जा सके तो हर वस्तु का भार शून्य होगा। ऊँचाई की ओर बढ़ने पर भी भार में कमी आती है। समुद्र तल के निकट किसी भी चीज का भार सर्वाधिक होगा क्योंकि वहाँ गुरुत्वाकर्षण शक्ति अधिक है जबकि पर्वतों पर अपेक्षाकृत कम होगा। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण शक्ति को पार कर जाने पर भारहीनता की समस्या आती है। अन्तरिक्ष यात्रियों को इसीलिए उस तरह के वातावरण में रहने का प्रशिक्षण दिया जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अन्यथा अनभ्यस्त होने पर कितने ही प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

गुरुत्वाकर्षण शक्ति के साथ जुड़े रोचक तथ्यों में से एक यह भी है कि जो वस्तु धरती पर अत्यन्त भारी लगती है तथा उसे उठाना सम्भव नहीं हो पाता, उसे कोई भी व्यक्ति दूसरे ग्रह पर जहाँ कि आकर्षण न्यून है, आसानी से उठा सकता है। उदाहरणार्थ एक पहलवान यदि ८० कि० ग्रा० वजनी किसी वस्तु को लेकर पृथ्वी पर दौड़ सकता है तो वही चन्द्रमा पर गाय को उठाकर ऊँची चारदीवारी के पार छलांग लगा सकता है। पर सूर्य पर तो किसी के लिए खड़ा होना भी सम्भव नहीं है क्योंकि वहाँ पृथ्वी से साढे सत्ताइस गुनी अधिक गुरुत्वाकर्षण शक्ति है। मंगल और बुध ग्रहों पर भी गुरुत्वाकर्षण शक्ति कम है। उन पर २५० किलोग्राम तक की वजनी वस्तुओं को आसानी से उठाकर छलांग लगाया जा सकता है। पर बृहस्पति की गुरुत्वाकर्षण शक्ति भी अधिक है। अधिक खिंचाव होने के कारण वहाँ चलने में भी कठिनाई हो सकती है। मंगल और बृहस्पति के बीच अनेकों छोटे-छोटे क्षुद्र ग्रह हैं जिनकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति अत्यन्त कम है, वहाँ भारी भरकम छोटे-मोटे मकानों को भी उठाकर आसानी से चहल कदमी की जा सकती है।

वैज्ञानिक त्सिओलकोव्स्की के अनुसार विभिन्न ग्रहों पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति की भिन्नता जीवों, वनस्पतियों पहाड़ों आदि की ऊँचाई पर भी प्रभाव डालती है। चन्द्रमा पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति पृथ्वी का १।६ भाग है, अतएव वहाँ पहाड़ों की तुलनात्मक ऊँचाई छै गुना अधिक होगी तथा भार में भी अन्तर आयेगा। जो वस्तु पृथ्वी पर १२ कि० ग्रा० है, वह चन्द्रमा पर २ कि० ग्रा० के लगभग होगी। पृथ्वी पर ४० फीट किसी कल्पित मनुष्य को चलने में भारी कठिनाई अधिक गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण हो सकती है पर चन्द्रमा पर उसे किसी प्रकार की परेशानी नहीं होगी।

गुरुत्वाकर्षण का पृथ्वी की परिस्थितियों तथा जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पृथ्वी पर यदि गुरुत्वाकर्षण न हो तो वायुमण्डल भी तत्काल समाप्त हो जायेगा। नदियाँ, समुद्र स्थिर होकर या तो जम जायेंगे अथवा गैस के रूप में बदल जायेंगे। जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों का विनाश हो जायेगा। गुरुत्वाकर्षण के अभाव में मनुष्य को उसी प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा जिस प्रकार कि अन्तरिक्ष यात्रियों को करना पड़ता है। गुरुत्वाकर्षण रहित वातावरण में कोई वस्तु तब तक गतिशील नहीं हो सकती है जब तक कि किसी वाह्य शक्ति का दबाव न पड़े। जबकि किसी वस्तु के गतिशील हो जाने पर उसे रोकना कठिन होगा। गुरुत्वाकर्षण के न रहने पर मनुष्य को ऐसा प्रतीत होगा कि जैसे हृदय की गति मन्द होती जा रही है तथा स्पन्दन क्षीण होता जा रहा हो। ऐसा आभास होगा जैसे बहुत ऊँचाई से गिर रहा हो। वह अधिक समय अपनी शारीरिक हलचल बनाये नहीं रख सकता।

चन्द्रमा से अन्यान्य ग्रहों का रूप भी सर्वथा भिन्न दिखायी देता है। वहाँ से सूर्य अत्यन्त चमकीला तथा रंग में गहरा नीला दृष्टिगोचर होगा। आकाश तारकोल की तरह काला दिखायी देता है तथा पृथ्वी झिलमिलाती नजर आती है जबकि तारे आकाश में मोती जैसे हलचल रहित चमकते प्रतीत होते हैं। चन्द्रमा पर सूर्योदय तथा सूर्यास्त पृथ्वी की तरह क्रमिक तथा लालिमायुक्त नहीं दिखायी देगा बल्कि उदय और अस्त अकस्मात होता दिखायी पड़ता है। वायुमण्डल के अभाव में वहाँ तेज आवाज भी सुनायी नहीं देती। यदि चन्द्रमा पर फुटबाल को जोर से मारा जाय तो वह एक मील ऊपर तक उछल सकती है। अरबी घोड़ा हवा से बातें करेगा। भारी से भारी वस्तुएं भी हल्की-फुल्की गेंद जैसी वजन की मालूम होंगी। अस्तु भार की मान्यता गुरुत्वाकर्षण के सापेक्ष सतत् बदलती रहती हैं। इस तरह के अगणित अन्यान्य तथ्यों से जो अपरिचित हैं तथा अपनी मान्यता के प्रति अडिग हैं उन्हें पूर्वाग्रही ही कहा जायेगा।

संसार विषयक मान्यताओं के सन्दर्भ में ही नहीं सत्य के अन्यान्य पक्षों के बारे में भी जो एकांगी सोचते तथा उसे ही परिपूर्ण मानते रहते हैं, उनकी स्थिति किसी पूर्वाग्रही से कम नहीं है। अधिक अच्छा हो, अपने ज्ञान की क्षुद्रता को नम्रतापूर्वक स्वीकार किया जाय तथा नयी जानकारियों की उपलब्धि के लिए अपनी अन्वेषक विवेक दृष्टि सदा खुली रखी जाय। ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना का उद्देश्य समझें

यह समझना भूल है कि पूजा करना ईश्वर पर ऐसा अहसान करना है जिसके बदले में उसे हमारी उचित अनुचित मनोकामनायें पूरी करनी ही चाहिए। ओछे स्तर के लोग ऐसा ही सोचते हैं और इसी प्रलोभन से पूजा-पत्री का औंधा-सीधा ठाठ रोपते हैं। आधार ही गलत हो तो बात कैसे बने—पार कैसे पड़े? पूजा करने वालों से दोस्ती और न करने वालों से 'कुट्टी'। यदि ऐसी रीति-नीति अपनाने लगे तो फिर ईश्वर को समदर्शी कैसे कहा जा सकेगा? फिर संसार में कर्त्तव्य और पुरुषार्थ की आवश्यकता क्या रहेगी? यदि पूजा द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करके मनोकामनायें पूर्ण की जा सकती हैं तो फिर इतने सस्ते और सरल मार्ग को छोड़कर क्यों कोई कष्ट साध्य गतिविधियाँ अपनाने को तैयार होगा? यदि यह तथ्य सही होता तो मन्दिरों के पुजारी सर्व मनोरथ सम्पन्न हो गये होते और साधु पंडित जो ईश्वर का ही झण्डा उठाये फिरते हैं सर्व कामना सम्पन्न रहे होते। फिर उन्हें अभाव असन्तोष क्यों सताता? प्रत्यक्ष है कि यह वर्ग और भी दयनीय स्थिति में है। कारण कि उपासना को कामना पूर्ति का माध्यम समझा गया और आवश्यक कर्म निष्ठा से मुँह मोड़ लिया गया। इस गलत आधार को मान्यता मिल जाने से आस्तिकता का उपकार नहीं हुआ वरन् उसे असत्य और संदिग्ध मानने की अनास्था ही बढ़ी।

उपासना को नित्य कर्म में सम्मिलित करने की आवश्यकता इसीलिए पड़ती है कि आन्तरिक स्वच्छता का क्रम बिना व्यवधान के निर्बाध गति से चलता रहे। नित्य का अभ्यास ही किसी महत्वपूर्ण विषय में स्थिरता और प्रखरता बनाये रह सकता है। यदि पहलवान लोग नित्य का व्यायाम छोड़ दें, फौजी सैनिक परेड की उपेक्षा कर दें तो फिर उनकी प्रवीणता कुछ ही दिन में अस्त-व्यस्त हो जायगी। स्कूली पढ़ाई छोड़ने के बाद जिन्हें फिर कभी पुस्तकें उलटने का अवसर नहीं मिलता वे उस समय के सारे प्रशिक्षण भूल जाते हैं। याद केवल उतना ही अंश रहता है जितना काम में आता रहता है। मन की भी यही स्थिति है, वह पशु प्रवृत्तियों के निम्नगामी प्रवाह में तो अनायास ही बहता रहता है, पर यदि उसे उच्च स्तर पर बनाये चढ़ाये रहना हो तो पतंग उड़ाने वालों की तरह बहुत कुछ पुरुषार्थ करना होता है। पानी को कुएँ से निकालने टंकी तक पहुँचाने में नित्य ही प्रयत्न करना पड़ता है पर नालियाँ अपने आप चलती रहती हैं। गिरा हुआ पानी अपने आप नीचे ढुलकता जाता है और उसके बिना किसी यन्त्र मशीन या प्रयास के नालियाँ बहती रहती हैं। निकृष्ट बनाना हो तो संचित पशु प्रवृत्ति को स्वच्छन्द छोड़ देना पर्याप्त है वे जीवन वृक्ष पर अमर बेल की तरह छा जायँगी पर यदि उत्कृष्टता का उद्यान लगाना हो तो उसके लिये चतुर माली जैसा कला कौशल एवं मनोयोग नियोजित करना पड़ेगा। उपासना मनःक्षेत्र को सुरभित उद्यान की तरह फल फूलों से लदा हुआ बनाने के कुशल पुरुषार्थ की तरह ही समझी जानी चाहिए। वस्तुतः मनोकामनायें पूर्ण करने का यह विवेक संगत एवं यथार्थ मार्ग है। मन देवताओं का भी देवता है। यदि उसे साध सँभाल लिया जाय तो वह कल्पवृक्ष से कम नहीं अधिक ही उपयोगी एवं वरदानी सिद्ध होता है। उपासना इस मन कल्पवृक्ष को सुविकसित बनाने की वैज्ञानिक विधि-व्यवस्था का ही नाम है।

आत्मोत्कर्ष में अभिरुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उपासना को अपने नित्य क्रम में सम्मिलित करना ही चाहिये। यह नहीं सोचना चाहिये कि हम ईश्वरीय आदेशों का पालन करते हैं फिर उपासना की क्या जरूरत। लुहार, बढ़ई, मूर्तिकार आदि शिल्पी अपने श्रम और प्रयोजन में लगे रहते हुए भी यह आवश्यक समझते हैं कि उनके औजारों पर जल्दी-जल्दी धार धरी जाती रहे। नाई अपने काम में ठीक तरह लगा रहता है पर उस्तरा तो उसे बार-बार तेज करना पड़ता है। मन ही वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औजार है जिससे क्रिया-कलापों को ठीक तरह करते रह सकना सम्भव होता है। यदि भोंथरा होने लगे तो फिर कर्तृत्व का स्तर भी गिरने लगेगा। इसलिये जहाँ अन्य अनेक कार्यों में समय लगाया जाता है वहाँ मन की मलीनता को स्वच्छ करने और उसे प्रखर बनाने के प्रयास को भी नित्य का एक आवश्यक कर्त्तव्य माना जाना चाहिए। पेट की भूख बुझाने के लिये बार-बार भोजन करना पड़ता है। आत्मा की भूख बुझाने के लिये भी उसे उपासना का आहार बार-बार नित्य ही—दिया जाना आवश्यक है।

पुरुषार्थ की प्रखरता में उपासना अत्यधिक सहायक होती है, उसे समय नष्ट करने वाली बाधा नहीं माना जाना चाहिए। पारलौकिक पुरुषार्थों में अधिक उत्कृष्टता लाने के लिये अपने समय का एक अंश उपासना में नियत रूप से लगाना चाहिए। धुले कपड़े पर टिनोपाल लगा देने से—लोहा करने से और भी सुन्दरता आ जाती है। निर्मल और उज्ज्वल जीवन क्रम रहते हुये भी यदि उपासना का अवलम्बन ग्रहण किया जायगा तो उसमें लगे हुए समय की कहीं अधिक सुन्दर सुव्यवस्था जीवन क्रम में विकसित होगी। शर्त यही है कि उपासना मात्र कर्मकाण्ड होकर न रह जाय उसमें भावना के समन्वय की प्राण प्रतिष्ठा अनिवार्य रूप से जुड़ी रहे।

स्वाँति के जल से मोती वाली सीपें ही लाभान्वित होती हैं। अमृत उसी को जीवन दे सकता है जिसका मुँह खुला हुआ है। प्रकाश का लाभ आँखों वाले ही उठा सकते हैं। इन पात्रताओं के अभाव में स्वाँति का जल, अमृत अथवा प्रकाश कितना ही अधिक क्यों न हो उससे लाभ नहीं उठाया जा सकता। ठीक यही बात देव उपासना के सम्बन्ध में लागू होती है। घृत सेवन का लाभ वही उठा सकता है जिसकी पाचन क्रिया ठीक हो। देवता और मन्त्रों का लाभ वे ही उठा पाते हैं जिन्होंने व्यक्तित्व को भीतर और बाहर से—विचार और आचार से परिष्कृत बनाने की साधना करली है। औषधि का लाभ उन्हें ही मिलता है जो बताये हुए अनुपान और पथ्य का भी ठीक तरह प्रयोग करते हैं। अतः पहले आत्म उपासना फिर देव उपासना की शिक्षा ब्रह्म विद्या के विद्यार्थियों को दी जाती रही है। लोग उतावली में मन्त्र और देवता के भगवान और भक्ति के पीछे पड़ जाते हैं इससे पहली आत्मशोधन की आवश्यकता पर ध्यान ही नहीं देते। फलतः उन्हें निराश ही होना पड़ता है। बादल कितना ही जल क्यों न बरसाये, उसमें से जिसके पास जितना बड़ा पात्र है उसे उतना ही मिलेगा। निरन्तर वर्षा होते रहने पर भी आँगन में रखे हुये पात्रों में उतना ही जल रह पाता है जितनी उनमें जगह होती है। अपने भीतर जगह को बढ़ाये बिना कोई बरतन बादलों से बड़ी मात्रा में जल प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकता देवता और मन्त्रों से लाभ उठाने के लिये पात्रता नितान्त आवश्यक है।

साधना की अपनी महिमा और महत्ता है उसे गंगा जल से कम नहीं अधिक ही महत्व दिया जा सकता है पर साथ ही साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि वह सर्व समर्थ नहीं है। गंगा जल से बनी हुई मदिरा अथवा गंगा जल में पकाया हुआ माँस सर्व समर्थ नहीं गिने जायेंगे। शौचालय में प्रयुक्त होने के उपरान्त का गंगाजल भरा पात्र देव प्रतिमा पर चढ़ाने योग्य न रहेगा। गंगाजल की शास्त्र प्रतिपादित महत्ता यथावत् बनी रहे इसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि उसके संग्रह उपकरण एवं स्थान की पवित्रता भी अक्षुण्ण बनी रहे।

रंगरेज कपड़ा रंगने की प्रक्रिया उसकी धुलाई से आरम्भ करता है। यदि मैला कपड़ा रंगने के लिए दिया जाय तो पहले उसे धोवेगा। धुले हुए कपड़े पर ही रंग चढ़ना या चढ़ाया जाना सम्भव होता है। उपासना को रंगाई कह सकते हैं और साधना को धुलाई। दोनों अन्योन्याश्रित हैं। इनमें प्रधान और गौण का वर्गीकरण करना हो तो साधना को प्रधान और उपासना को गौण मानना पड़ेगा। धुला वस्त्र बिना रंगे भी अपनी गरिमा बनाये रह सकता है पर मैला वस्त्र रंग को बर्बाद करेगा और रंगरेज को बदनाम। स्वयं तो उपहासास्पद बना ही रहेगा। मैले कपड़े पर रंग चढ़ाने की सूझ-बूझ भी भौंड़ी ही मानी जायगी इस प्रकार का किया श्रम भी सार्थक न रहेगा।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिपादन और उसका प्रभाव

तत्वज्ञान को पढ़ने समझने वाले लोग भी उन मार्ग पर प्रायः स्वयं नहीं चल पाते। दूसरों को उपदेश करने वाले और अध्यात्म युक्त धर्म मार्ग पर चलने की आये दिन चर्चा करने वाले लोग भी जब स्वयं उस मार्ग पर चलते नहीं, तो कथनी और करनी का अन्तर दूसरों में क्या उत्साह भर सकता है और किस प्रकार उन्हें उस कथन पर विश्वास करने के लिए उद्यत कर सकता है?

करनी और कथनी का अन्तर छिपाये नहीं छिपता। वह हवा के साथ उड़कर असंख्यों के मस्तिष्क से जा टकराता है। और अनुमान आशंका से आगे बढ़कर वह चर्चा का विषय बन जाता है काना-फूसी का रूप धारण करता है और सन्देह बढ़ते-बढ़ते सर्वजनीन चर्चा का विषय बन जाता है। और यदि वैसा अन्तर न हो तो अनेक प्रतिभावानों द्वारा लगाये गये लाँछन भी हवा में उड़ जाते हैं और उनका कोई गम्भीर प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तविकता असंख्य विरोधों को चीरती हुई विज्ञजनों के अन्तराल में श्रद्धा बनकर जा बैठती है। इसीलिए नीतिकारों ने निन्दा प्रशंसा की चिन्ता न करके वस्तुस्थिति को प्रामाणित बनाने का परामर्श दिया है।

कथनी और करनी का अन्तर यों अखरता तो हर क्षेत्र में है। पर धर्म और अध्यात्म क्षेत्र में यह अन्तर लोगों को प्रतिपादित दर्शन के प्रति ही अनास्था उत्पन्न करता है। सुनने वाले सोचते हैं कि यह मार्ग इतना सही और व्यावहारिक रहा होता तो प्रवक्ता स्वयं ही उसे क्यों न अपनाता, और उन बातों से स्वयं क्यों वंचित रहता जिन्हें प्राप्त करने के लिए दूसरों से कहा जा रहा है।

विचारणीय है आदर्शों का प्रतिपादन करने वाले स्वयं उनसे क्यों पीछे हटते हैं। इसका मुख्य कारण उनकी व्यक्तिगत महत्वाकाँक्षाएँ होती हैं जिन्हें कामनाएँ पूरी होती हैं। भावना के आगमन में यह कामनाएँ दबी ही नहीं रहती। अपेक्षित साधन या अवसर मिल जाने पर भी वे आग में ईंधन डालने की तरह बढ़ती ही जाती है। उनकी पूर्ति के निमित्त उठती हुई उत्कण्ठा इतनी व्याकुलता उत्पन्न करती है कि मनुष्य अपने द्वारा किये गये प्रतिपादनों को भुलाकर संकीर्ण स्वार्थपरता की दलदल में गहरा ही धँसता जाता है और कुकृत्य तक करने लगता है। अभ्यास हो जाने पर पीछे वह आत्म-ग्लानि भी नहीं होती जो विवेकवानों के मन में उठनी चाहिए यह महत्वाकांक्षाओं का समूह ही 'काम' कहा गया है और इसे पतन के गर्त्त में धकेलने वाला शत्रु कहा गया है गीताकार के शब्दों में यह 'काम' ही ऐसा उद्वेग है जो मनुष्य को अपनी और दूसरों की आँखों में गिरा देता है।

इस विडम्बना से कैसे पीछा छूटे? इस प्रश्न का भक्तिमार्गी उत्तर देते हैं कि ईश्वर की शरण में जाना और ज्ञानमार्गी कहते हैं अपने को सीमित संकीर्णता से उबारकर सबको अपने और अपने को सबमें देखना। ऐसी मनःस्थिति में परमार्थ ही स्वर्ग बन जाता है और दूसरों को सुखी बनाने वाले कार्य अपनी निजी सफलता से बढ़कर आनन्ददायक प्रतीत होने लगते हैं।

ईश्वर की शरीर में जाने की बात भी ऐसी ही है। अदूरदर्शी परमात्मा को कोई व्यक्ति विशेष मानते हैं। और उसे भी उन्हीं दुर्बलताओं से ग्रसित मानते हैं जिनसे कि मनुष्य घिरे रहते हैं। पूजा उपचार के निमित्त प्रयुक्त किये जाने वाले काल्पनिक ईश्वर और सर्वव्यापी निराकार परब्रह्म में भी ऐसा ही जमीन आसमान जैसा अन्तर रहता है।

इस सन्दर्भ में शास्त्र कहता है कि—

सर्वभूतस्थ मात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि
ईक्षते योग मुक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनः।

—गीता

अर्थात्—सम्पूर्ण प्राणियों में अपने को और अपने को सब प्राणियों में योगीजन देखते हैं। जिन्हें सर्वत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही तत्व दीखता है वे मुक्तात्मा है। वही योगी है।

अयमांसर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्।
अर्हयेदान मानाभ्यां मैत्राभिन्नेन चक्षुषा।
मनसैतानि भूतानि प्रणमेद बहुमान यत्।
ईश्वरो जीव कलया प्रविष्टो भगवानिति।।

—गीता

अर्थात्—सब प्राणियों को मेरी ही आत्मा समझकर उन्हें भिन्न-अभिन्न भाव से देखना उनकी सेवा सहायता करना, मान देना, इन प्रयोजनों में संलग्न जीव भगवान को प्राप्त करता है।

यच्चक्षुषा न पश्यति, येन चक्षुंषि पश्यन्ति तदेव ब्रह्मत्वविद्धिनेदं यदिदं उपासते।

—उपनिषद्

अर्थात्—जो आँखों से नहीं देखा जा सकता। जिसके कारण नेत्र देखते हैं। उसी परब्रह्म को जानना चाहिए। जिसकी पूजा उपासना की जाती है वह ब्रह्म नहीं है।

परमेश्वर की शरण में जाना हो तो इस तरह जाना चाहिए कि उत्कृष्टताओं के समुच्चय परमेश्वर को अपने अन्तरंग और बहिरंग जीवन में ओत-प्रोत कर लें। यदि साकार ब्रह्म से सम्बन्ध जोड़ने की इच्छा हो तो यह विराट् विश्व ही उसकी प्रतिमा है। उसकी पूजा-अर्चा के निमित्त संसार में सदाशयता और सज्जनता की सुसंस्कारिता का अभिवर्धन अपनी समूची सामर्थ्य के अनुरूप करना चाहिए।

प्राणों को अपने में और अपने को प्राणियों में समाया हुआ देखने का अर्थ यह है कि दूसरों के दुःख बँटाने और अपने सुख बाँट देने में अपना सन्तोष और आनन्द निरन्तर चढ़ता चले। जो बरताव दूसरों द्वारा अपने लिए किये जाने की अपेक्षा करते हैं वही हम स्वयं भी दूसरों के लिए करते हैं। साथ ही एक बात का और भी ध्यान रखें कि औसत नागरिक जैसा जीवन क्रम अपनाये। 'सादा जीवन उच्च विचार' का यथार्थवादी तत्वज्ञान इस आधार पर नियत है और अपनी बचत के समय श्रम और साधनों को उनके लिए लगा सकना सम्भव होता है जिन्हें कि 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की मान्यता के अनुरूप शरीर और परिवार की तरह अपना माना जाना चाहिए।

दृष्टिकोण में इतनी उदात्त आत्मभावना या ब्रह्म परायणता का समावेश हो जाने पर ही अन्तःकरण उस ढाँचे में ढलता है जिसके आधार पर कि उच्चस्तरीय तत्वज्ञान को प्रतिपादन तक सीमित न रखकर अपने चरित्र व्यवहार का भी अविच्छिन्न अंग बनाया जा सके।

ऐसे एकात्म भाव के ढाँचे में अपने को ढाल लेने वाले दूसरों को जो परामर्श देते हैं वह सुनने वालों के कानों तक सीमित नहीं रहता और मस्तिष्क को झकझोरता हुआ अन्तराल तक उतर जाता है। इतना ही नहीं, ऐसा भी होता है कि उनका व्यक्तित्व वातावरण में उच्चस्तरीय ऊर्जा बखेरे और उससे परिचित अपरिचित अनेकों अनायास ही सत्प्रेरणाएँ ग्रहण करते और प्रभावित होते चले जायें। ऐसा जीवन ही धन्य है जो स्वयं तरे और अन्य असंख्यों को तारे।

इस स्तर का जीवन कितने दिन जिया गया इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। वे अल्पायु होने पर भी वयोवृद्धों से बढ़कर हैं और जिनने भारभूत जीवन जिया वे दीर्घायु होते हुए भी बालकों से भी गये बीते अबोध हैं। कहा गया है कि—

तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते।

अर्थात्—तेजस्वियों की आयु कितनी हो गई। इसकी समीक्षा नहीं करनी चाहिए वे तो अजर-अमर होते हैं।*

एक अजनबी अँग्रेज अस्पताल में अपने मित्र से मिलने जा रहे थे। टैक्सी वाले अजनबीपन का लाभ उठाकर मनमाने दाम माँग रहे थे। एक जापानी सज्जन अपनी कार लेकर उधर से निकल रहे थे। उनने इशारा करके अँग्रेज को अपनी कार में बिठा लिया। अस्पताल का रास्ता मुश्किल से पाँच मिनट का था। उसके दरवाजे पर उनने छोड़ दिया। किराये की बात पूछी तो उनने कहा—"यह भाईचारे का तकाजा था, यों ही वसूल हो गया। अब लेना-देना कुछ नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थियोसोफी का तत्व दर्शन

रूस में जन्मी एक बालिका जन्म से ही अपने साथ अद्भुत संस्कार लेकर आई थी। आध्यात्म साधनों में घन्टों एक निष्ठ भाव से निमग्न रहती। जब वह पाँच वर्ष की थी तभी वह तत ज्ञान सम्बन्धी प्रश्नों के ऐसे उत्तर देती मानो वह ब्रह्म विद्या के गूढ़ रहस्यों का गहरा अध्ययन भी, अभ्यास और अनुभव भी कर चुकी हो। नाम था उसका 'ब्लावस्की' आयु के साथ शिक्षा भी बढ़ती रही और साधना, अनुभूति तथा निष्ठा भी।

चवालीस वर्ष की आयु में वे अमेरिका गईं। सैर सपाटे या कला-कौशल सीखने के लिए नहीं, वरन् उस जिज्ञासा का समाधान करने-जो वहाँ के 'फार्म हाउस' के बारे में उनने सुन रखी थी। अमेरिका के उस केन्द्र में दिव्यात्माओं के दर्शन कराये और सन्देश सुनाये जाते थे। उनकी सत्ता को प्रामाणित करने वाले घटनाक्रम भी उस संस्थान में होते रहते थे। 'ब्लावस्की' अपनी मान्यताओं को दूसरे लोगों द्वारा प्रत्यक्ष कर दिखाने से उन्हें हर्ष भी था और गर्व भी। वे वह सब आँखों से देखना चाहती थीं। इसलिए लम्बी यात्रा का कष्ट उठाते हुए वे वहाँ पहुँचीं।

उन्होंने बारीकी से देखा कि इसमें कहीं जादूगरों द्वारा किये जाने वाले छल छद्म जैसा तो कुछ नहीं है। पर अनेक परीक्षाओं के उपरान्त यथार्थता यथार्थता ही रही। वे उस सन्दर्भ में अधिक जानने के लिए वहीं रुक गईं। इसी बीच अपनी ही जैसी लगन वाले एक और जिज्ञासु साधक से उनकी भेंट हुई। नाम था—आलकाट। दोनों का परिचय हुआ। विचार विनिमय होता रहा और वे लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ब्रह्म विद्या का प्रकाश वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर संसार भर में फैलाया और जन-साधारण को उपलब्ध कराया जाय। इसी निर्णय को क्रियात्मक रूप देने के लिए न्यूयार्क में थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना हुई। यह सन् १८७५ की बात है।

इसके उपरान्त 'ब्लावस्की' हिन्दुस्तान चली आईं। उनकी मान्यता थी कि आडम्बरों के बढ़ जाने पर भी भारत में अध्यात्म का तत्व ज्ञान और साधना विधान विद्यमान है। ऐसे प्रयासों के लिए वही उर्वर भूमि रही है। अस्तु भारत भ्रमण के उपरान्त उनने यहीं बस जाने का निर्णय किया। मद्रास के समीप अडयार नामक स्थान में सोसाइटी का प्रधान कार्यालय बना और वाराणसी में उसकी भारतीय शाखा का मुख्यालय। यों संस्था का विस्तार संसार के ६० देशों में है और उनके अनेक नगरों में उनकी शाखा प्रशाखाएँ हैं।

इंग्लैण्ड के प्रो० लेड बीटर तो संस्था के सिद्धान्तों से इतने प्रभावित हुए कि इन्होंने अपना जीवन ही इस निमित्त अर्पित कर दिया। जब वे इंग्लैण्ड से भारत आ रहे थे तब रास्ते में यह सन्देह भी मन में उठ रहा था कि उनका निर्णय सही एवं उपयोगी भी है या नहीं। इसके उत्तर में अचानक ही एक कागज उनके हाथ में आ गया जिसमें उठाये गये कदम को सही बताया गया था। लेडबीटर का विश्वास और भी अधिक परिपक्व होगया और वे सच्चे मन से इस निमित्त समर्पित हो गये। भारत में एन्टीबीसेन्ट का सहयोग उन्हें मिला और संस्था की गतिशीलता देखते-देखते द्रुतगति से बढ़ने लगी।

थियोसोफी ने अध्यात्म तत्वज्ञान के अन्यान्य पक्षों पर प्रकाश डालते हुए यह प्रतिपादन विशेष रूप से किया है कि उच्च भावना सम्पन्न मनुष्यों का उद्देश्य दिव्य शक्तियाँ तलाशती रहती हैं और जो उनकी कसौटी पर खरे उतरते हैं उनको आगे बढ़ने की प्रेरणा और समय समय पर समुचित सहायता प्रदान करती रहती हैं। देवत्व का संरक्षण और अभिवर्धन उनका प्रधान कार्य है। इस समुदाय को थियोसोफी ने "मास्टर्स" कहा है। उनका तात्पर्य देवात्माओं में से जो सूक्ष्म शरीरधारी होते हैं, अन्तरिक्ष में विचरण करते हैं, भावनाशील चरित्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थानों की तलाश करते हैं और उन्हें श्रेष्ठता की दिशा में बढ़ाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसी आत्माओं का निवास बहुधा हिमालय के उस क्षेत्र में रहता है जो तिब्बत के समीप पड़ता है। यह अध्यात्म का ध्रुव केन्द्र है। ईश्वरीय इच्छा को जानकर देवात्मा 'मास्टर्स' इसी क्षेत्र में संसार भर की देखभाल करते हैं और धर्मतत्व का—सद्भाव का अभिवर्धन करने के लिए देवदूतों जैसी मध्यवर्ती भूमिका सम्पन्न करते हैं। स्थूल शरीर न होने से वे प्रत्यक्ष क्रियाएँ तो नहीं कर पाते पर अपने दिव्य शरीर से पवित्र आत्माओं के माध्यम से वैसा कराते रहते हैं जो सामयिक लोक कल्याण के लिए आवश्यक है।

थियोसोफी के मूर्धन्य संचालकों द्वारा कतिपय बड़े और प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे गये हैं जिनमें "टाक्स ऑन दी पाथ ऑफ आकल्टिज्म" "एट दी फीट ऑफ दि मास्टर्स" और "दी लाइट ऑन दी पाथ" अधिक प्रख्यात हैं।

इन पुस्तकों का प्रधान प्रतिपादन यह है कि यदि मनुष्य अपने आपको पवित्र प्रखर एवं सत्पात्र बना ले और आत्मोत्कर्ष तथा लोक मंगल के प्रति अभिरुचि का अभिवर्धन करे तो उसे देवात्माओं का अदृश्य अनुदान एवं वरदान हस्तगत होता रहता है।

इन मान्यताओं की पुष्टि में सोसाइटी द्वारा प्रकाशित उन अनेक घटनाओं तथा व्यक्तियों के उद्धरण हैं जिनमें धर्म प्रेमियों ने सत्प्रयोजन के लिए कदम बढ़ाते हुए किस प्रकार और कितनी अदृश्य सहायताएँ उपलब्ध कीं। यह हो सकता है कि इन सहायकों के प्रत्यक्ष दर्शन न हों या विशेष परिस्थितियों में हो भी जाँय, किन्तु वे भीतर ही भीतर यह अनुभव अवश्य करते हैं। सत्प्रयोजनों में इतनी प्रगति मात्र उनके निजी पुरुषार्थ से ही नहीं हो रही है वरन् उसके सफलता के पीछे कोई अदृश्य किन्तु अति समर्थ हाथ भी काम कर रहे हैं।

मरणोत्तर जीवन के बारे में थियोसोफी की मान्यता है कि आत्मा मरती नहीं। न किसी स्थान विशेष पर कैद रहती है। वरन् इसी अपने अन्तरिक्ष में परिभ्रमण करती रहती है। पुराने घर और सम्बन्धियों को पहचानती है। उनसे सहानुभूति भी रखती है, पर यह मानकर दुःखी नहीं होती कि शरीर छोड़ना पड़ा और किन्हीं घनिष्ठों से बिछुड़ना पड़ा।

मृतात्माएँ थकान मिटाने के लिए कुछ विश्राम भी करती हैं, पर पीछे सक्रिय हो जाती हैं और अपने पिछले अनुभवों के आधार पर वे नये क्रिया कलाप में सन्निद्ध होती हैं। दुष्टात्मा भूत-प्रेत की योनि में जाते तो हैं, पर वे डराने धमकाने के अतिरिक्त किसी का कोई बड़ा अनिष्ट नहीं कर सकते और न महत्वपूर्ण सहायता कर सकने की उनमें क्षमता होती है। उनके साथ सम्बन्ध सधने से मनुष्य को घाटा ही पड़ता है। इसलिए उस मिशन के प्रतिपादनों में भूत विद्या की जहाँ भर्त्सना की गई है वहीं 'मास्टर्स'—देवात्माओं के साथ सम्बन्ध जोड़ने का लाभ बताते हुए उस प्रक्रिया का विधान भी बताया गया है।

> राजहंस दूध पीते हैं जल छोड़ देते हैं। मोती चुँगते हैं कोड़े नहीं खाते। ऐसी व्रतशीलता निभाकर कोई भी श्रेष्ठ बन सकता है।

'ब्लावत्स्की' जीवन के अन्तिम दिनों में अपना महान ग्रन्थ 'सीक्रेट ऑफ डाक्ट्रिन' लिख रही थीं। वह सात बड़े खण्डों में प्रकाशित हुआ है। लेखन कार्य की अधूरी स्थिति में ही उनका अन्त समय आ पहुँचा। वे गहरी बीमारी में फँस गई। पर उनके 'मास्टर' ने प्रकट होकर आश्वासन दिया कि उनकी मृत्यु को तब तक रोक रखा जायगा जब तक वे हाथ में लिये कार्य को पूरा नहीं कर लेतीं। ऐसा ही हुआ भी।

थियोसोफी की पूजा पद्धति में सभी प्रमुख धर्मों के मन्त्र लिये गये हैं और सर्व धर्म समभाव का उनमें से उपयुक्त प्रतिपादनों के चयन को प्रोत्साहन दिया गया है। इसके संस्थापक ईसाई धर्मावलम्बी थे फिर भी हिन्दू धर्म की मान्यताओं को ही इस मिशन में प्रधानता दी गई है। हिन्दू विश्वविद्यालय का प्रारम्भ सर्व प्रथम हिन्दू नेशनल कालेज के रूप में थियोसोफी वालों ने ही किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति के रहस्य अपने अन्तराल में खोजें

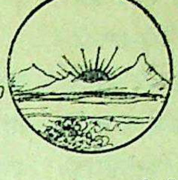

हम प्रकृति के असीम समुद्र में एक छोटी मछली की तरह रह रहे हैं। हम उसके मध्यान्तर में रहने वाले प्राणी हैं और वह वायुमण्डल की तरह हमारे चारों ओर घिरी है। इतना होते हुए भी हम उसके रहस्यों को अत्यन्त स्वल्प मात्रा में ही जान पाये हैं। मछली जन्म से लेकर मरण पर्यन्त जिस जलाशय में रहती है उसके सम्बन्ध में वह नगण्य जानकारी से अवगत होती है। उस जल का निर्माण किन गैसों से हुआ है? उसमें क्या रासायनिक पदार्थ घुले हैं, बेचारी को इतनी तक जानकारी नहीं होती।

प्रकृति के अनेकों रहस्य हमने जान लिये हैं और उस आधार पर कितने ही वैज्ञानिकों ने आविष्कार करके अपने को सुविज्ञ कहलाने संसार के सुविधा साधन बढ़ाने एवं दर्शकों को चमत्कृत करने में सफलता पाई है। इतने पर भी जो जानना शेष है वह असीम है। उसे समझ पाने में सीमाबद्ध मानव इन्द्रिय शक्ति एवं बुद्धि की दौड़-धूप की मर्यादा में रहकर ही जो जान सकता था जान पाया है,या जान सकेगा। इसके अतिरिक्त भी जो असीम जानने योग्य बच रहेगा उन्हें पूरी तरह समझ पाना कभी सम्भव हो सकेगा इसकी आशा नहीं के बराबर है।

हम धरातल के बारे में बहुत कुछ जानते हैं क्योंकि उसी पर रहते हैं और वायुयानों से उसकी स्थिति को हस्तामलकवत देख पाते हैं किन्तु इस पर भी उस पर निर्वाह करने वाले अगणित कृमि कीटक जैसे प्राणियों की अतीन्द्रिय क्षमता के सम्बन्ध में बहुत ही कम जान सके हैं। जीवन के संचालन में सहायक वैक्टीरिया और मरण के अग्रदूत वायरसों की विचित्रता और बहुलता के सम्बन्ध में अत्यल्प जान पाते हैं।

दाम्पत्य जीवन का निर्वाह करने का आदिम काल से अभ्यास है प्रजनन के सन्दर्भ में भी बहुत कुछ जाना जा सका है किन्तु यह सफलता अभी भी हस्तगत नहीं हुई है कि पुत्र या पुत्री में से जिसे चाहें उसे जन्म दे सकें।

ऊपर आसमान में दृष्टि उठाकर देखने से बादलों के उठाव तो दीखते हैं पर यह नहीं कहा जा सकता कि वे कब, किस स्थान पर कितनी मात्रा में जल बरसावेंगे। आँधी-तूफान कब आ धमके, और कितनी उखाड़-पछाड़ करने के बाद कहाँ जाकर बुलबुले की तरह समाप्त हो जाय इसे कौन जानता है? किस क्षेत्र में किस महामारी का कितना प्रकोप होगा और वह चिकित्सा प्रयोजन को झुठलाकर कितनों को काल का ग्रास बना लेगा इस तक की तो समग्र जानकारी मिल नहीं पाई है। निश्चित और सफल चिकित्सा की बात तो और भी आगे की है।

समुद्र की गहराइयों में कहाँ, क्या भरा है। इसके सम्बन्ध में जो ज्ञान उपलब्ध हो सका है वह नगण्य है। अन्तरिक्षों की शून्यता में क्या पदार्थ, कितनी मात्रा में कहाँ भरा रहता है इसकी जानकारी कुछ के मील तक ही विदित हो सकी है। अनन्त आकाश में बिखरे हुए ग्रह तारकों और नीहारिकाओं की वास्तविक स्थिति क्या है? इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाता है वह सब अनुमान के आधार पर है। कौन जाने उन कल्पनाओं में कितनी सचाई है।

अपने ब्रह्माण्ड के ठीक पीछे उतना ही सशक्त और समग्र एक प्रति विश्व चलता है। एण्टी यूनिवर्स एण्टी मैटर—एण्टी एटम आदि की अस्तित्व मान्यता प्राप्त कर सकता है। किन्तु काया के साथ लगी रहने वाली इस छाया के सम्बन्ध में हम कितना कम जानते हैं। यदि उसे जान सके तो इन लोक-लोकान्तरों में, वहाँ के वातावरण में आमूल-चूल स्तर का परिवर्त्तन हो सकता है।

इससे भी अधिक स्पष्ट अन्तर्जगत है। जिसमें मृतात्माएँ निवास करतीं और मनुष्य के साथ भले-बुरे व्यवहार करती रहती हैं। उनके क्रिया-कलापों के परिचय हमें एक निश्चित वास्तविकता की तरह मिलते रहते हैं। इतने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे किस स्थिति में कहाँ रहते और किस प्रकार निर्वाह करते हैं ? विभिन्न धर्म सम्प्रदायों में यहाँ तक कि परामनोविज्ञानियों ने भी उनकी सत्ता के प्रमाण परिचय उपलब्ध कर लेने पर भी उनके निर्वाह एवं कार्यक्षेत्र के बारे में कोई निश्चित बात नहीं कही है। मरणोत्तर जीवन अभी भी उतना ही रहस्यमय बना हुआ है जितना कि पहले कभी था। बुद्धिवाद और प्रत्यक्षवाद ने यों उन मान्यताओं को बहुत कुछ सीमाबद्ध कर दिया है फिर भी अभी तक ऐसे प्रमाण मिलते रहते हैं जो सर ओलिवर लाज जैसे विज्ञानियों को अध्यात्म-वादी बना देते हैं।

वर्षा में यों पानी ही बरसता है। पर घटनाएँ साक्षी हैं कि उनमें कई बार शकर घुली हुई पाई गई है और ऐसी लालिमा वर्षी है जो कपड़ों और जमीन को रँग दे। आसमान से जीवित मछलियों मेंढ़कों जैसे जीवित जन्तुओं का बरसना तो और भी अधिक आश्चर्यजनक है।

कई रेगिस्तानों में अभी भी संगीत सुनाते रेत के कण पाये जाते हैं। खारे समुद्रों में मीठे पानी के फव्वारे उछलते पाये गये हैं। रबड़ की तरह मोड़े मरोड़े जाने वाले और पानी पर तैरने वाले पत्थर यह बताते हैं कि प्रकृति के विभिन्न पक्षों के सन्दर्भ में जो निष्कर्ष निकाले गये हैं वे आंशिक रूप से ही सही हैं।

ब्रह्माण्ड में अनेक ब्लैक होलों के अस्तित्व विद्यमान हैं जिनके बारे में किन्हीं साधनों से निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है पर वे अन्तरिक्ष में अवस्थित इतने भयंकर भँवर हैं जो अपनी चपेट में आने वाले धरती आकाश के अनेक भारी भरकम घटकों को उदरस्थ कर जाते हैं और यह पता नहीं चलता कि उनका हड़पा हुआ पदार्थ किस लोक को चला गया। कहा इतना भर जाता है कि मरे हुए तारों के प्रेत पिशाच हैं।

मनुष्य यों एक सीधा सादा-सा प्राणी है पर उसका मस्तिष्कीय रहस्यवाद कभी-कभी इतना विलक्षण पाया जाता है कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। मोटे ग्रन्थों को स्मृति पटल पर सुस्थिर कर लेना। छोटी आयु में ही संगीत आदि की विलक्षण प्रतिभाओं का परिचय देना चकित कर देता है कि बिना किसी क्रमबद्ध प्रशिक्षण के यह विभूतियाँ किस प्रकार जाग पड़ीं।

अतीन्द्रिय क्षमताओं के क्षेत्र में कई मनुष्य ऐसे पाये गये हैं कि जो दूर दर्शन, दूर श्रवण, भविष्य कथन, विचार सम्प्रेषण आदि विशेषताओं से सम्पन्न होते हैं और अविज्ञात बातों को बिना किन्हीं सहायता के इस प्रकार बताते हैं मानो उनने वह सब प्रत्यक्ष देखा हो। उड़न तश्तरियाँ अभी भी रहस्य बनी हुई हैं। उन्हें बुद्धि भ्रम और प्रकृति घटकों की विलक्षणता कहकर समाधान किया गया है फिर भी उनके द्वारा छोड़े अवशेषों या साथ ले जाये गये पदार्थों की यथार्थता का पता लगाने पर इन समाधान कर्त्ताओं को स्वयं असमंजस होता है कि लोकान्तरों से आवागमन का यह कोई माध्यम ही तो नहीं है।

रेगिस्तानों में जहाँ पानी का कोई आधार नहीं उगने वाले 'करटैक्ट' पौधों को हरे-भरे देखकर यह आश्चर्य होता है कि इन परिस्थितियों में वे जीवन जल किस प्रकार और कहाँ से प्राप्त करते हैं।

> ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए तीन काम पर्याप्त हैं—नदी जैसी उदारता, सूरज जैसी गतिशीलता और पृथ्वी जैसी सहनशीलता।

अपनी धरती तोप के गोले से भी अधिक तेजी से सूर्य की परिक्रमा करती है, अपनी धुरी पर घूमती है, लहराती है। इतने पर भी उस पर रहने वाले हम मनुष्यों को उससे तनिक भी प्रभावित नहीं होना पड़ता यह कैसे आश्चर्य की बात है। सभी ग्रह अधर में लटके हुए हैं और द्रुतगति से दौड़ते हैं फिर भी नीचे नहीं टपक पड़ते। यह कैसी मजबूत पारस्परिक आकर्षण की मजबूत रस्सियाँ उन्हें आपस में बाँधे हुए हैं यह कैसे आश्चर्य की बात है।

कई बार कई मनुष्यों के शरीर से झटका देने वाली बिजली या अग्निकाण्ड खड़ा कर देने वाली ज्वाला फूट पड़ती देखी गई है। ६० प्रतिशत पानी वाले इस शरीर का ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ना कितना अचरज भरा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य ने अनेकों कल-कारखाने पुल, बाँध आदि बनाये हैं पर वह अपने जाति वालों को एक धर्म, एक संस्कृति, एक कानून और एक देश बनाकर रहने के लिए सहमत न कर सका। उसके बुद्धि वैभव को इतना भी न कर पाने पर किस आधार पर सराहा जाय। अपराधी आतंकवादियों को काबू में रखना और युद्धों की अपेक्षा पंच फैसले से जो समस्याओं का हल न निकाल सकी। सर्वमान्य समता का सिद्धान्त मात्र पुस्तकीय प्रतिपादन बनकर रह रहा है यह कैसी विडम्बना है। करोड़ों को गरीबी, बीमारी, अशिक्षा और पिछड़ेपन की चक्की में पिसते रहने पर भी सभ्यता विकास के दावे कितने थोथे हैं, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि मनुष्य की बुद्धिमत्ता में कोई सन्देह न होते हुए भी उसके हाथ नगण्य जितना ही लगा है।

न्यूटन के आविष्कारों की जिस मण्डली में भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही थी। उनमें वक्ताओं की सदाशयता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए भी उसने सच्चे मन से इस वास्तविकता को स्वीकारा था कि वह एक छोटे बच्चे की तरह समुद्र के किनारे चक्कर लगाकर तुच्छ मूल्य के सीप घोंघे ही ढूँढ़ पाया है। जो जानना बाकी है वह इतना असीम है कि उसके ढूँढने की कल्पना तक नहीं की जा सकती।

सही बात भी यही है। हमारी सत्ता कितनी विलक्षण क्यों न हो पर वह शरीर में आबद्ध और मानसिक दृष्टि से प्रतिबन्धित है। हम अपने मस्तिष्क का सात प्रतिशत भाग काम में ला पाते हैं और ९३ प्रतिशत ऐसे ही प्रसुप्त एवं अविज्ञात स्थिति में पड़ा रहता है। शरीर संरचना और उसके अनुरूप तालमेल बिठाते हुए जीवनचर्या बनाने तक में हम समर्थ नहीं हो सके अन्यथा उसे सौ वर्ष ही नहीं सैकड़ों वर्षों तक तपस्वियों की तरह जिया जा सकता था।

विज्ञान के भौतिक पक्ष पर ही यत्किंचित अन्वेषण करने और थोड़े से चमत्कार प्रस्तुत करने में ही हमने सफलता पाई है। सो भी आधी-अधूरी। क्योंकि ब्रह्म और प्रकृति के सभी कार्य सुव्यवस्थित और सुनियोजित रीति से चल रहे हैं। जब हम इसमें देखते हैं तो उस अचम्भे को अपने ज्ञान की अपूर्णता न कहकर प्रकृति के अपवाद कहकर अपने को समग्र सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं।

भौतिक बुद्धि और भौतिक उपकरणों की सहायता से किये गये अन्वेषण और निकाले गये सिद्धान्त सदा अपूर्ण और विवादास्पद ही बने रहेंगे। यथार्थता तक पहुँचाने के लिए हमें अपनी ब्राह्मी चेतना जगानी होगी और सृष्टा के साथ योग द्वारा एकात्मता स्थापित करने के आधार पर यह जानना होगा कि प्रकृति के रहस्यों में से जो अभी अविज्ञात बने हुए हैं उनका तात्विक कारण क्या है?

जो खिलौने हाथ लग गये हैं उनसे मन बहलाने या किसी दूसरे के शिर में दे मारते हुए उसे लहू लुहान कर देने की क्रिया सरल है। समुद्र की ऊपरी सतह पर तो नाव में बैठकर या हवा भरी रबड़ की कुप्पी पेट में बाँधकर भी तैरा जा सकता है। पर लम्बी साँस ले सकने की क्षमता अर्जित करके पनडुब्बों की तरह समुद्र की तली में मोती ढूँढ़ निकालना कितना कठिन है इसे उस प्रकरण में पुरुषार्थ करने के अभ्यस्त लोग ही जान सकते हैं।

यदि हमारी अभिरुचि अविज्ञात को विज्ञात बना सकने की बुद्धिमत्ता अपनाने में हो तो उसका सही तरीका एक ही है कि अपने को अन्तर्मुखी बनाने का अभ्यास डालें कि अपने भीतर कितना तिलस्म भरा हुआ है। योगी तपस्वी इन्हीं अनुभूतियों को अर्जित करने और रहस्यमय अदृश्य क्षेत्र में प्रवेश करने का प्रयत्न करते हैं।

महाराष्ट्र के मान्य साहित्यकार आचार्य प्रह्लाद केशव अत्रे के पास संचित सम्पदा उन दिनों पचास लाख कूती गयी थी।

मरते समय उसकी वसीयत सारे राष्ट्र के नाम करके ट्रस्ट बना दिया। बच्चे तो शिक्षा प्राप्त करके अपने पैरों खड़े होने योग्य पहले से ही हो गये थे। उन्हें उनने उत्तराधिकार में कुछ भी नहीं दिया। वसीयत में लिखा—सारा देश ही मेरा परिवार है, थोड़े से वंशजों के साथ बँधा हुआ नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्रों, कोशों, ग्रन्थियों, उपात्यिकाओं में समाहित रहस्य ऐसे हैं जिनकी क्षमता और स्थिति समझ लेने पर मनुष्य बाह्य जगत में प्रकृति के रहस्यों को जानने में समर्थ हो सकता है।

चेतना का केन्द्र मस्तिष्क और सम्वेदना का स्रोत हृदय है। यदि इन दोनों चेतना केन्द्र के साथ अपनी अनुभूतियों का तादात्म्य किया जा सकता है तो ब्राह्मी चेतना के साथ भी अपना सम्बन्ध जुड़ सकता है। सच्चे सम्बन्धी परस्पर अपने रहस्यों को भी साक्षी पर प्रकट कर देते हैं। प्रकृति की अधिष्ठात्री मातृ शक्ति और चेतना के निकटवर्ती केन्द्र परब्रह्म के साथ सम्बन्ध जोड़ा जा सके तो समझना चाहिए कि सभी रहस्यों के उद्घाटन की चाबी हस्तगत हो गई।

मनुष्य की अपनी आवश्यकता, मर्यादा और क्रियाशीलता की परिधि सीमित है। उतने भर से ही कार्यरत रहा जाय तो उतना समग्र रूप से उपलब्ध हो सकता है जो सरल जीवन को सुखपूर्वक जीने के लिए आवश्यक है। इतना हस्तगत हो सके तो मनुष्य हँसती-हँसाती, उठती-उठाती जिन्दगी जी सकता है।

कदाचित किसी को रहस्योद्घाटन में ही रुचि हो और प्रकृति के अविज्ञात आधारों को समझने की उत्कण्ठा हो तो उसके लिए आवश्यक है कि आत्म-संरचना और उससे सम्बन्धित रहस्यों को जानने का प्रयत्न करें। जैसा कि हमारे पूर्ववर्ती ऋषि तपस्वी करते रहे हैं। इस आधार पर विज्ञान के वे रहस्य भी हस्तगत हो सकते हैं जो भौतिक उपकरणों से—बौद्धिक उछल-कूद से एक सीमा तक ही सम्भव है। रहस्यों की चाबी तो उस प्रकृति पुरुष के हाथ में है जिसके साथ सम्बन्ध जोड़ने में हम प्रायः कतराते ही रहते हैं।

—**—

परिवार से बढ़कर तपोवन कोई है नहीं। कहीं अन्यत्र भटकने की अपेक्षा अपना लक्ष्य यहीं खोजना चाहिए। एक कलाकार संसार की सबसे सुन्दर वस्तु का श्रेष्ठतम् चित्र बनाना चाहता था। पर यह समझ नहीं पा रहा था कि वह वस्तु क्या है? सो पूछने के लिए निकल पड़ा।

सन्त से पूछा तो उनने कहा—'श्रद्धा', क्योंकि उससे भगवान तक मिल सकता है।

एक नव वधू से पूछा—तो बोली "प्रेम" इससे दो आत्माएँ एक होती हैं।

आगे चलकर वही प्रश्न एक सैनिक से पूछा—उसने कहा—"शान्ति" क्योंकि इससे असंख्यों की जानें बचती हैं।

तीनों की ही बातें ठीक थीं। पर तीनों का सम्मिश्रण कैसे हो? इसका समाधान खोजते घर लौट आया।

घर में प्रवेश करते ही बच्चा लिपट गया उसकी आँखों में असीम श्रद्धा थी और पत्नी ने आरती उतारी उसकी भावनाओं में प्रेम छलक रहा था और सारे घर में सुख-शान्ति का वातावरण बन गया। तीनों का समन्वय हो गया।

कलाकार का समाधान हो गया। उसने एक अति सुन्दर चित्र बनाया जिसके ऊपर लिखा था—"अपना घर।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन जीने की कुशलता

प्रत्यक्षतः साधनों का महत्व ही माना जाता है। क्योंकि दिखाई भी आँखों से वही पड़ता है। उन्हीं के आधार पर किसी की क्षमता, योग्यता, सफलता का अनुमान लगाया जाता है, पर यह स्थूल दृष्टि है। स्थूल ही नहीं अवास्तविक भी। क्योंकि साधन कितने ही विपुल क्यों न हों अन्ततः वे होते पदार्थ ही हैं। पदार्थों को कोई भी व्यक्ति खरीद और सजा सकता है। भले ही उस विषय में वह प्रवीण पारंगत न हो।

बाजार में बहुमूल्य वस्तुओं की दुकानें होती हैं। उन्हें यथास्थान रखने से लेकर बेचने तक का काम मुनीम गुमाश्ते करते हैं। वे वस्तु की विशेषता बताने से लेकर ग्राहक को लुभाने, खरीदने के लिए आतुर करने तक का काम करते हैं। उन्हीं की कुशलता से दुकान चलती है। मालिक भरपूर लाभ भी उठाता है, पर इनमें से एक भी ऐसा नहीं होता जो उन पदार्थों के सम्बन्ध में गहरी प्रवीणता रखता हो जो इन्हें चलाकर, बनाकर दिखा सके। स्पष्ट है उनके साधन जुटाने और उन्हें सजाने की योग्यता भर पाई है। बैंक से रुपया कर्ज लेने—मौके की दुकान उपलब्ध करने—मुनीम गुमाश्ते फुर्तीले नियुक्त करने, वस्तु का विज्ञापन करने जैसी कलाएँ जानी हैं। उन मशीनों को अच्छी तरह चलाना, जहाँ खराबी आने लगी है, उसे दुरुस्त कर देना उनका काम नहीं है जो मालिक बने हुए हैं और इज्जत तथा पैसा कमाते हैं। बहुमूल्य मशीनों की सजी-धजी, लाखों की पूँजी वाली मशीनों तथा दुकानों की वास्तविक स्थिति यही होती है। देखने वाले भले ही मालिक को सारा श्रेय देते रहें।

हलवाई की छोटी-सी दुकान का उदाहरण लीजिए। उसमें मिठाइयाँ बनाने वाले कारीगर अलग होते हैं। वे चुपचाप अपने कोने में बैठे मिठाइयाँ बनाने में लगे रहते हैं। किसी मिठाई में कुछ खराबी आ जाय तो उसे नया उपाय अपनाकर सुधारना भी वे ही जानते हैं। उनके कला-कौशल से ही दुकान प्रख्यात होती है। ग्राहक उसी के कारण टूटते हैं और मालिक इसी आधार पर मालदार बनते हैं। किन्तु दुकान पर काम करते हुए दूसरे ही दस आदमी दीख पड़ते हैं। सजाकर रखने वाले, तौलने वाले, हिसाब रखने वाले, आवश्यक वस्तुएँ बाजार से लाने वाले, सफाई तथा स्टोर वाले, यही सब दुकान पर काम करते हुए दिखाई पड़ते हैं। ग्राहक उन्हीं को पहचानते हैं। दुकान उन्हीं के बलबूते चलती दिखाई पड़ती हैं। मालिकी का परिचय बड़े वाले बोर्ड से मिलता है। किन्तु यह रहस्य बिरलों को ही मालूम है कि उस दुकान की चमकदार मिठाइयों की ख्याति किसकी विशेषता पर निर्भर है। वह तो अपना कौशल बढ़ाता और चुपचाप बैठा अपना काम करता रहता है। यही बात मशीनों की, दर्जी की, या दूसरी तरह की दुकानों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। उनका प्रत्यक्ष, प्रदर्शनात्मक, साधन परक स्वरूप बनाकर खड़ाकर देना एक बात है और विशिष्टताओं के आधार पर ख्याति और प्रामाणिकता एकत्रित करना दूसरी। सफलताओं का श्रेय किसे मिले। इसकी साधारण दृष्टि दूसरी होती है और विशेष, बारीक, गहरी दृष्टि दूसरी।

जीवन बहुमूल्य फर्म है। इसमें भी प्रत्यक्ष साधनों का ही महत्व दीखता है। मोटी परख उतना ही पकड़ पाती है। भगवान का दिया हुआ सौन्दर्य—पूर्वजों का छोड़ा हुआ धन—बैंक का सहयोग—उपयुक्त स्थान पर दुकान कुशल कर्मचारी आदि का श्रेय संयोगों को ही दिया जा सकता है। व्यक्तित्व को श्रेय तब मिलता है जब अनायास उपलब्ध हुए साधन हाथ में न होते और अपनी ही सूझ-बूझ अथवा दौड़-धूप से सारा सरंजाम जुटाया गया होता। महामानवों के छोटे काम भी उनके यश को अजर-अमर बना देते हैं। जबकि धन कुबेरों का आकाश पाताल जितना खर्च किया हुआ लगाया गया धन, लोगों की आँखों तले नहीं आता। क्योंकि मानवी विवेक बुद्धि यह पहचानती है कि साधनों का बाहुल्य और व्यक्तित्व का

CC-0: In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तर इन दोनों के बीच क्या अन्तर होता है और दोनों में से किसे कितनी श्रद्धा सराहना मिलनी चाहिए।

प्रसंग मानव जीवन के गौरव का है। जिसके पास अधिक साधन, सरंजाम, पद, सम्मान प्राप्त हैं--वह चमड़े की आँखों को ही चकाचौंध में डाल सकता है। उसे उसका सौभाग्य भी कह सकता है। पर जिनके पास सूक्ष्म बुद्धि है---विवेक दृष्टि है---वह मात्र एक ही बात देखता है कि कर्त्ता के निजी व्यक्तित्व की उत्कृष्टता का उसमें कितना समावेश हुआ है।

साधन जड़ है और कौशल चेतना। साधन जमा कर लेना और उनसे बनी गाड़ी को पटरी पर लुढ़का देना किसी के लिए भी सरल है। किन्तु अपनी आन्तरिक उत्कृष्टता की छाप किसी पर छोड़ना सर्वथा दूसरी। व्यक्तित्व के चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में जितनी उत्कृष्टता और प्रामाणिकता होती है, उसी अनुपात से अन्यान्यों की अन्तरात्मा तक गहरी छाप पड़ती है। इसी आधार पर प्राप्त की हुई सफलता अभिनन्दनीय और अनुकरणीय बनती है।

हर काम में आकर्षण और दबाव आते हैं। इनसे विचलित न होना और उत्कृष्टता का हर कीमत पर बनाये रहना, सामान्य काम नहीं है। असफलताएँ, विपरीत परिस्थितियाँ और आक्रमक प्रतिकूलताएँ विशेषतया आदर्शवादी जीवनचर्या के साथ छेड़खानी करती रहती हैं। कभी-कभी तो वे इतना भारी और विकट होती हैं कि आदमी को हताश उद्विग्न कर देती हैं। कभी ऐसी होती हैं कि दूसरे दुनियादारों की तरह ओछे हथकन्डों पर उतर कर किसी तरह काम चलाना पड़ता है। ऐसे ही अवसर परीक्षा की घड़ी होते हैं। यह आग में खेलना है। इस भट्टी में से खरा सोना ही पास होता है।

आदर्शवादी जीवन को विशेषतया ऐसी प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ता है। उनसे पार होना सिद्धान्तवादी हिम्मत और दृढ़ता का काम है। वह न हो तो घाटा सहकर––मुसीबत में पैर जमाये रहना हर किसी का काम नहीं है। यह मात्र चरित्रवानों के लिए ही सम्भव है। चरित्र का अर्थ है---महान मानवीय उत्तरदायित्वों की गरिमा को समझना और उसका हर कीमत पर निर्वाह करना।

इस आकाश में जमीन से बहुत ऊँचाई पर ग्रह, तारक टँगे हुए और चमकते हुए दिखाई पड़ते हैं। यह उनका विस्तार और प्रकाश ही है, जो चिर अतीत से लेकर अद्यावधि यथावत् यथास्थान चमकता दिखाई पड़ता है। आकाश में उड़ने वाले झंझावात उनकी स्थिरता और गरिमा को कोई आघात नहीं पहुँचा पाते। मनुष्य की गरिमा भी ऐसी ही है जो यदि आदर्शवादी कौशल के अनुरूप गढ़ी और ढली हो तो उसके पतन पराभव का कोई कारण नहीं बनता यों जब तब तो छोटी बदली भी सूर्य चन्द्र के प्रकाश को धूमिल करती देखी गई है।

जीवन मनुष्य के हाथों में सौंपा गया सबसे शानदार और महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। जिससे उसे सँभाले रहना और शानदार बनाये रहना सीख समझ लेना चाहिए कि उसी की कुशलता और विभूति सत्ता सराहनीय है। जिनके पास ऐसी कीर्ति सम्पदा है वे साधनों के अभाव में भी ऊँचे उठते और सफल होते हैं। अनेकों को प्रकाश देना और पार करना ऐसे ही प्रतिभावानों का काम है।

कमाया तो जेब काटकर, अनैतिक तरीके अपनाकर भी जा सकता है किन्तु अनीति का उपार्जन, भले ही श्रम से ही क्यों न किया गया हो, कभी भी स्वीकारा नहीं जा सकता। एक लड़का अपने पिता की आज्ञा पर चलता था। उसे सिखाया गया था कि परिश्रम की कमाई खानी चाहिए। लड़का एक दिन चोरों के गिरोह के साथ हो लिया और किसी के घर में सेंध लगाकर अपने हिस्से के १००) घर ले आया। बाप ने एक दिन में इतने रुपये कमाने की बात आश्चर्य से पूछी—लड़के ने कहा—यह परिश्रम की कमाई है और सारा विवरण बता दिया।

बाप ने कहा—ध्यान रखो कमाई मात्र परिश्रम की ही नहीं ईमानदारी की भी होनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोबल का अभिवर्धन और सदुपयोग

मनुष्य की काया मजबूती की दृष्टि से बड़े प्राणियों की तुलना में दुर्बल भी कही जा सकती है। पर उसका मनोबल ऐसा विलक्षण है कि यदि प्रयत्नपूर्वक शरीर को सुदृढ़ बनाने में लग जाय तो उससे कुछ से कुछ बन सकता है। जिनने विभिन्न प्रकार की बलिष्ठताओं सम्बन्धी कीर्तिमान स्थापित किये हैं, उनमें से अधिकांश ऐसे थे जिन्हें आरम्भिक दिनों में गया-गुजरा ही माना जाता था पर अपने मनोबल का उपयोग करके आश्चर्यजनक प्रगति कर सकने में समर्थ हुए।

हरियाना के चन्दगीराम आरम्भिक दिनों में क्षय से बुरी तरह ग्रसित थे। योरोप के सैण्डो जुकाम से बुरी तरह पीड़ित रहते थे और शरीर हड्डियों का ढाँचा मात्र था पर जब उन्होंने अपने शरीर को सम्भालने का निश्चय किया और सुधार के नियमों को दृढ़तापूर्वक कार्यान्वित करने लगे तो संसार के माने हुए पहलवानों में उनकी गणना होने लगी और स्थिति में काया-कल्प जैसा परिवर्त्तन हो गया।

कालिदास और वरदराज युवावस्था तक मूढ़मति समझे जाते थे विश्व विख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टीन तक की बुद्धि आरम्भिक दिनों में बहुत मोटी थी किन्तु इन लोगों ने जब अपने बुद्धि पक्ष में तीक्ष्णता लाने का निश्चय किया तो उनकी विद्वता प्रथम श्रेणी के मनीषियों में गिनी जाने लगी। ओलम्पिक खेलों और सरकसों में अद्भुत काम करने वाले—कीर्तिमान स्थापित करने वाले आरम्भ से ही वैसी स्थिति में नहीं थे। उनने अपने को किसी विशेष ढाँचे में ढालने का सच्चे मन से प्रयत्न किया और उस स्थिति तक जा पहुँचे जिसे देखकर साथियों को उनकी प्रगति के पीछे कोई जादू चमत्कार दीखने लगा।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन, दयनीय दरिद्रता वाले परिवार में उत्पन्न हुए। उपयुक्त वातावरण और साधन न होते हुए भी ऊँचे दर्जे के वकील बनें राजनीति में प्रवेश किया तो चुनावों में १३ बार हारे। इतने पर भी उनने अपना मन छोटा न होने दिया। मनोबल स्थिर रखा और प्रयत्नों में ढील नहीं की। अन्ततः अमेरिका के अद्वितीय प्रतिभावान् राष्ट्रपति बन सके। इन अमेरिकी राष्ट्रपतियों में जार्ज वाशिंगटन और गिरफीटा जैसों को पैतृक सुविधा साधन नहीं मिले। वरन् अभावों और प्रतिकूलताओं से जूझते हुए—अपना रास्ता आप बनाते हुए आगे बढ़ सके।

इतिहास के पृष्ठ पलटे जाँय तो सुविधा साधनों के आधार पर व्यक्तित्व का विकास करने वाले लोग बहुत ही कम मिलेंगे। वे सुविधाओं की बहुलता का विलासी उपयोग करने में ही व्यक्तित्व की दृष्टि से हेय और हीन बनते गये हैं। प्रगतिशीलों की जीवन गाथा बताती है कि मनोबल और साहस ही छोटी परिस्थिति वालों को प्रगति के उच्च शिखर तक पहुँचाने में समर्थ हुए हैं। जिनने अपने ऊपर नियमित व्यवस्था, दृढ़ता और साहसिकता का पल्ला पकड़ा उनके प्रगति पथ को कोई भी अवरुद्ध न कर सका।

दृष्टि पसार कर देखा जाय तो गये गुजरे स्तर का जीवनयापन करने वालों में से अधिकांश ऐसे रहे हैं, जिनने अपने व्यक्तित्व को उठाने वाले गुण कर्म, स्वभाव को प्रगतिशील बनाने में ध्यान नहीं दिया। अपने को हीन मानते रहे और साहस भरे नये कदम उठाने से कतराते रहे। दूसरों का मुँह ताकते रहे और यह आशा लगाये बैठे रहे कि अन्य लोग कृपा कर उनकी सहायता करेंगे और अपने कन्धे पर रखकर ऊँचा उठावेंगे। अन्ततः उनकी यह आशा निराशा में ही परिणत होती रही।

कितने ही व्यक्ति देवताओं की मनुहार करके अपने ऊपर सुयोग बरसाने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। अवगति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दोष ग्रह नक्षत्रों या भाग्य को देते रहते हैं। पर इससे बनता क्या है। मात्र आत्म-प्रवंचना करके किसी प्रकार उठती उमंगों का समाधान कर चुप बैठते और दिन काटते हुए जिन्दगी बिता देते हैं।

आत्म-हीनता मनुष्य का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। उसके रहते भविष्य अन्धकारमय ही दीखता रहता है और आशा का प्रकाश किसी कोने से उठता नहीं दीखता। ऐसे लोग या तो दीन हीन, शोषित प्रताड़ित परिस्थितियों के साथ समझौता करके मौत के दिन पूरे करते हैं या विवशता में कोई चारा न देखकर पलायनवादियों की तरह मोर्चा छोड़कर भाग खड़े होते हैं और साधु बाबा जैसा कोई विचित्र वेश बनाते हैं अथवा आत्म-हत्या कर बैठने जैसे कोई अविवेक पूर्ण कदम उठाते हैं।

धन को बड़ी वस्तु माना जाता है। कई शरीर सौष्ठव और शिक्षा के प्रमाण पत्रों को महत्व देते हैं। किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि मनोबल के अभाव में अन्य सभी उपलब्धियाँ धूल के बराबर हैं। उनके सहारे मनुष्य बहुत थोड़ी सुविधाएँ अर्जित कर सकता है। किन्तु मनोबल के प्रखर होने पर उसका हर कदम प्रगति की दिशा में उठता है।

यह मनोबल किसी के द्वारा अनुदान में नहीं मिलता। अपनी व्यक्तिगत सूझ-बूझ के सहारे ही उसे बढ़ाया जाता है। मनोबल का प्रथम प्रयोग और अभ्यास अपने दुर्गुणों से जूझने और सद्गुणों को बढ़ाने के माध्यम से किया जाता है। लोग यह भूल जाते हैं कि छोटी-छोटी दुर्बलताएँ मनुष्य को उसी प्रकार छूँछ बना देती हैं जैसी कि फूटे घड़े में से बूँद-बूँद रिसते रहने पर उसे खाली कर देता है और इसके विपरीत बड़ा कण जमा करने से मन भर का बड़ा पात्र भर जाता है।

दुर्गुणों में चोरी बेईमानी जैसे दोषों की प्रमुखतया निन्दा की जाती है। किन्तु सच पूछा जाय तो आलस्य और प्रमाद सबसे बड़े दुर्गुण हैं। अस्त-व्यस्तता और अव्यवस्था के रहते कोई व्यक्ति न तो प्रतिभावान बन सकता है और न अन्यान्यों पर अपनी छाप छोड़ सकता है। भले ही वह कितना ही योग्य क्यों न हो। वह जिस काम में भी हाथ डालेगा उसमें खामियाँ ही खामियाँ भरी दृष्टिगोचर होंगी। ऐसे लोगों को कोई दायित्वपूर्ण काम सौंपने में भी लोग कतराते हैं और बेईमान न होने पर भी अव्यवस्था के कारण उसे गये-गुजरा मानते हैं। ऐसे लोग एक प्रकार से अपनी प्रतिष्ठा ही गँवा बैठते हैं। उन्नति के अवसर प्राप्त करना तो दूर की बात रही। जो अपनी खामियों पर तीखी दृष्टि नहीं रखता और उन्हें सुधारने का प्रयास नहीं करता समझना चाहिए कि उसका विधाता सदा बायाँ प्रतिकूल ही रहेगा।

मनोबल की अभिवृद्धि का महत्व यदि समझ लिया गया तो समझना चाहिए कि आत्म-सन्तोष और लोक-सम्मान का सुनिश्चित मार्ग मिल गया। मनोबल बढ़ाने के लिए सर्वप्रथम इसी अखाड़े में उतरना पड़ता है जिसमें निजी व्यक्तित्व को निखारना प्रमुख है।

धौम्य ऋषि अपनी शिष्य मण्डली समेत कुरुक्षेत्र मार्ग से गुजर रहे थे तो रास्ते में गज घंट के नीचे अण्डे से निकला हुआ बच्चा दीख पड़ा। सभी भगवान की लीला को सराहने लगे।

धौम्य ने कहा—भगवान का काम पूरा हो चुका। अब मनुष्य का काम शुरू होता है। इस बच्चे को उठाओ और ऐसे सुरक्षित स्थान पर पहुँचाओ जहाँ वह आहार पा सके और अपने बलबूते उड़ने में समर्थ हो सके।

विज्ञजनों का यह कथन शत-प्रतिशत सही है कि ईश्वर केवल उनकी सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं। जो अपने प्रति उपेक्षा बरतते हैं और हीन भावनाओं से ग्रसित रहते हैं, उनका साथ तो भाग्य भी छोड़ देता है। परखने वालों को दोष देना व्यर्थ है। यदि अपना दाम खोटा होगा तो उसे हर जगह तिरस्कृत होना पड़ेगा। कोई मूर्ख या ब्रह्मज्ञानी ही उन्हें अपना सकता है।

बाहरी प्रतिकूलताओं पर विजय प्राप्त करना कठिन नहीं है। उनकी उपेक्षा की जा सकती है। असहयोग का रुख अपनाया जा सकता है। विरोध सफल होता न दीखे तो अपने को उस महौल से हटाकर दूसरा स्वतन्त्र रास्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनाया जा सकता है। आवश्यक नहीं कि जिन व्यक्तियों या परिस्थितियों के साथ तालमेल नहीं बैठता उनके साथ बँधा ही रहा जाय। जो ढर्रा अनुकूल नहीं पड़ता उससे बदलने में आवश्यक संकोच बरतने के लिए अपने को बाधित माना जाय। यदि अपनी ओर से किन्हीं दुर्गुणों के कारण विसंगति नहीं बैठ रही है तो आत्म समीक्षा के उपरान्त उन परिस्थितियों से अपने को अलग कर लेना चाहिए जो अपने को रास नहीं आती।

अपनी प्रतिभा, सूझ-बूझ और तत्परता ऐसी होनी चाहिए जो सम्बन्धित व्यक्तियों को नरम करने और मोड़ने में सफल हो सके। पर यदि प्रयासों का उपयुक्त परिणाम नहीं निकलता और निरन्तर कुढ़ते या असन्तुष्ट रहने की अपेक्षा यही अच्छा है कि उस घेरे से अपने को बाहर कर लिया जाय और ऐसा रास्ता अपनाया जाय जो बार-बार न भी बदलना पड़े। हर परिवर्तन से पूर्व उसके पक्ष विपक्ष में चिन्ता, अधिक से अधिक गहरा चिन्तन हो सकता हो उसे कर लेने के उपरान्त ही नया कदम उठाना चाहिए और उस नये प्रयोग में इतनी सूझ-बूझ और प्रामाणिकता का परिचय देना चाहिए कि बदलने के कारण जो चर्चा का माहौल बना है उस कालिख पर सफेदी पुत सके।

स्मरण रखने योग्य तथ्य यह है कि मनःस्थिति के अनुरूप परिस्थितियाँ बनती हैं। परिस्थितियों की प्रतीक्षा में बैठे रहने की अपेक्षा यह कहीं सरल और कहीं सफल होता है कि अपने को अधिकाधिक सद्गुणी बनाया जाय। व्यक्तित्व को उस स्तर तक पहुँचाया जाय जिस तक पहुँचने पर किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ने की सम्भावना सुनिश्चित होती है।

व्यक्तित्व का परिष्कार—भाग्योदय का सबसे सही तरीका है। जो प्रामाणिक हैं, वे न तो दुत्कारे जाते हैं। न असफल रहते और न उपेक्षा के भाजन बनते हैं। हीरा अन्ततः उनके हाथों ही जा पहुँचता है जो उसका मूल्य समझते और उपयोग जानते हैं। यदि अपना मनोबल आत्म-निरीक्षण, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास पर केन्द्रित किया जा सके तो प्रतीत होगा कि आन्तरिक काया-कल्प हो गया। दुष्प्रवृत्तियों का परित्याग करते-करते उस स्थान में खालीपन नहीं रहता वहाँ सत्प्रवृत्तियाँ अपने पैर जमाती हैं और अपने को प्रामाणिक एवं जिम्मेदार घोषित करती हैं। ऐसे व्यक्तियों की हर जगह माँग है। उन्हें कोई छोड़ना नहीं चाहता वरन् प्यासे की तरह अपनी सहायता के लिए ढूँढ़ता रहता है।

जो सतर्कता, सूक्ष्म बुद्धि सूझ-बूझ अपने को परिष्कृत करने में लगाई गई है, उसी का प्रयोग जब बाहरी कामों में होता है तो वे इतने सुन्दर बन पड़ते हैं कि कर्त्ता की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगादें। ऐसे लोगों का ईर्षालु भी कुछ बिगाड़ नहीं सकते। कारण कि वे प्रतिद्वन्द्विता में ठहरते नहीं। थोथे गाल बजाते हैं। उनकी निन्दा तथा अडंगेबाजी कसौटी पर खोटी सिद्ध होने के कारण उतना अहित नहीं कर सकती—वैसा वातावरण नहीं बना सकती जो अपनी गरिमा को चोट पहुँचा सके।

> बूँदें समुद्र में गिरीं और अपनी सत्ता लुप्त होते देखकर खेद मनाने लगीं। समुद्र बोला—महानता के प्रति समर्पण करके कोई घाटे में नहीं रहा—बच्ची!
>
> समुद्र का पानी उड़कर बादल बन गया। स्वाति नक्षत्र में बरसा तो बूँद सीपी में पड़कर मोती बन गई।
>
> बूँद को पुरानी खिन्नता और समुद्र की सान्त्वना स्मरण आई। उसने अनुभव किया कि महानता के प्रति समर्पण करना घाटे का सौदा नहीं है।

हर क्षेत्र के प्रगतिशीलों की जीवन गाथाएँ पढ़ने पर प्रतीत होता है कि उनने अपने क्रिया-कृत्य के साथ समग्र तत्परता और तन्मयता बरती है। उद्देश्य ऊँचे रखे हैं और अपनी गतिविधियों को आदर्शों में च्युत नहीं होने दिया है। ओछे मनुष्य धूर्तता अपनाकर जो तात्कालिक सफलता प्राप्त कर लेते हैं वह उनकी गरिमा को गिराती जन सहयोग से वंचित करती और भविष्य को अन्धकार मय बनाती है। ऐसे अनीतिपूर्ण लाभ, वस्तुस्थिति को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट किये बिना नहीं रहते और अन्ततः घाटे में ही रहते हैं।

प्रगति की अभिलाषा उचित है। हर कोई अपनी लौकिक एवं पारलौकिक सुख-शान्ति चाहता है और उत्कर्ष की महत्वाकांक्षाएँ संजोये रहता है। यह न तो अनुचित है, न कठिन। मनुष्य अपने आपको सज्जन, सुव्यवस्थित और प्रामाणिक बना ले तो समझना चाहिए कि उसने आगे बढ़ने का सही रास्ता पा लिया और यदि उसने अपनी गतिविधियों को शालीनता और सूझ-बूझ से भरी-पूरी रखा तो अपने प्रयास ही उसे उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचा देंगे। ऐसे लोगों को सुयोग्य जनों का भावभरा सहयोग भी मिलता है कि स्थिति ऐसी हस्तगत होती है जिसे सराहनीय ही नहीं अनुकरणीय भी कहा जा सके।

साहस दिखाने और श्रम करने की विवशता हर स्तर के व्यक्ति के सामने रहती है। पराक्रम किये बिना किसी का गुजारा नहीं। समझ से काम लिये बिना तो पशु पक्षियों का भी काम नहीं चलता, फिर मनुष्य जीवन में इनकी अनिवार्यता तो माननी ही पड़ेगी।

बात इतनी भर है कि अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में उत्कृष्टता आदर्शवादिता का दूरदर्शी सूझ-बूझ का समुचित मात्रा में समावेश किये रखा जाय। अपने साथ कड़ाई करने और दूसरों के साथ नरमी बरतने की नीति अपनाई जाय। महापुरुष की जीवन गाथाओं से उनके कर्तृत्व और व्यक्तित्व के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई महानता को गम्भीरता पूर्वक समझने का प्रयत्न किया जाय। जो व्यक्तित्व की दृष्टि से खरा है वह बहुमूल्य सोने या हीरे की तरह है। उसकी गरिमा और कीर्ति अक्षुण्ण है। इतनी अक्षुण्ण कि मरने के उपरान्त भी अपनी गाथा से अनेकों का उपयोगी मार्गदर्शन करती रहती है।

****

दिव्य चेतना के प्रवाह से जन चेतना में अनोखे उभार आते हैं। ऐसे प्रयोग सदैव होते रहे हैं।

रामावतार के चेतना प्रवाह से अनपेक्षित उभार आये। अपराधी प्रवृत्ति के भील आदि परम सज्जन बनकर सहयोग करने लगे। चंचल अप्रामाणिक वानर परम धैर्य तथा निष्ठा के धनी बन गये।

कृष्ण के प्रभाव से भी ऐसा ही हुआ। कंस का भय छोड़कर मधु ग्वाले गोपों का साथ देने लगे। सामान्य ग्वालों में कंस जैसे आतंकवादी का प्रतिरोध करने की हिम्मत आ गयी। कौरवों के अधिकार और प्रलोभन के बावजूद पाण्डवों को कुचक्र से बचाने वाले उनका साथ देने वाले साहसी बराबर मिलते रहे।

महर्षि रमण—योगी अरविन्द जैसों के प्रयोग से राष्ट्रीय चेतना की अनोखी लहर उठी। गांधी जी को सत्याग्रही, सुभाष को "आजाद हिन्द फौज के सैनिक मिलते चले गये। जिनके राज्य में सूरज नहीं डूबता था उनके आतंक और प्रलोभन सब बेकार सिद्ध हुए। क्रान्तिकारी लोकसेवी हर क्षेत्र में पनपते रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य की विलक्षण अतीन्द्रिय क्षमताएँ

मनुष्यों में अतीन्द्रिय क्षमताओं का होना पौराणिक कथाओं में भी प्रकट है। मध्य काल में उनके ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं और आज भी वे विशेषताएँ कितनों में ही देखी जाती हैं। कभी इन बातों को कपोल कल्पना कहा जाता था, पर अब वैसी स्थिति नहीं रही। अगणित प्रत्यक्ष प्रमाणों की जाँच पड़ताल करने के उपरान्त प्रत्यक्षवादी जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं—उसके अनुसार मनुष्य में ऐसी सामर्थ्यों का होना शक्य माना गया है जो इन्द्रिय शक्ति से परे की हैं।

ऐसी सामर्थ्यों में दूर दर्शन, दूर श्रवण, भविष्य कथन, विचार सम्प्रेषण, शाप, वरदान, स्वप्न संकेत प्राण प्रत्यावर्तन, दिव्यलोक के साथ आदान-प्रदान जैसी कितनी ही अब तक प्रमाणित हो चुकी हैं और कितनी ही ऐसी हैं जो कल्पना या जादूगरी की अवमानना चिरकाल तक सहन करने के उपरान्त अब यथार्थता की तरह प्रामाणिकता और प्रतिष्ठा के क्षेत्र में प्रवेश करने जा रही हैं।

इन क्षमताओं के सन्दर्भ में अनेकानेक पुरातन प्रमाण उपलब्ध हैं जिनसे प्रतीत होता है कि उन दिनों में मात्र इन्द्रिय शक्ति ही सब कुछ नहीं थी, वरन् इन्द्रियातीत क्षमताएँ महत्वपूर्ण अवसरों पर प्रयुक्त होते रहने का प्रचलन था उनके सहारे मनुष्य अब से कहीं अधिक सशक्त था और अधिक सुविधाएँ सम्पादित करता था।

संजय की दूर-दर्शन और दूर श्रवण की क्षमता का उल्लेख मिलता था। वे महाभारत मोर्चे पर चल रहे दृश्यों और सम्भावनों का यथावत् विवरण जन्मान्ध धृतराष्ट्र को घर बैठे सुनाते रहते थे। लोक-लोकान्तरों में परिभ्रमण करते रहने की शक्ति देवर्षि नारद में थी उनका विष्णुलोक के साथ आवागमन और आदान-प्रदान सदा बना रहता था। उन्हें पूर्वाभास भी होता था और जानकारियाँ सम्बन्धित व्यक्तियों तक सहज सेवा सहायता के भाव से पहुँचाते रहते थे। पार्वती को शिव विवाह की सम्भावना, सावित्री को एक वर्ष बाद पति वियोग, जैसी पूर्व सूचनाएँ उनके द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियों तक पहुँचाये जाने के अनेकानेक वर्णनों का विभिन्न पुराणों में उल्लेख है।

गान्धारी की आँखों में दिव्य तेज था। वे आमतौर से पट्टी बाँध कर रहती थीं। आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने एक बार पट्टी खोलकर दुर्योधन को देखा और उसका शरीर लोह जैसा सुदृढ़ बना दिया। वनवास में अकेली पाकर एक व्याध ने दमयन्ती पर कुदृष्टि डाली। दमयन्ती ने अग्नि दृष्टि से उसे देखा फलतः वह व्याध वहीं जलकर भस्म हो गया। दुर्वासा के शापों से अम्बरीष जैसे कितनों को ही अपार कष्ट सहना पड़ा। शृंगी ऋषि के शाप से परीक्षित की सर्प दंश से मृत्यु हुई थी। उन्हीं के वरदान मन्त्रोच्चारणों से सम्पन्न हुए यज्ञ द्वारा दशरथ को चार अवतारी पुत्रों का प्राप्त होना सर्वविदित है। कपिल मुनि के शाप से राजा सगर के साठ हजार पुत्रों का भस्म होना प्रख्यात है। कालिदास के मेघदूत का नायक यक्ष शाप पीड़ित होकर ही अपनी प्रेयसी से दूर पड़ा था और मेघों को सन्देश वाहन बनाकर अपनी व्यथा प्रेयसी तक पहुँचाने का उपक्रम कर रहा था। ऋषि से व्यंग उपहास करने वाले यादवों का पूरा समुदाय शाप का भाजन बना और परस्पर लड़भिड़कर समाप्त हो गया। परशुराम से छल पूर्वक बाण विद्या सीखने वाले कर्ण गुरु शाप से उस विद्या का प्रयोग कर सकने की क्षमता गवाँ बैठा और मात्र सारथी रहकर निर्वाह करता रहा। देवयानी का विवाह प्रस्ताव स्वीकार न करने पर कच को भी सीखी हुई संजीवनी विद्या से हाथ धोना पड़ा।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने संस्मरणों में एक ऐसे महात्मा का वर्णन किया है जो बिना अन्न जल ग्रहण किये मात्र वायु भक्षण करके लम्बे समय तक जिये। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौहारी बाबा के नाम से प्रख्यात थे। इसकी यथार्थता जाँचने के लिए विदेशों से भी पर्यवेक्षकों के कई जत्थे आये और वे सभी सन्तुष्ट होकर लौटे। पंजाब के राजा रणजीत सिंह ने अंग्रेज गवर्नर को हरिदास नामक साधु के छै महीने लम्बी भूमिगत समाधि का प्रमाण परिचय दिया था। वे साधु पूरे छै महीने गड्ढे में बन्द रहे। गड्ढे को बन्द करके ऊपर से फसल बो दी गई थी ताकि उसमें किसी चालाकी हेरा-फेरी की गुंजायश न रहे। छै महीने बाद समाधि खोदी गई तो वे साधु जीवित निकले और कुछ ही समय में पूर्ववत् सामान्य हो गये।

इस सम्बन्ध में---"हिस्ट्री ऑफ दि सिख्स" नामक पुस्तक में (लेखक : डॉ० मैकग्रेगर) महाराजा रणजीत सिंह के गुरु स्वामी हरिदास द्वारा सन् १८३७-३८ में किए गये भूमिगत समाधि के प्रदर्शन का विस्तृत विवरण मिलता है। इसका निरीक्षण पंजाब में नियुक्त ब्रिटिश राज्य के तात्कालीन अन्य उच्चाधिकारियों ने भी किया था। स्वामी हरिदास को एक मजबूत सन्दूक में सीलबन्द करके जमीन में खोदे गये गहरे गड्ढे में उतार दिया गया फिर ऊपर से मिट्टी डालकर प्लास्टर से बन्द कर दिया गया। ४० दिन पश्चात् गड्ढा खोदकर सन्दूक बाहर निकालने पर स्वामीजी का समूचा शरीर निश्चेष्ट पाया। हृदय और नाड़ी में भी स्पन्दन नहीं था। लेकिन सिर में शिखा वाला स्थान इतना तप्त था कि छूते ही हाथ जल जाता था। कान-नाक से मोम निकाल कर पूर्व निर्दिष्ट विधि के अनुसार शरीर पर शीतल जल का छिड़काव करते ही उनका शरीर चैतन्य हो उठा तथा सभी उपस्थित लोगों व विशिष्ट अतिथियों से उसी तरह बातचीत करने लगे जैसे समाधि में जाने से पूर्व कर रहे थे।

सन्त हरिदास की दूसरी समाधि की अवधि दस महीने थी। यह प्रदर्शन उन्होंने अदीना नगर में किया था। उस प्रसंग का संस्मरण कैप्टेन ऑसबर्न ने अपनी पुस्तक 'रणजीत सिंह' में दिया है। इस बार सुरक्षा, निगरानी और पहरेदारी सम्बन्धी काफी एहतियात बरते गये। जिस जमीन के भीतर स्वामीजी समाधिस्थ थे उस भूमि पर जौ की फसल बो दी गई ताकि भीतर से निकल भागने की धोखाधड़ी पकड़ी जा सके। लेकिन पूरी सतर्कता और कड़ाई के बावजूद ऐसी कोई घटना घटी नहीं।

अतीन्द्रिय क्षमताओं के अन्तर्गत ही पुराणों में ऐसी अनेकानेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है, जिसमें शाप के फलीभूत होने और उससे अप्रत्याशित कष्ट-कठिनाईयों के उत्पन्न होने का उल्लेख है—कपिल मुनि के शाप से सगर पुत्रों का भस्मीभूत होना, शृंगी ऋषि के शाप से राजा परीक्षित को साँप द्वारा काटा जाना, गान्धारी के शाप से छप्पन कोटि यदुवंशियों का लड़ मरना, नहुष का सर्प बनना, दमयन्ती के शाप से व्याध का विनष्ट होना आदि कुछेक उदाहरण हैं।

गुरु गोरखनाथ से एक कापालिक बहुत चिढ़ा हुआ था। एक दिन आमना-सामना हो गया। कापालिक के हाथ में कुल्हाड़ी थी, उसे ही लेकर वह तेजी से गोरखनाथ को मारने दौड़ा। पर अभी कुल दस कदम ही चला था कि वह जैसे-का-तैसा खड़ा रह गया। कुल्हाड़ी वाला हाथ ऊपर और दूसरा हाथ पेट में लगाकर हाय-हाय चिल्लाने लगा। वह इस स्थिति में भी नहीं था कि इधर-उधर हिलडुल भी सके।

केप कालावी के गवर्नर पीटर जिवर्ट नार्टन की मृत्यु भी एक सैनिक के शाप के परिणाम स्वरूप हुई मानी जाती है। कहा जाता है कि एक बार जिवर्ट नार्टन ने नौ निर्दोष सैनिकों को फाँसी की सजा भागने के अभियोग में दी थी, जिसके फलस्वरूप आठ तो बिना कुछ बोले फाँसी पर झूल गये किन्तु अन्तिम व्यक्ति ने बड़े रोष के साथ यह कहते हुए कि "नार्टन तुम कुछ ही समय में ईश्वर के पास जवाब देने के लिए घसीट कर ले चलूँगा।" फाँसी पर झूल गया। देखा गया कि कुछ ही क्षणों के उपरान्त वह गवर्नर दफ्तर में कुर्सी पर बैठे-बैठे मर गया।

वस्तुतः मनुष्य जितना विलक्षण है, क्षमता सम्पन्न है, उतना उसे अपने आपके विषय में आभास नहीं है। यदि इस सामर्थ्य को उभारा जा सके तो हर व्यक्ति अपनी अद्भुत अतीन्द्रिय सामर्थ्य का प्रयोग सत्प्रयोजनों के निमित्त कर सकता है। विडम्बना तो यही है कि बहुसंख्य व्यक्ति अपनी इस अविज्ञात विभूति से अनजान बने रह जीवन व्यर्थ गवाँ देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सम्पदा की फुलझड़ी न जलायें

मानवी जीव कोशों की सुदृढ़ता को परखते हुए कोलम्बिया विश्वविद्यालय के डा० एन० एस० सिवसन ने एक बार कहा कि यदि स्नायु उत्तेजना और रासायनिक विकृतियों से शरीर की रक्षा की जा सके तो मनुष्य की संरचना उसे ८०० वर्ष तक जीवित रहने का अवसर दे सकती है।

कार्नेट विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग ने अपने परीक्षणों से यह निष्कर्ष निकाला है कि शारीरिक श्रम की तुलना में नीरस मानसिक श्रम से कहीं अधिक थकान आती है।

खाद्य-पदार्थों में पाई जाने वाली ऊष्मा जिसे 'कैलोरी' कहते हैं यदि कम मात्रा में मिले तो थकान आवेगी। यह मान्यता भी अभी पूर्णतया निरस्त नहीं हुई है। पिछली शताब्दी के यह निष्कर्ष अभी भी दुहराये जाते हैं कि भोजन में ऊष्मा की मात्रा समुचित हो तो थकान से बचा जा सकता है और बुढ़ापा वस्तुतः थकान ही है।

यह माना जाता है कि १५० पौण्ड वजन का कोई व्यक्ति सोते समय ६५ कैलोरी प्रति घण्डा खर्च करता है। लेटे रहने में ७७, पढ़ने में १००, टाइप करने जैसे कामों में १४५, चलने-फिरने में २०० और कड़ा परिश्रम करने में ३०० कैलोरी प्रति घण्टा के हिसाब से खर्च होती है।

डा० वाल्डविन के अनुसार मनुष्य शरीर का तापमान तो ९८.६ डिग्री रहता है, पर उसे अनुकूल ९८ डिग्री तापमान का वातावरण ही पड़ता है। इससे अधिक ठण्डक या गर्मी होने पर उसकी कैलोरी शक्ति अधिक मात्रा में खर्च होने लगती है और थकान जल्दी चढ़ती है। डा० डोनाल्ड ए० लेयर्ड के अनुसार कोलाहल भरे वातावरण में रहने वाले मनुष्य को २० प्रतिशत थकान उस शोरगुल के कारण ही चढ़ती रहती है। यही जल्दी बुढ़ापा लाती है।

मेयोक्लीनिक के डा० केन्ड्रिल ने कहा है "चिड़चिड़ापन मनुष्य की थकान का सर्वविदित चिन्ह है।" लेही क्लीनिक के डा० एलेक का मत भी यही है—वे कहते हैं चिड़चिड़ा मनुष्य दया का पात्र है क्योंकि वस्तुतः वह गहरी थकान का मरीज होता है। उस पर क्रोध करने या बदला लेने से तो इस मरीज का और भी अहित होगा। थकान बढ़ेगी और बुढ़ापे की रफ्तार तेज होगी। इसे रोकने व आयुष्य को बढ़ाने के लिए व्यक्ति को तनाव रहित बनना होगा।

केवल दीर्घ जीवन ही सम्भव नहीं वरन् यह भी सम्भव है कि ढलती आयु में भी सशक्त यौवन को स्थिर रखा जा सके। शरीर में आयु की वृद्धि के साथ कुछ तो परिवर्तन होते हैं पर यह मानवी प्रयत्नों पर निर्भर है कि वह शिथिलता से अपने को बचाये रहें और वृद्ध होते हुए भी अशक्त न बनें।

बारजन विवारेस निवासी पियर डिफोरवेल १२९ वर्ष का होकर सन् १८०९ तक जीवित रहा। मरते समय उसका स्वास्थ्य ठीक था और उसकी सभी इन्द्रियाँ अपना काम ठीक तरह करती थीं। उसने तीन विवाह किये और कितने ही बच्चे पैदा हुए उनमें से तीन बच्चे ऐसे भी थे जिन्हें तीन पृथक शताब्दियों में पैदा हुआ कहा जाता है। एक बच्चा १६९९ में दूसरा १७३८ में तीसरा १८०१ में जन्मा। यों यह अन्तर लगभग सौ वर्ष ही होता है, पर शताब्दियों के हिसाब से इसे तीन शताब्दियों में भी गिना जा सकता है और साहित्यिक शब्दों में यों भी कहा जा सकता है कि उसका एक बच्चा १६ वीं शताब्दी में, दूसरा १७ वीं में और तीसरा अठारहवीं में जन्मा। उसकी तीसरी पत्नी १९ वर्ष की थी जबकि डिफोरवेल १२० वर्ष का। यह तीसरा दाम्पत्य जीवन भी उसने प्रसन्नता पूर्वक बिताया। पत्नी को इसमें कोई कमी दिखाई न दी। यह विवाह नौ वर्ष तक सुख पूर्वक चला और उसमें कई बच्चे हुए।

उपरोक्त तीन शताब्दियों में जन्मे तीन बच्चों की जन्म तिथियाँ उनके प्रमाण पत्रों समेत सन् १८७७ के 'मेगासिन पिटारेस्क' में छपी हैं। जो घटनाक्रम की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थता प्रकट करते हुए यह भी सिद्ध करती हैं कि दीर्घ जीवन ही नहीं यौवन को भी अक्षुण्ण बनाये रहना सम्भव है—असम्भव नहीं।

जोरा आगा नामक टर्की के एक दीर्घजीवी वृद्ध पुरुष की आयु १९२७ में १५३ वर्ष की थी। उस समय उसने अपना ग्यारहवाँ विवाह किया था। उससे पूर्व १० स्त्रियों और २७ बच्चों को वह अपने हाथों कब्र में सुला चुका था। उसके जीवित बच्चे ७० से ऊपर थे।

बीमारियों से मनुष्य का घिरा रहना भी उसका प्रकृति को चुनौती देने का ही दण्ड दुष्परिणाम है। उपभोग की मर्यादाओं का उल्लंघन शरीर संरचना के अनुरूप आचार संहिता न अपनाने से स्वास्थ्य संकट उत्पन्न होता है और उसकी दुःखद प्रतिक्रिया आये दिन बीमार रहने के रूप में भुगतनी पड़ती है। जितना सरल, सौम्य, हलका और आवेश उत्तेजनाओं से रहित जीवन जिया जायगा उतना ही मृत्यु का भय और कष्ट हलका होता जायगा।

हमारे शरीर में प्रतिदिन अगणित कोशिकायें जन्मती और मरती हैं। किन्तु मस्तिष्क की तान्त्रिक कोशिकाओं के बारे में यह बात नहीं है। उनका पुनर्निर्माण नहीं होता। मस्तिष्क में कोशिकायें प्रति घन सेन्टी मी० एक करोड़ के अनुपात में पाई जाती हैं। वे प्रति घण्टे एक हजार की औसत से मरती रहती हैं। इस प्रकार यह पूँजी क्रमशः घटती रहती है। बहुधा जीवन काल में ही १० प्रतिशत मस्तिष्क घट जाता है। यह पूँजी समाप्त होते चलने से शरीर पर मनःचेतना का नियन्त्रण घटता चलता है और वह भी बुढ़ापे का निमित्त बन जाती है।

दीर्घ जीवन के दो प्रमुख आधार यह माने जाते हैं कि श्वास धीमे लिये जाँय तथा शीत वातावरण में रहा जाय। योगी लोगों की प्राणायाम क्रिया तथा हिम-कन्दराओं में निवास को प्रमुखता देने का एक कारण यह भी है कि वे शरीर को अमर या दीर्घजीवी बनाकर अपना और पराया अधिक श्रेय साधन कर सकें।

रीछ, सर्प, कछुए, मेंढक शीत ऋतु आने पर अपने को सिकोड़ कर बैठ जाते हैं। ताप की तीव्रता से जो शक्ति का क्षरण होता है वह उन दिनों न होने से वे जीव निराहार पड़े रहते हैं। गति शरीर संचालन भर के लिये आवश्यक है। यदि उसे अव्यवस्थित ढंग से खर्च किया जाय तो साँसें तेज चलने लगेंगी और उससे दीर्घ जीवन में कमी आ जायगी।

सृष्टि विज्ञान पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि जिन जीवों का श्वास संचालन मन्द गति से होता है वे अधिक दिनों जीवित रहते हैं, इसके विपरीत जिनकी साँसें तेजी से चलती हैं वे कम समय जी पाते हैं। इस सम्बन्ध में प्रति मिनट साँस लेने और आयुष्य प्राप्त करने सम्बन्धी अनुमानित विवरण इस प्रकार है—कछुआ साँस ५ प्रतिमिनट आयु १५० वर्ष। सर्प साँस ८ आयु १२० वर्ष। हाथी साँस २ आयु १०० वर्ष। मनुष्य साँस १२ आयु १०० वर्ष। घोड़ा साँस १८ आयु ५० वर्ष। बिल्ली साँस २५ आयु १२ वर्ष। बकरी साँस २५ आयु १२ वर्ष। कबूतर साँस ३६ आयु ८ वर्ष। खरगोश साँस ४० आयु ७ वर्ष।

नृतत्व विज्ञान वेत्ता बताते हैं कि प्राचीनकाल में मनुष्यों की श्वास-प्रश्वास संख्या ११-१२ थी। पर अब मानसिक उत्तेजन एवं शारीरिक उष्णता में—आहार-विहार अव्यवस्था एवं बौद्धिक उद्वेगों से परिस्थिति बदल गई और आदमी अधिक गरम रहने लगा है। गर्मागर्मी से भरे हुए लोग जल्दी उफनते और जल्दी चलते हैं। उनका आयुष्य कम हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

स्वास्थ्य सुरक्षा की सर्वाधिक दूरदर्शी नीति यही है कि प्रकृति के अनुरूप अपना आहार-विहार, रहन-सहन बनाये रखा जाय जैसा कि सृष्टि के सभी प्राणी बनाये रखते और चैन से जीते हैं। इन्द्रियों का संयम बरता जाय, दिनचर्या ठीक रखी जाय, श्रम और आराम का सन्तुलन रहे, मस्तिष्क को उत्तेजनाओं से बचाये रखा जाय, स्वच्छता का ध्यान बना रहे तो इन मोटे नियमों का पालन भर करने से बहुत हद तक छुटकारा मिल सकता है। स्व उपार्जित बीमारियों का ही बाहुल्य रहता है—बाहर से तो बहुत कम आती हैं। मौसम का प्रभाव, वंशगत विकार, छूत, दुर्घटना आदि कारणों से भी अप्रत्याशित रोग हो सकते हैं, पर उनका अनुपात बहुत स्वल्प रहता है। दीर्घ आयु, रोग रहित जीवन जीना हो तो हमें जीवन सम्पदा की फुलझड़ी जलाने का तमाशा समय रहते बन्द कर देना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

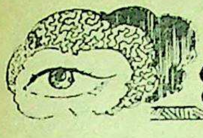

दृश्य के साथ जुड़ा हुआ अदृश्य

प्रकाश विज्ञानी अर्नेस्टले और उनके सहयोगी शिष्य डा० गैवर ने होलोग्राफ के एक नये सिद्धान्त का आविष्कार किया, जिसके आधार पर त्रिआयामित्र (थ्री-डी) स्तर का छाया चित्रण आँखों से देखा जा सकना और भूतकालीन दृश्यों को इन्हीं आँखों से इस प्रकार देखा जा सकना, सम्भव हो सका मानो वह घटनाक्रम अभी-अभी ही बिल्कुल सामने घटित हो रहा हो।

इसी प्रकार तीन दशक पूर्व रूस के इलेक्ट्रानिक विज्ञानवेत्ता ऐमयोन किर्लियान ने एक ऐसी फोटोग्राफी का आविष्कार किया था जो मनुष्य के इर्द-गिर्द होने वाली विद्युतीय हलचलों का भी छायांकन करती है। इससे प्रतीत होता है कि स्थूल शरीर के साथ-साथ सूक्ष्म शरीर की भी सत्ता विद्यमान है और वह ऐसे पदार्थों से बनी है जो इलेक्ट्रानों से बने ठोस पदार्थ की अपेक्षा भिन्न स्तर की हैं और अधिक गतिशील भी।

पिछले दिनों हुई शोधों से न्यूयार्क विश्वविद्यालय के डा० राबर्ट बेकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ब्रह्माण्ड व्यापी विद्युत चुम्बकीय शक्ति विश्व के प्रत्येक पदार्थ को जड़ चेतन को अपने साथ जकड़े हुए है। विश्व की प्रत्येक इकाई उसी समष्टि की एक घटक है। अस्तु पृथकता के बीच भी सघन एकता विद्यमान है और उस एकता के कारण ही पदार्थों और प्राणियों में दृश्य-अदृश्य आदान-प्रदान होता है। जो क्रम आये दिन अनुभव में आता रहता है वह सामान्य और जो यदा-कदा दीख पडता है वह असामान्य चमत्कार कहा जाता है। जबकि वह ऐसा है नहीं।

विज्ञानी ट्रेवर जेम्स का कहना है—"हमारी आँखें वर्णक्रम की अल्प मात्रा भर देख पाने में ही समर्थ हैं। वे वर्णक्रम के सिर्फ सात रंगों को ही पकड़ पाती हैं, किन्तु इसमें लाल से लेकर बैंगनी तक केवल सात ही रंग नहीं होते, वरन् ऐसे दस अरब रंग होते हैं, जो आँखों को दिखाई नहीं पड़ते। इनकी 'तरंग लम्बाई' हमारी आँखों की पकड़ से बाहर होती है।"

"सूक्ष्म जीवाणु एवं विषाणु हम नंगी आँखों से नहीं देख सकते, किन्तु सामान्य एवं ईलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप के सहारे उन्हें देखा जा सकता है। उसी प्रकार इन्फारेड और अल्ट्रावायलेट फोटोग्राफी की सहायता से एक ऐसे अदृश्य चेतनात्मक जगत में पहुँचा जा सकता है जो देश काल की सींमा से परे है।"

सुप्रसिद्ध विज्ञान कथा लेखक एच० जी० वेल्स ने अपनी पुस्तक 'दि इन विजिबल मैन' में उन सम्भावनाओं पर प्रकाश डाला है, जिसके आधार पर कोई दृश्य पदार्थ या प्राणी अदृश्य हो सकता है और अदृश्य वस्तुएँ दृष्टि-गोचर होने लगती हैं। इस विज्ञान को उन्होंने 'अपवर्तनांक रिफ्लेक्टिव इन्डिसेंस' नाम देकर उसके स्वरूप एवं क्षेत्र का विस्तृत वर्णन किया है। निश्चित ही एक ऐसे सूक्ष्म जगत का अस्तित्व भी है जो अपने इस ज्ञात जगत की तुलना में न केवल अधिक विस्तृत वरन् अधिक शक्तिशाली भी है। उनकी यह कल्पना उन पौराणिक प्रसंगों को दृष्टि में रखते हुए सही भी लगती है जिनमें ऋषि गणों, देवताओं के अन्तर्ध्यान होने व प्रकट होने के विवरण मिलते हैं।

एक घटना पेरिस की एक प्राचीन प्रतिमा की है। मूर्धन्य फ्रांसीसी वैज्ञानिक सेलारिया सहित अन्य वैज्ञानिकों का एक दल जब इस प्रतिमा का निरीक्षण कर रहा था, तब देखते-ही-देखते प्रतिमा अचानक गायब हो गई और उसके स्थान पर एक-दूसरी विशालकाय मूर्ति आ विराजी जो अत्यन्त डरावनी थी।

सन् १९२० में लन्दन के युवा सांसद विक्टर ग्रेसर एक दुकान से बाहर निकलते ही सहसा विलुप्त हो गये। इसी प्रकार पोलैण्ड निवासी पादरी वोनेस्की १३ जुलाई १९५० को एक मित्र के पास जाने के लिए अपने घर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकले। लगभग ८० मीटर दूर जाकर वे भी हवा में विलीन हो गये। ढूँढ़-खोज के बहुतेरे प्रयास किये गये, किन्तु सब निष्फल रहे।

एक सुप्रसिद्ध घटना अमेरिका की है—जिसमें २३ सितम्बर १९०८ को टेनेसी, अमरीका निवासी एक किसान डेविड लाँग अपने दो मित्रों के साथ शाम को हवाखोरी करने निकला और मित्रों के देखते-ही-देखते हवा में गायब हो गया। मित्रों ने उस स्थान की काफी छानबीन की, परन्तु कोई ऐसा सूत्र हाथ नहीं लगा जिससे उसके अचानक गायब होने का कारण मालूम हो सके। मित्रों में एक न्यायाधीश भी थे। उनने लाँग को खोजने के लिए भरपूर सरकारी प्रयास किए, किन्तु सफलता नहीं मिली। आखिरकार हार कर उन्होंने अपनी टिप्पणी में लिखा—"यह एक अविश्वसनीय सत्य है जिसका समाधान खोजने पर भी नहीं मिलता।"

श्री एलन और श्रीमती क्रिस्टीन १९७५ की गर्मियों में छुट्टियाँ मनाने उत्तरी ध्रुव की यात्रा पर निकले। लैपलैण्ड के एक गिरजाघर के पास से गुजरते हुए श्रीमती क्रिस्टीन श्री एलन से कुछ आगे बढ़ गईं। कुछ दूर आगे बढ़ कर उनने पीछे मुड़कर देखा तो उनके पति लापता थे। बहुत खोजबीन की गई, किन्तु उनका कोई सुराग न मिला। स्थानीय लोगों ने भी इस काम में उनकी सहायता की पर सब बेकार। यहाँ तक कि जासूसी कुत्तों का भी प्रयोग किया गया, पर कुत्ते उस स्थान पर पहुँच कर रुक जाते और भौंकने लगते। पास ही सेना का कैम्प था। उन लोगों ने भी श्रीमती क्रिस्टीन के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए उनके पति की खोज में विशेषज्ञों की मदद ली, पर सारे प्रयास विफल रहे।

वस्तुतः अदृश्य जगत अपने इसी दृश्य जगत से जुड़ा हुआ है। मृत्यु के उपरान्त अथवा किसी अदृश्य प्रक्रिया द्वारा भी मनुष्य इसी स्थिति में पहुँच जाता है जो दूसरों को न दीखे। असन्तुष्ट स्थिति में मरने वाले लोग तो आमतौर से प्रेतों के रूप में अपने अस्तित्व का परिचय देते रहते हैं।

काउण्ट इवान सेंटपार्टर्स वर्ग में अपनी पत्नी अन्ना, दो बच्चों व बूढ़े नौकर के साथ रहकर वहाँ की जागीरदारी सम्भालता था। तब रूस में साम्यवादी क्रान्ति चल रही थी। इवान और अन्ना देखने में तो बड़े भोले-भाले लगते थे, पर थे बड़े क्रूर। उनने सैकड़ों व्यक्तियों को अपने क्रूर कृत्य का शिकार बनाया। जब करेलिया के लोगों ने उनके विरुद्ध आवाज उठानी शुरू की तब वह डर कर वहाँ से भाग गये और नेवा नदी के तटीय प्रदेश में एक परित्यक्त झोंपड़ी में शरण ली। रात हुई तो पति-पत्नी अपने बच्चों के साथ लेट गये। प्रकाश के लिए कन्दीलें जला लीं, किन्तु हवा के एक झोंके के साथ ही कंदीलें बुझ गईं। दुबारा कंदीलें जलाईं तो देखा कि लोमड़ियों का एक झुण्ड उन्हें घेरे खड़ा है। वे अत्यन्त भयभीत हो गये, पर तुरन्त ही लोमड़ियाँ न जाने कहाँ लुप्त हो गईं।

इवान का बूढ़ा नौकर भोजन की तलाश में बाहर गया हुआ था। जब वह लौटा तो अपने मालिक व मालकिन को झोंपड़ी में अचेत पड़ा देखा और पास ही खड़ी थी एक भयंकर काली साया। उसने गरज कर कहा—"मल्लाह! तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं, किन्तु तुम्हारे स्वामी अब बच नहीं सकते। उनने सैकड़ों निरपराधों की जानें ली हैं। उनके पाप का घड़ा अब भर चुका है।" इतना कह कर साया ओझल हो गई। बूढ़ा नौकर भारी अनिष्ट की आशङ्का से भयभीत हो उठा, किन्तु उसने अपना साहस नहीं खोया और अपने मालिक के होश में आने का इन्तजार करता रहा। इस बीच झोंपड़ी में तरह-तरह के जीवों की आवाजें सुनाई पड़ती रहीं। रात के तीसरे पहर के करीब इवान और अन्ना की नींद झोंपड़ी की दीवार गिरने से खुल गई और उसी के साथ प्रकट हुआ खूँखार सील मछलियों का एक झुंड। मछलियों ने उन दोनों पर आक्रमण किया तो वे डर कर भागे नदी की ओर नदी के किनारे पहुँचकर उनने जल्दी-जल्दी तट पर बँधी नौकाएँ खोलीं और उन पर सवार हो नदी पार करने लगे। वे अभी बीच धार में थे कि अचानक न जाने कहाँ से लाल रंग की लोमड़ियाँ आकाश से प्रकट हुईं एवं अन्ना की ओर झपटीं। डर के मारे अन्ना नदी में कूद पड़ी जहाँ सील मछलियों ने उसका काम तमाम कर दिया। अभी नाव कुछ ही आगे बढ़ी होगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि इवान पर भी वैसा ही लोमड़ियों ने आक्रमण किया। इवान का भी वैसा ही अन्त हुआ जैसा अन्ना का। अलबत्ता बूढ़े मल्लाह और बच्चों का इन प्रेतात्माओं ने कुछ नहीं बिगाड़ा। बच्चों को मल्लाह ने ही पाल पोसकर बड़ा किया।

साउथ वेल्स में जेम्स फिशर नामक एक सम्पन्न किसान रहता था। उसके कोई सन्तान नहीं थी। अतः सम्पत्ति के उत्तराधिकारी के रूप में उसने अपने एक मित्र के बेटे जार्ज वारेल को चुना। वारेल उसकी सम्पत्ति जल्दी ही प्राप्त करना चाहता था अतः एक दिन उसने किसान को खूब शराब मिलाकर उसकी हत्या कर डाली। हत्या इतनी सफाई से की गई थी कि उसका कोई सूत्र पुलिस के हाथ न लगा और न लाश का ही कुछ पता चला।

उक्त किसान का पड़ौसी जेम्स पार्ले एक दिन उसी के मकान के सामने से गुजर रहा था कि उसकी नजर अनायास उस किसान के मकान की ओर चली गई। उसने देखा कि पड़ौसी का भूत अपने मकान की ओर कुछ इशारा कर रहा है। इतना देखना था कि वह चिल्लाते हुए भागा। किन्तु यह आकृति उसे बार-बार दिखाई पड़ती रही और हर बार वह अपने एक कमरे की ओर इंगित करता। पार्ले ने सोचा, अवश्य ही उसकी मृत्यु का रहस्य उस कमरे से जुड़ा हुआ है, अतः उसने इसकी सूचना पुलिस को दी। बाद में जब उस कमरे का फर्श खोदा गया तो उक्त किसान की विकृत लाश मिली। यह ठीक वैसी ही थी जैसी आकृति पार्ले को दिखाई पड़ती थी। लाश के साथ ही अनेकों ऐसे सूत्र हाथ लगे जिसके आधार पर वारेल हत्यारा सिद्ध हुआ और उसे फाँसी की सजा सुनायी गई।

इसी प्रकार की एक घटना एडिनवरा की है। वहाँ के एक मुहल्ले में एक भुतहा मकान था। जो कोई भी उसमें ठहरता उसे एक महिला का प्रेत दिखाई पड़ता और वह डर कर भाग खड़ा होता।

एक बार डिक्सन नामक एक पुलिस इन्स्पेक्टर इस मकान में आया। एक रात वे विस्तर पर जा ही रहे थे कि ठण्डी हवा का एक झोंका आया, जिससे सारी खिड़कियाँ खुल गईं उन्होंने उठकर पुनः खिड़कियाँ बन्द कीं और विस्तर की ओर बढ़े, तभी दरवाजे पर दस्तक हुई। दरवाजा खोला तो सामने एक खूबसूरत युवती खड़ी थी। डिक्सन कुछ बोल पाते उससे पहले युवती ने कहा—"क्या मैं अन्दर आ सकती हूँ?" असमंजस की स्थिति में डिक्सन ने स्वीकृति दे दी। उसने आते ही कहना शुरू किया—"चूँकि आप पुलिस इन्स्पेक्टर हैं अतः आपसे कुछ विनती करने आयी हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरे आग्रह को आप ठुकरायेंगे नहीं।" इतना कह कर उसने अपनी कहानी आरम्भ की—"पन्द्रह वर्ष पहले मैं इसी बँगले में अपने बूढ़े बाप के साथ रहती थी। माँ बचपन में ही मर चुकी थी, अतः पिता ने पाल-पोसकर बड़ा किया। कुछ समय बाद पिता भी चल बसे अस्तु गुजारे के लिए मैंने इस बँगले को आप ही जैसे एक पुलिस अफसर को दे दिया। मैं भी इसी बँगले के एक कमरे में रहती थी। धीरे-धीरे हम दोनों के सम्बन्ध प्रगाढ़ हो गये और पति-पत्नी की तरह रहने लगे। वह अफसर शादी करने के लिए भी राजी हो गया। कुछ समय बाद जब मैं गर्भवती हुई और उससे शादी की बात कही तो उसने साफ इन्कार कर दिया तथा उल्टे मेरी हत्या कर चलता बना। इतना कह कर वह कुछ क्षण के लिए रुकी और फिर कहना शुरू किया—"आप उस अपराधी को गिरफ्तार कर सजा दिलवाइए, प्रमाण मैं उपलब्ध करा दूँगी। जब तक उसे दण्ड नहीं मिल जाता, मेरी आत्मा इसी प्रकार भटकती रहेगी।" यह कह कर जूरी का प्रेत लुप्त हो गया।

डिक्सन ने जब १५ वर्ष पूर्व की घटना की छानबीन शुरू की तो प्रमाण इस प्रकार एकत्रित होने लगे जैसे कोई प्रत्यक्षदर्शी व्यक्ति इसमें पुलिस की सहायता कर रहा हो। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर हत्यारे प्रेमी की तलाश की गई और उसे गिरफ्तार कर दण्ड दिया गया। बाद में जूरी की आत्मा ने डिक्सन को धन्यवाद दिया और ढेर सारे उपहार भी दिये।

ये सभी घटना प्रसंग मात्र अपवाद रूप में घटे संयोग नहीं कहे जा सकते। ये दो तथ्यों का रहस्योद्घाटन करते हैं। एक तो यह कि दृश्य के अतिरिक्त एक अदृश्य परोक्ष जगत का अस्तित्व है। दूसरा यह कि क्रिया की प्रतिक्रिया का शाश्वत सिद्धान्त जीवन क्रम में देखा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसुरी शक्तियों का कुप्रभाव

कोई व्यक्ति विश्वास करे अथवा नहीं। विलक्षण आसुरी शक्तियों के दुष्प्रभावों से बचा नहीं जा सकता। ब्राजील के नगर बेलम में १५ मार्च १९८३ को इसी प्रसंग की एक घटना घटित हुयी। डीजैरिना मैरिया सैंतोस नामक ३३ वर्षीय महिला ने दुर्भावना वश अपने पति, माता तथा दो बच्चों की हत्या कर दी।

सर्वप्रथम तो उसने एक लोहे की छड़ी से अपने सोते हुए पति की हत्या की तदुपरान्त ७८ वर्षीय अपनी माँ को बड़ी नृशंसता से मार डाला और फिर अपने २ वर्षीय बालक रुथ और सात महीने के डैनियल के गले को छुरा मारकर खत्म कर दिया। इसके उपरान्त सैंतोस ने अपने ऊपर ऐल्कोहल उड़ेलकर आत्म-हत्या की योजना बनायी ही थी कि पड़ौसियों ने उसकी जान बचा ली।

सैंतोस ने अपने कथन से स्पष्ट किया कि काफी दिनों से उसके ऊपर आसुरी शक्ति हावी होती चली आ रही थी। इसी का दुष्परिणाम यह निकला कि नित्य बाइबिल का पठन-पाठन करने वाली सैंतोस को अपनी सुसमाचार विभाग की सेवा से छुट्टी ही नहीं मिली। जेल में कड़ी सजा भी भुगतनी पड़ रही है।

अमेरिका के प्रसिद्ध नक्षत्र शास्त्री अलैक्जेण्डर बेयरिंग ने शिकागो में एक बिस्कुटी रंग की भव्य कोठी का निर्माण १८८० में कराया था। जिसका नाम 'सिलवर लोक' रक्खा। बाद में वह अभिशप्त सिद्ध हुआ। उसमें एक एक करके बावन मौतें हुई। अलैक्जेण्डर बेयरिंग स्वयं अपने घर में सात वर्ष बाद अक्टूबर १८८७ में मृत पाया गया था। उपनगरीय बस्ती 'अलवर्टो' के नगर पालिका अध्यक्ष काल्विन सिक्लेयर १९२ सी एक चाँदनी रात को उस समय की गृह स्वामिनियों मिसेज एलिजाबेथ और मिसेज जैकसन से मिलने गये थे परन्तु वे वहाँ से पागल होकर लौटे थे। 'मैंने उसे देखा है' बस यही असंबद्ध का प्रलाप वे करते थे। मिसेज एलिजाबेथ और मिसेज जैकसन उसी रात को वहाँ मृत पाई गईं थीं। सिक्लेयर को पागलखाने भेजा गया।

जब सन् १९७९ में उस बँगले के अन्तिम निवासी सूसन और एडवर्ड हुए तो एक रात को जो १३ दिसम्बर की एक मनहूस रात थी। एडवर्ड की लाश उसके उजाड़ और बेरौनक बगीचे में मिली थी जो क्षत-विक्षत थी और खून से नहाई हुई थी। ठीक इसके तीन दिन बाद १६ दिसम्बर १९७९ को सूसन की भी मृत्यु 'अलवर्टो' के सिविल अस्पताल में हो गयी। आधी बेहोशी की दशा में अनर्गल सा प्रलाप करते हुए उसने जो बताया था, उसी के आधार पर लोगों ने उस घटना को जाना था। जून १९८० में शिकागो प्रशासन के एक निर्णय के अनुसार उस भव्य सुदृढ़ कहे जाने वाले बिस्कुटी रंग के बँगले को गिरवा दिया गया।

इस अभिशप्त बँगले ने एक सौ वर्ष की अपनी अवधि में ५२मानवों के जीवन से क्रूर हँसी हँसकर काल कवलित कर दिया। आज भी उस भूखण्ड से रुदन और अट्टहासों की ध्वनियाँ रात्रि में सुनी जाती हैं।

भारत पाक विभाजन के उपरान्त कराँची में अमरीकी दूतावास के लिए जो भूमि चयन की गई, स्थानीय लोगों ने चेतावनी दी कि यहाँ एक पीर की मजार है उन्हें छेड़ने के परिणाम अच्छे न होंगे। और वैसा हुआ भी।

नींव खोदने पर नर कंकाल और जहरीले साँप मिकले। जैसे तैसे एक मंजिल पूरी हुई तो दूसरी की छत गिर गई और सैकड़ों मजदूर दब मरे।

उद्‌घाटन समारोह के दिन एक अजनवी वृद्ध क्रोध में इधर-उधर घूमते देखा गया टोकने पर उसने एक कर्मचारी के ऐसा घूँसा मारा कि कर्मचारी घन्टों बेहोश रहा। घूँसा मारकर वृद्ध देखते-देखते अदृश्य हो गया। तत्कालीन राष्ट्रपति अयूब खाँ ने मौलवियों से पीर को शान्त कराने के कितने ही उपाय किये किन्तु सभी निष्फल रहे। फलतः आज भी दूतावास की इमारत भूतघर बनी खाली पड़ी है।

****

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह संसार सह अस्तित्व सिद्धान्त पर टिका है

'इकॉलाजी' की मान्यता है कि सृष्टि सन्तुलन पर टिकी है। परावलम्बन (इन्टरडिपेन्डेन्स) मर्यादा निर्वाह (लिमिटेशन) और सम्मिश्रता (काम्प्लैक्सिटी) इन तीन आधारों पर प्रकृति व्यवस्था गतिशील है। "इलेक्ट्रिकल रिव्यू" नामक पत्रिका के एक अंक में चिकित्सा शोध समूह द्वारा दी गई इस खोज का विवरण प्रकाशित हुआ है कि मानव शरीर की विद्युत क्षमता का पर्यावरण के विद्युतीय दबाव से घनिष्ठ अन्तः सम्बन्ध है। हमारे अयन मण्डल में जब भी कोई गम्भीर उथल-पुथल होती है, उसका प्रत्यक्ष प्रभाव हमारे शरीर की सामान्य जैव-विद्युत चुम्बकीय शक्ति पर पड़ता है, उससे सामान्य क्रियाशीलता गड़बड़ा जाती है। उस उथल-पुथल को सन्तुलित करने के लिए शरीर में कई तरह की मानसिक व शारीरिक व्याधियाँ उठती दिखाई देती हैं, जिन्हें हम रोग व शोक की संज्ञा देते हैं। ऐसे ही कुछ प्रतिकूल अन्तर्ग्रही प्रभावों में ग्रहण, पुच्छल तारों आदि की गणना भी होती है। ग्रहण आदि का सर्वाधिक प्रभाव व इन हलचलों की पूर्वानुभूति जीव जन्तुओं को पहले होती है। सूर्यग्रहण की जानकारी मनुष्य अपनी बुद्धि के बल पर वर्षों पूर्व भले जानने में समर्थ हो गया हो किन्तु उसके दुष्प्रभावों को समझने में अभी तक असमर्थ रहा है, जबकि जंगल के पशु-पक्षी सूर्य ग्रहण के दुष्प्रभाव से बचने के लिए उसके चौबीस घण्टे पूर्व से ही शोरगुल करना बन्द कर देते हैं। सबसे चंचल कहा जाने वाला बन्दर सूर्य ग्रहण के पूर्व ही खाना-पीना त्यागकर एकान्त प्रिय सन्यासी की भूमिका अदा करने लगता है।

जापान में पायी जाने वाली एक पक्षी जिसे चीवी कहते हैं भूकम्प आने के चौबीस घण्टे पूर्व ही वह स्थान त्यागकर दूरस्थ उड़ जाती है। इसी प्रकार चीन में अनेकों भूकम्पों के पूर्व देखा गया कि वहाँ के पालतू गाय, बैल आदि अपनी-अपनी रस्सी तुड़ाकर घरों के बाहर हो जाते हैं। जबकि मानवीय बुद्धि भूकम्पीय झटकों को चौबीस घण्टे पूर्व भी जानने में असमर्थ है।

ऊँची पहाड़ियों पर बसने वाले पक्षियाँ बर्फ पड़ने के ठीक एक माह पूर्व पहाड़ियाँ त्याग कर सुरक्षित स्थानों में चली जाती हैं जबकि मनुष्य अभी तक शत-प्रतिशत रूप से बर्फ गिरने की भविष्यवाणी करने में असमर्थ रहा है। अनेकों प्रयोगों के बाद पाया गया कि आकस्मिक रूप से पड़ने वाली बर्फ के भी ठीक एक माह पूर्व पक्षियाँ स्थान खाली कर दूर-दराज देशों में चली जाती हैं।

तिब्बत और दार्जिलिंग में पायी जाने वाली पहाड़ी सारस वर्षा के १०-१५ मिनट पूर्व ही पर्वतों की गुफाओं अथवा चट्टानों की आड़ में चली जाती हैं जिसे देखकर तिब्बती लोग अपना माल असबाव बाँधकर वर्षा से बचने का प्रबन्ध करने लगते हैं। कभी-कभी तो देखा गया कि आकाश में एक भी बादल नहीं है और पानी बरसने के कोई आसार न होते हुए भी जब यह पक्षी छिपने लगे तो उसके कुछ ही समय बाद बादल संघटित हुये और वर्षा होने लगती है।

जीव विज्ञानी मछलियों के इस भविष्य ज्ञान से हैरत में पड़ गये हैं कि मछलियाँ समुद्र तट पर ठीक तभी अण्डे देती हैं जब समुद्री लहरें उतर जाती हैं और दुबारा उठने की सम्भावना नहीं रहती। यदि मछलियों के इस भविष्य ज्ञान में एक मिनट का भी अन्तर पड़ जाय तो उनके सारे अण्डे गहरे समुद्र में जाकर नष्ट हो जाय। मछलियों के इस भविष्य ज्ञान सम्बन्धी शोध निष्कर्ष वैज्ञानिकों ने मछलियों को झील, तालाब और प्रयोगशालाओं में रखकर बनावटी प्रकाश, अन्धकार और बनावटी चन्द्रमा तक आकर्षण देकर प्राप्त किए। किन्तु इन प्रकृति प्रेमी मछलियों को रंचमात्र भी भ्रम में न डाला जा सका। इन सभी स्थानों पर रखी गयी मछलियों ने ठीक उसी समय अण्डे दिये जब सागर में रहने वाली मछलियों ने दिये अर्थात् लहरों के उतरते ही इन मछलियों ने अपने भविष्य ज्ञान के आधार पर उक्त क्रिया की। इनकी इस विधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जानकारी में लाखों करोड़ों वर्षों से आज तक इन्च मात्र का अन्तर नहीं आया अन्यथा इनका कभी का नाश हो गया होता।

विश्व की रचना निष्प्रयोजन नहीं, प्रयोजन युक्त है। इसका प्रमाण है जीव जगत के लिए पृथ्वी पर अनुकूल वातावरण का होना। न्यूयार्क विज्ञान अकादमी के भूत-पूर्व अध्यक्ष डॉ० ए० क्रेसी मोरिसन का कहना है कि "गणित शास्त्र के नियमों से यह प्रमाणित होता है कि इस संसार का नक्शा किसी कुशल तथा बुद्धिमान इन्जीनियर द्वारा खींचा गया है।" इस प्रतिपादन की पुष्टि हेतु उन्होंने गहन अध्ययन अन्वेषण किया है। उससे जो तथ्य सामने आये हैं उनका अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि हमारी पृथ्वी जो अपनी धुरी पर एक हजार मील प्रति घण्टे की रफ्तार से घूमती है, यदि उसकी गति सौ मील प्रति घण्टा हो जाय तो दिन और रात अब की तुलना में दस गुने लम्बे हो जायेंगे। दिन के समय सूर्य की गर्मी इतनी अधिक होगी कि पृथ्वी की समस्त वनस्पतियाँ जल जायेंगी। रात्रि को भयंकर ठण्ड पड़ेगी जिसके कारण अधिकांश जीव मर जायेंगे।

चन्द्रमा की दूरी पृथ्वी से दो लाख बत्तीस हजार मील है। यदि उसकी दूरी मात्र ५०हजार मील होती तो सागरों में भयंकर ज्वार उठते। फलस्वरूप समस्त महाद्वीप जलमग्न हो जाते। सूर्य जीवन का स्रोत है। सूर्य से पृथ्वी की दूरी एवं प्राप्त होने वाला ताप का सामंजस्य जीवन के अनुकूल है। यदि सूर्य का ताप घटकर आधा अवशेष रह जाय तो पृथ्वी के सभी प्राणी जम जायेंगे। तापक्रम आधा और बढ़ जाय तो सब जल-भुनकर समाप्त हो जायेंगे। पृथ्वी २३ डिग्री के कोण पर झुकी है। इस कारण अनुकूल ऋतुएँ मिलती हैं। यह झुकाव न होता तो समुद्री भाप उत्तर से दक्षिण तक फैल जाती और सर्वत्र बर्फ के महाद्वीप बन जाते। वायु में आक्सीजन एवं कार्बनडाई आक्साइड गैस के सन्तुलन में सागरों की गहराई का हाथ है। यदि सागर अधिक गहरे होते तो इन गैसों के अभाव में वनस्पतियों का अस्तित्व नहीं बचता। अन्तरिक्ष वायु सुरक्षा कवच पतला अथवा हलका होता तो अगणित उल्काएँ नित्य ही जलती हुई पृथ्वी से टकराती और समस्त भू-सम्पदा को भस्मीभूत कर देतीं। हर दृष्टि से पृथ्वी पर अनुकूल, सुरक्षित एवं सुव्यवस्थित वातावरण का होना इस बात का प्रमाण है कि कुशल हाथों से किसी समर्थ हाथों ने इस सृष्टि की रचना की है। संचालन एवं नियन्त्रण की बागडोर भी उसी के हाथों में है।

सोवियत रूस के वैज्ञानिक डॉ० जी० ए० उशाकोव ने अपने ध्रुव शोध के विवरणों में एक और नया तथ्य प्रतिपादित किया है। वे कहते हैं कि जीवन का आधार मानी जाने वाली आक्सीजन वायु पृथ्वी की उपज अथवा सम्पत्ति नहीं है। वह सूर्य से प्राण रूप में प्रवाहित होती हुई चली आती है और धरती के वातावरण में यहाँ की तात्विक प्रक्रिया के साथ सम्मिश्रित होकर प्रस्तुत 'आक्सीजन' बन जाती है। यदि सूर्य अपने उस प्राण-प्रवाह में कटौती कर दे अथवा पृथ्वी ही किसी कारण उसे ठीक तरह ग्रहण न कर सके तो आक्सीजन की न्यूनता के कारण धरती का जीवन संकट में पड़ जायगा। पृथ्वी से ६२ मील ऊँचाई पर इस प्राण का आक्सीजन रूप में परिवर्त्तन आरम्भ होता है। यह आक्सीजन बादलों की तरह चाहे जहाँ नहीं बरसता रहता वरन् वह भी सीधा उत्तरी ध्रुव पर आता है और फिर दक्षिणी ध्रुव के माध्यम से समस्त विश्व में वितरित होता है। ध्रुवप्रभा में रंग-बिरंगी झिलमिल का दीखना विद्युत मण्डल के साथ आक्सीजन की उपस्थिति का प्रमाण है।

कभी-कभी सूर्य मण्डल में विशेष उत्क्रान्ति उत्पन्न होने से उस प्रवाह की एक लहर पृथ्वी पर भी चली जाती है और ध्रुव प्रदेश में चुम्बकीय आँधी-तूफानों का सिलसिला चल पड़ता है। इनकी प्रतिक्रिया उसे ध्रुव क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रखती वरन् समस्त विश्व को प्रभावित करती है। कई बार यह चुम्बकीय तूफान बड़े उपयोगी और सुखद परिणाम उत्पन्न करते हैं और कई बार इनमें कुछ ऐसे तत्व घुले हुए चले आते हैं जिनका प्रभाव समस्त विश्व को कई प्रकार के संकटों में धकेल दे। एक बार सन् १९३८ में एक चुम्बकीय तूफान ध्रुव प्रदेश पर आया था, उसकी भयानक चमक अफ्रीका तथा क्रीमिया तक देखी गई। उसका प्रभाव न केवल वस्तुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर पड़ा वरन् जीवधारी भी बुरी तरह प्रभावित हुए। ऐसी ही विद्युत आंधियों ने धरती पर 'हिमयुग' की परिस्थितियाँ उपस्थित कर दी हैं। मुद्दतों तक एक बड़े भू-भाग को वर्फ ने ढके रखा, समुद्र में बाढ़ आई और जमीन समुद्र में, समुद्र मरूस्थल में बदल गया। कहते हैं कहीं ऐसे ही वायु प्रलय, जल प्रलय, अग्नि प्रलय भी उपस्थित हो सकती हैं और यह चुम्बकीय आँधियाँ धरती के वर्त्तमान स्वरूप को कुछ से कुछ करके रख सकती हैं।

वस्तुतः यह संसार परस्पर विश्वास आत्मीयता और सहयोग के सिद्धान्त का पालन कर ही जीवित है। जब जीव, जन्तुओं को भी इन गुणों का अनुगमन करते पाया जाता है तो मनुष्य के आपसी बैर-भाव, वैमनस्य को देखकर शर्मिन्दा ही होना पड़ता है।

चीतल न केवल अपने सजातीय बन्धुओं से मित्रता करता है वरन् वह अन्य प्राणियों से भी दोस्ती कर लेता है। चीतल और बन्दर की दोस्ती लोक प्रसिद्ध है, जब बन्दर पेड़ पर चढ़कर फल तोड़ता और एक-एक करके अपने साथी चीतलों को खिलाता रहता है।

गीध का अपने सजातीयों के प्रति स्नेह देखते ही बनता है, जब वह किसी आहार को आपस में मिल बाँट कर खाता है।

शेरों में बड़ी प्रबल पारिवारिक भावना पाई जाती है। वह अपने शिशु को बड़े लाड़-प्यार से पालता-पोषता है। जब शिशु कभी उद्दण्डता का काम कर डालता है तो शेर उसे डाँटता-फटकारता और आज्ञा का फिर भी उल्लंघन करने पर मार भी लगाता है।

जिराफ और जेबरे की मित्रता और साहचर्य, जीव जगत की एक अनोखी घटना है। जिराफ जेबरे को खाना खिलाता है और जेबरा न केवल संकट के समय अपने मित्र को उसकी पूर्व सूचना देता है, अपितु अपने प्राण देकर भी उसकी रक्षा करता है। पानी में तैरते हुए दरियाई घोड़े की पीठ पर बैठकर चिड़ियाएँ बड़े मजे से दोस्ती गाँठ लेती हैं। वह घोड़े की पीठ पर बैठकर न केवल जल विहार का आनन्द लेती हैं, वरन् वहाँ से भोजन प्राप्त कर पिकनिक भी मनाती है।

ऐसे अनेकों उदाहरण दैनन्दिन जीवन में देखे जा सकते हैं जो जीव जगत, मानव समुदाय एवं पर्यावरण के परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को, प्रकारान्तर से सृष्टा की व्यवस्था को ही प्रमाणित करते हैं। वस्तुतः यह सारी जगती सह अस्तित्व की एक सुनिश्चित विधि व्यवस्था पर टिकी हुई है। इस पर विश्वास रखने से आस्तिकता के तत्वदर्शन को पोषण मिलता है। ❋❋

इन्द्रप्रस्थ के राजा धनंजय के घर में एक बार बोधिसत्व ने पुत्र रूप में जन्म लिया था। उसकी न्याय निष्ठा तथा दानशीलता की ख्याति समस्त जम्बू द्वीप में फैल गई। उन्हीं दिनों अनावृष्टि के कारण कलिंग देश में अकाल पड़ा।

कलिंग राज प्रजा के दुःख को देखकर दुःखी हुये। उन्होंने विज्ञजनों को बुलाकर दुर्भिक्ष निवारण का उपाय पूछा—उन्होंने कहा—प्राचीन समय में राजा अपना समस्त राज कोष दान कर देते थे। एक माह घास पर सोते थे। राजा ने ऐसा ही किया परन्तु वर्षा न हुई।

दूसरी सभा बुलाई गयी। ज्योतिपियों ने कहा—कुरु देश के राजा के पास अंजन वसभ नामक मांगलिक हाथी है उसके यहाँ आने पर वर्षा हो जायेगी। मंगल गज आ गया पर वर्षा इससे भी न हुई। तीसरी सभा बुलाई गयी उसमें बोधिसत्व ने सुझाया कि अधर्म बढ़ जाने से दुर्भिक्ष पड़ा। सभा को बात जँच गयी राजा ने इन्द्रप्रस्थ ८ ब्राह्मण भेजकर धर्माचरण के नियम मँगवाए। धर्माचरण की मोटी मर्यादा तो स्वर्ण पटल पर लिखी थी। उनका मर्म रहस्य यह है—'कि हर व्यक्ति अपने आचरण की गहरी समीक्षा करे, सुधार के लिए सचेष्ट रहे। विनम्र बनें, अपनी अपेक्षा दूसरों को श्रेष्ठ माने।' जैसे ही धर्माचरण का पालन आरम्भ हुआ वैसे ही विपुल वर्षा होने लगी। दुर्भिक्ष का स्थान सुभिक्ष ने ले लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या मनुष्य स्वभावतः आक्रामक हैं ?

नृतत्व विज्ञानी डा० वाशवर्न मनुष्य की बौद्धिक क्षमता का इतिहास प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि "सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य का मस्तिष्क कई लाख वर्षों तक विकसित नहीं हुआ सात लाख साल पूर्व मनुष्य का मस्तिष्क पहले की अपेक्षा दूना हो गया। चार लाख वर्ष पहले समूची स्थिति में अचानक परिवर्तन आया। मनुष्य का मस्तिष्क एक साथ कई आयामों में विकसित हुआ। किन्तु विकास की इस प्रक्रिया में सबसे बड़ी त्रुटि यह रह गई की उसकी आक्रामक मनोवृत्ति में जरा भी परिवर्तन नहीं आया। पाषाण युग की सभ्यता एवं वर्तमान की मनोवृत्तियों में अब भी एक रूपता है। उनका कहना है कि आज आवश्यकता इसकी है कि मनुष्य बदले और उसे बदलना ही होगा अन्यथा मानव जाति का विनाश निश्चित है।"

उक्त विचार ूनेस्को द्वारा आयोजित "पेरिस" की एक क्रान्फ्रेन्स में प्रस्तुत किया गया था विषय था अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में किस प्रकार शान्ति की स्थापना की जाय? किस प्रकार मानवी मूल्यों की पुनर्स्थापना हो? इसमें १४ देशों के १८ मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने भाग लिया। विकास वाद का उपरोक्त सिद्धान्त सही न भी माना जाय तो भी मानवी स्वभाव को बदलने की आवश्यकता को तो समझना ही होगा।

दिवंगत प्रो० सोरोकोव ने अपनी पुस्तक "सोशल एण्ड कल्चरल डायनेमिक्स" में नौ सौ वर्षों में संसार के देशों ने जितने युद्ध किए हैं, उसके आधार पर विस्तृत तालिका बनायी है। इस तालिका के अनुसार बारहवीं सदी से बीसवीं तक रूस ने अपने समय का ४२ प्रतिशत स्पेन ने ६७ प्रति० पौलेंड ने ५८ प्रति० ग्रीस ने ५७ प्रति, इग्लैण्ड ने ५६ प्रति० फ्रांस ने ५० प्रति० हालैण्ड ने ४४ प्रति० रोम ने ४१ प्रति० आस्ट्रिया ने ४० प्रति० जर्मनी ने २८ प्रति० वर्ष युद्ध करते बिताया है। उक्त सम्मेलन में उपस्थित सभी मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि मनुष्य का मन परिवर्तन शील है, उसे बदला जाना सम्भव है।

आक्रामक, अति उत्साही व्यक्ति अपनी सामर्थ्य का अत्यधिक मूल्यांकन करने वाला होता है। इस आवेश में दूसरे को मच्छर की तरह मसल देने की अहमन्यता सवार रहती है। कभी-कभी बदला लेने की भावना प्रबल होती है। कभी मात्र नीचा दिखाने और स्वयं यशस्वी बनने तथा लाभान्वित होने की प्रवृत्ति का मन पर इतना अधिक दबाव बढ़ जाता है कि उसे आतंक प्रदर्शित करने के लिए कोई न कोई बहाना ढूँढ़ना पड़ता है। ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि संसार में कोई न्याय व्यवस्था भी है जो आक्रमक को नीचा दिखाने के लिए स्वयं ही अदृश्य व्यवस्था बनाती रहती है। शान्ति प्रिय प्राणी अपनी प्रकृति के अनुरूप बढ़ते भी रहते हैं और फलते-फूलते भी हैं और पारस्परिक सहयोग का लाभ उठाते रहते हैं। इसके विपरीत आक्रमणकारी आपस में ही ईर्ष्या द्वेष की आग में जलते रहते हैं और जब भी अवसर मिलता है, भेड़ियों की तरह एक-दूसरे को दबोचने का अवसर भी नहीं चूकते। सिंह व्याघ्रों की संख्या संसार में घटती ही जाती है। क्योंकि प्रकृति नहीं चाहती कि हानिकारक तत्व संसार में अधिक बढ़ें और अधिक समय तक जीवित रहें। आक्रामक अपराधियों को राजदण्ड, सामाजिक असहयोग एवं तिरस्कार भी निरन्तर सहन करना पड़ता है। यह उनकी जीवनी शक्ति को घटाने एवं परास्त करने में कम भूमिका नहीं निभाती। आत्म हनन का पश्चात्ताप भी उन्हें कम नहीं सहना पड़ता।

यों मनुष्य भूतकाल की विपन्न परिस्थितियों में आत्म रक्षा के नाम पर आक्रामकता अपनाता रहा है पर स्वभावतः अपनी शारीरिक एवं मानसिक संरचना के कारण वह आक्रामक है नहीं।

—✱—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतति की उत्कृष्टता के लिए जन्मदाता उत्तरदायी

सुसन्तति की उपयोगिता सभी समझते हैं, पर उसके लिए माता-पिता बनने वाले अपना स्तर ऊँचा उठाने का प्रयत्न नहीं करते।

वैज्ञानिकों का इसके सन्दर्भ में 'जीन्स' को उत्तरदायी बताना तो ठीक है पर वे यह भूल जाते हैं कि इसका एक मात्र उपाय जन्मदाताओं का शारीरिक स्वास्थ्य सही होने से भी अधिक उनका मानसिक स्वास्थ्य सही होना अधिक आवश्यक है। क्योंकि सन्तति की उत्कृष्टता मात्र उसकी स्वास्थ्य-बलिष्ठता के आधार पर नहीं आँकी जा सकती। बौद्धिक और भावनात्मक स्तर गया-गुजरा होने पर कोई भी बलिष्ठ व्यक्ति दुष्ट, दुराचारी, विग्रही और उद्दण्ड भी हो सकता है। इसमें भी पिता की तुलना में माता को अधिक सुयोग्य और भावनाशील होना चाहिए।

यह स्पष्ट हो गया है कि अपने वातावरण तथा अपनी चेष्टाओं द्वारा व्यक्ति जिन स्वभाव-गुणों को अर्जित करता है, वे वंशानुक्रम से प्राप्त नहीं होते और न ही कोई व्यक्ति उन अर्जित विशेषताओं को वंशानुक्रम द्वारा अपने बच्चों को प्रदान कर सकता है। उदाहरण के लिए यदि एक व्यक्ति ने अनेक भाषाएँ सीखी हैं, तो वह उस भाषा-ज्ञान को अपने बच्चों को वंशानुक्रम द्वारा नहीं दे सकता। बच्चों को भी भाषा-ज्ञान की प्रचलित विधियों को ही अपनाना होगा तथा मेहनत करनी पड़ेगी। वहीं दूसरी ओर यह भी स्पष्ट हो गया है कि वंशानुक्रम का निश्चित प्रभाव सन्तान पर पड़ता है। आनुवंशिकी (जेनेटिक्स) का सारा ढाँचा ही इसी आधार पर खड़ा है। यह सही है कि कोई भी व्यक्ति जंगली बेर के बीज बोकर उनसे गुलाब के फूलों की आशा नहीं कर सकता। गौरैया के अण्डों को सेकर उनमें से मोर के बच्चे कौन निकाल सकता है? लेकिन जिन पौधों के बीज बोये जाते हैं, उनसे उन्हीं जैसे पौधे आखिर क्यों उगते हैं? चूहों से चूहा और बिल्ली से बिल्ली ही क्यों पैदा होती हैं? इसका उत्तर है, आनुवंशिकता अर्थात् नियमित वंश परम्परा, जिनके कारण ही ऐसा होता है। जो वस्तु जिस वंश की होगी, उसका बीज डाले जाने पर वैसा ही फल होगा। आनुवंशिकता में काम करने का ढंग भी शामिल है और चीजों का कद तथा रंग भी। उदाहरण के लिये बया पक्षी को बढ़िया लटकने वाला घोंसला बनाना किसी को सिखाना नहीं पड़ता है।

आनुवंशिकता अपने पूर्वजों से मिलने वाली विशेषताओं का ही दूसरा नाम है। वैज्ञानिक जानते हैं कि जीवों में जो विशेषतायें होती हैं, वे उन्हें अपने माता-पिता से अत्यन्त सूक्ष्म कणों के रूप में मिलती हैं। इन सूक्ष्म कणों को 'जीन्स' कहा जाता है। हमारा शरीर बहुत-सी कोशिकाओं से मिलकर बना है। 'जीन' कोशिका के क्रोमोसोम्स का ही एक भाग है। अगर किसी वट-वृक्ष की शाखा को कहीं उसके अनुकूल स्थान में ले जाकर बो दिया जाय तो वह भी मूल पेड़ की तरह ही फलने-फूलने लगेगी। उसकी कोशिकाओं के 'जीन्स' अपने पहले के पेड़ की ही भाँति होंगे। ठीक उसी तरह जिस तरह किसी स्पंज के टुकड़े में वैसे ही छिद्र होते हैं, जैसे उस स्पंज में थे जिसमें से कि टुकड़े को तोड़ा गया है।

यदि कोशिका को काटकर नाभिक से अलग कर दिया जाय तो कोशिका की मृत्यु हो जायेगी पर नाभिक में स्वतः निर्माण की क्षमता होती है, हमारा आध्यात्मिक दर्शन यह कहता है कि उस नाभिक में इच्छा, आशा, संकल्प और वासना का अंश रहता है, उसी के अनुरूप वह दूसरा जन्म ग्रहण करता है। अभी पाश्चात्य विज्ञान इस सम्बन्ध में तो खोज नहीं कर पाया पर कोशिकाओं के नाभिक में पायी जाने वाली एक तरह की किरणों की जानकारी अवश्य मिली है, जो सम्भवतः एक जन्म के संचित संकल्पों को सन्तानोत्पत्ति के वंशानुक्रम विज्ञान द्वारा दूसरी पीढ़ी में ले जाने के लिये उत्तरदायी कहे जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं। यह भी सूक्ष्मतर स्तर पर होने वाली प्रक्रिया है।

आहार क्रम को बदलकर भी कोशिकाओं को बदला जा सकता है। भले ही यह क्रम मन्दगामी हो पर यदि एक ही प्रकार के पदार्थ खाने में लिये जायें तो उसी प्रकार की कोशिकाओं को विकसित और सतेज कर दुर्बल एवं अधोगामी योनियों में पाई जाने वाली कोशिशिकाओं को हटाया और कम किया जा सकता है। इसका प्रभाव यह होता है कि मनुष्य में जो पाशविक वृत्तियाँ होती हैं, वह इन कोशिकाओं की मन्द, अशुद्ध और जटिल स्थिति के कारण होती हैं, उन्हें बदल कर, शुद्ध, सात्विक बनाया जा सकता है। अर्थात् जन्मदाता अपना व्यक्तित्व उच्चस्तरीय बनाये।

वैज्ञानिकों का ध्यान जीन्स की शल्य क्रिया करके उसमें समाये हुए अनुपयुक्त भाग को निकाल फेंकने की बात भर समझ में आई है। पर यह नहीं सोच पाये कि उस कमी की पूर्ति कैसे की जाय जो जन्मदाताओं में तत्वतः नहीं है। वे इसका समाधान कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से हल करना चाहते हैं पर वह भी नैतिक और पारिवारिक, सामाजिक परम्पराओं को देखते हुए व्यावहारिक नहीं दीखता। इसमें कानूनी बाधाएँ भी हैं कि इस प्रकार जन्में बालक का पिता किसे कहा जाय। पुरुष प्रधान समाज में यह भी एक झंझट की बात है।

सुसन्तति प्राप्त करने का वही तरीका सर्वोत्तम है कि जनक जननी अपने उत्तरदायित्व को समझें और अपना व्यक्तिगत जीवन उस स्तर का बनायें जिनके द्वारा उत्पादित फसल उन्हीं के अनुरूप हो।

यह तभी सम्भव है जब गर्भाधान को काम-क्रीड़ा के कौतूहल से कहीं ऊँचा समझा जाय और उसके कारण समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का अनुमान लगाया जाय।

कुसन्तति अपने लिए, परिवार के लिए, ही सिरदर्द नहीं बनती वरन् अपने विकृत व्यक्तित्व एवं अवांछनीय क्रिया-कृत्यों से समाज में अनेक विग्रह खड़े करती है। इस प्रकार का उत्पादन करने वाले भले ही शासकीय दण्ड व्यवस्था के अन्तर्गत न आ पाते हों, पर उन्हें आत्मा और परमात्मा के सामने तो लज्जित होना ही होगा। जबकि सुसन्तति अपने सत्कर्मों से प्रशंसनीय वातावरण बनाती है।

सभी चाहते हैं कि उनके घर में सुसन्तति का प्रादुर्भाव हो, पर वे यह भूल जाते हैं कि खिलौना या पुर्जा बनाने से पूर्व उसका साँचा सही बनाना पड़ता है। अच्छा हो कि समाज के उत्थान और पतन की भावी योजना के लिए सुप्रजनन ही उचित माना जाय और उस अति जिम्मेदारी के काम में मात्र वे ही लोग हाथ डाले जिनने अपना व्यक्तित्व इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त बना लिया हो।

यह ठीक है कि जैसा बीज होता है वैसा ही पौदा पैदा होता है। यह भी गलत नहीं है कि उर्वर भूमि में पौदे को तेजी से बढ़ने में सहायता मिलती है। पिता को बीज और माता को भूमि कहा गया है। यह पर्याप्त नहीं कि बीज सड़ा घुना न हो। अर्थात् पिता का व्यक्तित्व गुण, कर्म, स्वभाव एवं स्वास्थ्य गया-गुजरा न हो। इसी प्रकार यह भी उचित है कि माता को सुयोग्य, सुसंस्कारी एवं शिक्षा की दृष्टि से समुन्नत स्तर की होना चाहिए। इसके लिए स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके बिना वह सद्गुणों का महत्व और उन्हें विकसित करने के उपायों से अनजान ही बनी रहेगी। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि लड़कों को नौकरी के निमित्त पढ़ाया जाता है और लड़की को पराये घर का कूड़ा समझकर हर बात में उसके प्रति उपेक्षा वरती जाती है सुसन्तति उत्पादन की दृष्टि से यह बहुत ही अनुचित है कि लड़कियों को सुयोग्य बनाने की दिशा में उपेक्षा वरती जाय।

बात इतने पर ही समाप्त नहीं हो जाती। पौदे को खाद-पानी और रखवाली भी चाहिए। बच्चों को घर का तथा स्कूलों का वातावरण ऐसा मिलना चाहिए जिसमें उन्हें सुसंस्कारिता उपलब्ध करने का अवसर मिले साथ ही शिक्षा भी ऐसी मिलनी चाहिये जो जीवन विकाश के सर्वोपरि महत्व की आवश्यकता पूरी कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजब तेरी कुदरत अजब तेरा खेल

रस्टीड—जर्मनी—के सेन्ट भूलारिच चर्च में एक ऊँची मीनार बनी है। इस पर एक १५९९ और १७८३ के बीच भयंकर आकाशीय बिजली चार बार गिरी। वह चार बार धराशायी हुई और नये सिरे से बनाई गयी। चारों बार बिजली गिरने की तारीख १८ अप्रैल थी।

स्पेन के बार्सिलोना नगर में एक 'सिएट सेंटिएम्ब्रे' नामक व्यक्ति हुआ है। जिसका अर्थ स्पेनी भाषा में होता है—सात सितम्बर। यह नाम उसे माता-पिता से नहीं मिला। लोगों के द्वारा थोपा गया। वह ७ सितम्बर को १७४९ को पैदा हुआ और ७ सितम्बर १८०१ को मर गया। उसके बेटे का भी यही नाम था। वह ७ सितम्बर १७७४ को पैदा हुआ और ७ सितम्बर १८२६ को मरा। इतना ही नहीं उसके पोते का भी यही नाम था और जन्म-मरण का दिन भी पूर्वजों की भाँति है। पोता ७ सितम्बर १८१४ को पैदा हुआ और ७ सितम्बर १८६८ को दिवंगत हुआ। तीन पीढ़ियों तक एक ही नाम और एक ही जन्म-मरण का दिन अभी तक उस देश में चर्चा का विषय है।

जापान पर भूकम्पों की विपत्तियाँ अनेक बार आई हैं पर छः भयानक संयोग ऐसे हैं जो एक ही तारीख को घटित हुये। और विनाश की दृष्टि से असाधारण रूप से भयानक माने गये।

(१) १ सितम्बर ८३७ (२) १ सितम्बर ८५९ (३) १ सितम्बर ८६७ (४) १ सितम्बर ११८५ (५) १ सितम्बर १६४९ (६) १ सितम्बर १९२३। इनमें से छठे ने सबसे अधिक विनाश किया। उससे टोकियो और योकोहामा शहर बुरी तरह बर्बाद हुये और प्रायः १ लाख ४३ हजार व्यक्ति दबकर मर गये। घायलों की संख्या तो इससे भी कहीं अधिक थी।

विश्व-विख्यात चित्रकार आल्माटाडमा के जीवन में "१७" की संख्या महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। यह बात वे स्वयं स्वीकार करते हुए कहा करते थे—"जब मैं १७ वर्ष का था तब १७ तारीख को अपनी प्रिय पत्नी से मिला। मेरे पहले मकान का नम्बर १७ था जब दूसरा मकान बनाया था वह भी १७ अगस्त से प्रारम्भ हुआ और उस नूतन ग्रह में मेरा प्रवेश भी १७ नवम्बर को ही हुआ। चित्रकारी के लिए सेन्ट जोन्स वुड में जो कमरा लिया वह भी १७ नवम्बर का ही निकला।

एस० बी० फ्रेंच के जीवन की अधिकांश घटनायें "७" की संख्या के साथ ही घटित हुईं। उनका जन्म ७वीं महीने की ७ वीं तारीख को हुआ था। ७ वर्ष तक वे कभी बीमार नहीं हुये। ७ वीं कक्षा तक वे कभी फेल नहीं हुये। उनका विवाह भी ७ वीं लड़की के साथ हुआ और संयोग से उस लड़की के लिए भी फ्रेंच ७ वें ही लड़के थे।

ऐलन वान ने अपनी पुस्तक 'इनक्रेडिबल कोइन्सीडेन्स' में अंक संयोग पर आधारित घटना का भी उल्लेख किया है। आयरलैण्ड स्थित डबलिन के निवासी एन्टनी कनैसी के जीवन में 'सात' संख्या का विशेष महत्व रहा। उसके जीवन के हर महत्वपूर्ण मोड़ पर सात का संयोग अवश्य रहा। एन्टनी कनैसी के शब्दों में "सप्ताह के सातवें दिन, महीने की सातवीं तारीख को, वर्ष के सातवें दिन, इस सदी के सातवें वर्ष में मेरा जन्म हुआ था। मैं अपने माता-पिता का सातवाँ बेटा हूँ, यहाँ तक मेरे पिता भी अपने अभिभावक के सातवें पुत्र थे। अपनी सत्ताइसवीं वर्षगाँठ पर सातवीं घुड़-दौड़ में मैंने सात नम्बर का घोड़ा चुना और उसका नाम था—'सातवाँ बहिश्त'। मैंने उस घोड़े पर सात शिलिंग लगाये। रेस में भी उसका सातवाँ नम्बर था।"

उत्तरी बर्टन यार्क्स के डा० रुड के जीवन में १३ की संख्या दुर्भाग्य सूचक के रूप में रही। १३ वर्ष की अल्प आयु में वे बीमार पड़े। १३ दिन तक घोर कष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहते हुये १३ तारीख को हृदय की बीमारी के कारण उनकी मृत्यु हो गयी। उनके परिवार में १३ सदस्य थे। मृत्यु के समय कुल १३ शिलिंग ही उनके फण्ड मे बचे थे। अन्तिम संस्कार के समय भी १३ सदस्य ही उपस्थित हुये। रुड का नाम फूवाह था जो कि बाइबिल के १३ वें छन्द में आता है। उनकी मृत्यु के समय मात्र १३ तार ही शोक संवेदना के रूप में आये।

इसके विपरीत 'डेनवरा कोलराडो' के धनाढ्य उद्योगपति शेरमैन के लिए १३ की संख्या सौभाग्य सूचक थी। शेरमैन का जन्म१३तारीख को हुआ। उनकी सगाई १३ तारीख को हुयी और विवाह भी १३ जून १९१३ को हुआ। पत्नी का जन्म दिन भी १३ तारीख को ही था। उनके विवाहोत्सव में कुल १३ सदस्य ही उपस्थित थे। १३ की संख्या उनके जीवन में सदैव लाभदायक रही।

फ्राँस के सिंहासन के साथ १४ की संख्या का महत्व संख्याओं के साथ जुड़ी विचित्रताओं को प्रकट करती हैं। फ्राँस के प्रथम सम्राट हेनरी १४ मई १०२९ को सिंहासन पर बैठे जबकि वहाँ के आखिरी सम्राट का नाम भी हेनरी था १४ मई १६१० को उनकी हत्या कर दी गयी थी। जिस तारीख को एक को सिंहासन मिला उसी को दूसरी १४ मई को मृत्यु का उपहार। वहाँ के अन्य सभी राजाओं के लिए १४ संख्या का महत्व सदैव बना रहा। हेनरी द्वितीय ने १४ मई को ही फ्राँस का राज्य विस्तार किया। हेनरी तृतीय को १४ मई के दिन युद्ध के मोर्चे पर जाना पड़ा। हेनरी चतुर्थ ने आपवरी का युद्ध१४ मार्च १५९० को जीता। १४ दिसम्बर १५९९ को सवाय के ड्यूक ने अपने आपको हेनरी को आत्म-समर्पण किया। १४ तारीख को ही लार्ड डफिन ने लुई १३ वें के रूप में बैप-तिस्मा ग्रहण किया। हेनरी चतुर्थ के पुत्र लुई १३ वें की मृत्यु १४ मई १६४३ को हुई। लुई १४ वें १६४३ में (१+६+४+३=१४) सिंहासन पर बैठे और ७७ वर्ष (७+७=१४) की आयु में उनकी मृत्यु हुई। लुई १५ वें ने कुल १४ वर्ष राज्य किया। इस प्रकार फ्राँस के सिंहासन पर १४ का महत्व सदैव बना रहा।

जर्मनी के शासक चार्ल्स चौथे ने अपने जीवन में चार की संख्या को अत्यधिक महत्व दिया। वह चार रंग की पोशाक को दिन में चार बार पहनते थे। चार प्रकार का भोजन, चार मेजों पर दिन में चार बार करते थे, चार प्रकार की शराब पीते थे, बग्घी में चार पहिए और चार ही घोड़े जुतते थे। उनके चार महल थे उनमें चार-चार ही दरवाजे और प्रत्येक महल में चार चार कमरे, प्रत्येक में चार-चार ही खिड़कियाँ। मृत्यु के दिन उनके समीप चार ही डाक्टर उपस्थित थे। उन्होंने चार बार 'गुडबाय' कहा और ठीक चार बजकर ४ मिनट पर इस संसार से विदा हो गये।

संयोगवश संयुक्त राज्य अमेरिका के इतिहास में १६० वर्षों से एक विचित्र परम्परा ही दिखाई पड़ती है। प्रति २० वर्ष पर राष्ट्रपति की मृत्यु अपने ही कार्यकाल में हो जाया करती थी। १८४० में ६८ वर्षीय विलियम हैरीसन राष्ट्रपति बने। मार्च १८४१ में निमोनिया से मृत्यु हो गयी। १८६० में लिंकन राष्ट्रपति बने और इनकी हत्या १८६५ में हो गयी। १८८० में प्रेसीडेण्ट गारफील्ड राष्ट्र-पति बने और अगले वर्ष गोली लगने के कारण मर गये। १९२० में प्रेसीडेन्ट हार्डिंग ने कार्यभार सम्भाला। आप स्वाभाविक मृत्यु से १९२३ में मर गये। १९४० में फ्रेंक-लिन रुजवेल्ट राष्ट्रपति बने और १९४५ आते-आते मर गये। १९६० में प्रेसीडेन्ट कैनेडी ने अपनी १९६३ की मृत्यु के पूर्व तक राष्ट्रपति पद को सुशोभित किया। १८६०, १९००, १९४० में चुने सभी राष्ट्रपति अपने कार्यकाल में मरे तो थे ही सब दूसरी बार राष्ट्रपति कार्यकाल में थे। अपवाद रूप में वर्तमान राष्ट्रपति में रीगन ही हैं। अब तक इस शृंखला में वर्णित राष्ट्रपति में रीगन भी सबसे वयोवृद्ध हैं। वे १९८४ में दूसरी बार के लिए पुनः चुने गए।

अमरीका के जिम बिशप ने अपने तुलनात्मक अध्ययन से यह सिद्ध कर दिया है कि एफ० कैनेडी ही अब्राहम लिंकन थे। चालीस वर्ष की आयु में लिंकन को राष्ट्रपति बनने की इच्छा हुयी थी। कैनेडी को भी। दोनों विश्व शान्ति के प्रयासों में संलग्न रहे और नीग्रो स्व-तन्त्रता को भी उन्होंने समान रूप से चाहा। लिंकन के चार बच्चे थे दो मर गये दो उनके साथ रहते थे। कैनेडी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के भी चार पुत्र हुये दो मर गये दो जीवित रहे। लिंकन की पहली पत्नी फैशनेबुल थी, कविता व पेन्टिंग में उसकी रुचि थी। ठीक इसी स्वभाव की पत्नी कैनेडी की थी। दोनों की आस्था धार्मिकता की ओर थी। भोजन में स्पार्श दोनों को प्रिय था। लिंकन १८६१ में राष्ट्रपति बने तो कैनेडी १९६१ में। लिंकन के प्राइवेट सैक्रेटरी का नाम था कैनेडी और कैनेडी का लिंकन। दोनों की मृत्यु शुक्रवार के दिन हुई। दोनों ही गोली के शिकार हुये और जान्सन नामक उपराष्ट्रपतियों ने ही दोनों का पद सम्भाला।

किन्हीं व्यक्तियों के जीवन में कुछ अंकों का विशेष महत्व रहता है। प्रिंस बिस्मार्क के जीवन में ३ का अंक कुछ विलक्षण संयोग लाता रहा। उनके तीन नाम थे—लाग्नवर्ग, शोपासेवी और बिस्मार्क। उन्हें तीन उपाधियाँ मिलीं प्रिंस, ड्यूक तथा काउण्ट। तीन कालेजों से उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। तीन ही उनके पुत्र थे।

साइप्रस के शासनाध्यक्ष मकरिआस के जीवन में १३ का अंक कुछ ऐसे ही संयोग लाता रहा। १० अगस्त १९१३ को उनका जन्म हुआ। १३ वर्ष की आयु में चर्च में भर्ती हुये। १३ नवम्बर १९४६ में उन्होंने प्रीस्ट दीक्षा ली। १३ जून १९४८ में वे विशप बने तथा राजगद्दी पर बैठे। १३ मार्च १९५१ में यूनान के राजा ने उनका अभिनन्दन किया। १३ दिसम्बर १९५९ को वे राष्ट्रपति चुने गये।

भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्व० लाल बहादुर शास्त्री के जीवन में मंगलवार का विशेष महत्व रहा। बचपन में एक बार वे गंगा में डूबते-डूबते बचे वह दिन भी मंगलवार था। यू० पी० पार्लियामेंटरी बोर्ड के मंत्री, १९४७ में पुलिस एवं यातायात मन्त्री, १९५१ में कांग्रेस के महासचिव, १९५२ में रेलमन्त्री, १९५७ में परिवहन मन्त्री आदि पद उन्होंने मंगलवार के दिन ही प्राप्त किये। यहाँ तक कि वे प्रधानमन्त्री भी मंगलवार को ही बने। मंगलवार को ही उन्हें स्व० राधाकृष्णन् ने भारत रत्न की उपाधि से विभूषित किया। ताशकन्द वार्त्ता भी उन्होंने मंगलवार को प्रारम्भ की और अन्त में उन्होंने अपना पार्थिव शरीर भी मंगलवार के दिन छोड़ा।

आयरलैण्ड के क्रुक हैवेन शहर में एक ही मकान में रहने वाले दो दम्पत्तियों के एक ही दिन कुछ मिनटों के अन्तर से दो पुत्र पैदा हुए। नाम रखा गया—एलेनर गेडी तथा पैट्रिक। दोनों बच्चे अलग-अलग खेलते किन्तु एक दिन दोनों रोते-रोते घर पहुँचे तो उनके माता-पिता ने देखा कि दोनों के पैर में एक ही स्थान पर चोट लगी थी। दोनों बच्चे पढ़ रहे थे तब कई बार ऐसा हुआ कि दोनों को परीक्षा में समान अंक मिले। दोनों का विवाह एक साथ ही तय हुआ। शादी के बाद पहला बच्चा भी दोनों के एक ही दिन हुआ। पैट्रिक और ऐलेनर ८६ वर्ष की आयु में एक ही दिन बीमार पड़े और साथ ही मृत्यु भी दोनों की एक ही समय में हुयी। इन घटनाओं से आयरलैण्ड के शिक्षित व्यक्ति भी इस बात को मानने लगे कि कोई एक सार्वभौमिक सत्ता व नियम सृष्टि में अवश्य काम कर रहा है।

भारत की भुवाल रियासत के उत्तराधिकारी के मुकदमे का फैसला संसार के इतिहास में अपने ढंग का अनोखा है। रियासत का राजा रमेन्द्र राय १९०९ में मरा। उत्तराधिकारी स्थानापन्न हो गये। इसके १२ वर्ष बाद राजा प्रकट हुआ और उसने अदालत में अपनी सम्पत्ति वापस लेने का दावा किया उसका कहना था कि घर के लोग चिता में आग लगाकर घर चले गये और उसी समय वर्षा से आग बुझ गयी और वे मृतक से जीवित हो गये। स्मृति न रहने के कारण वे बारह वर्ष जहाँ तहाँ भटकते रहे और अब वे अपनी बंगला मातृ भाषा तक भूल चुके हैं। इस दावे का उनके पूरे परिवार ने खण्डन किया। विधवा ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि यह कोई जालसाज है उसका पति नहीं। इतने पर भी ब्रिटेन की प्रीवी कौंसिल ने सन् १९३५ में राजा के पक्ष में फैसला दिया। राजा की भारी जायदाद थी उसमें तैंतीस लाख रुपया वार्षिक की आमदनी थी। यह सम्पत्ति फैसले के अनुसार उस मृतात्मा को मिल गयी जिसने अपने आपको सिद्ध करने और न्याय कर्त्ताओं को प्रभावित करने में विभिन्न सबूतों के आधार पर सफलता पाई। कुदरत का खेल विचित्र है इसकी पहेलियाँ वस्तुतः अबूझ हैं।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरने के बाद भी आत्माएँ धरती वासियों से सम्बन्ध रखे रहती हैं

वियेना के प्रख्यात चित्रकार जोसेफ आयनगार—के पीछे-पीछे मौत का साया फिरता था। जाने-अनजाने उसे कई बार मौत ने घेरा, पर उसका अदृश्य एवं अपरिचित सहायक उसे हर बार बचाता रहा। सन् १८८० में बुडापेस्ट में उसने फांसी लगा कर आत्म हत्या की। बचाने के लिए वही अदृश्य सहायक पहुँचा और रस्से से नीचे उतार लिया। सन् १८४८ में क्रान्तिकारी के रूप में शासन ने उसे मृत्यु दण्ड दिया। तब भी उस अपरिचित यूनियन भिक्षु ने राजा से मिलकर प्राणदण्ड रद्द कराया। अन्ततः उसने ६८ वर्ष की आयु में अपने सीने में आप गोली मार कर आत्महत्या कर ली। अन्तिम संस्कार कराने के लिए भी वही भिक्षु उपस्थित रहा।

सन् १५६३की बात है। फ्रांसीसी ड्यूक डिगाइज की हत्या के अपराध में जानपाल ट्रीट नामक एक व्यक्ति को मृत्यु दण्ड दिया गया। मारने का तरीका यह निश्चित किया गया कि उसके दोनों हाथ दोनों पैर चार अलग-अलग मजबूत घोड़े से बाँध दिये जाँय। घोड़े एक साथ दौड़ाये जाँय ताकि अपराधी के चार टुकड़े हो जाँय। नियत व्यवस्था के अनुसार सेना के बलिष्ठ घोड़ों को घुड़सवारों द्वारा दौड़ाया गया पर आश्चर्य यह है कि घोड़े आगे बढ़ न सके। कैदी इतना मजबूत था कि उसका कोई अवयव न तो उखड़ता था न ढीला पड़ता था। घोड़े तीन बार बदले गये। बारहों घोड़े जब असफल रहे तो उसे रिहा कर दिया गया। उसका कहना था कि इस कार्य में उसके पूर्वजों ने अदृश्य रूप से सहयोग दिया।

मैसूर के राजा ने नई तोप के उद्‌घाटन के अवसर पर उस क्षेत्र के एक प्रख्यात साधु से आशीर्वाद माँगा। इनकार किये जाने पर राजा बहुत क्रुद्ध हुआ और साधु को उसी तोप की नली से बाँधकर उड़ा देने का हुक्म दिया। वैसा ही किया भी गया। पर साधु मरा नहीं। पहलीबार जब उसे बारूद भरी नली ने उड़ाया तो ८०० फुट ऊँचाई पर उछल कर बहुत दूर खड़े हाथी की अम्बारी पर जा गिरा। पकड़कर लाया गया और दुबारा फिर उसे उसी प्रकार तोप से कसा और उड़ाया गया। इस बार वह एक दूरस्थ झोंपड़ी के छप्पर पर जा गिरा। और साफ बच गया। तीसरी बार उसे फिर नहीं बाँधा गया।

सन् १९१९ में लिवरपूल में जेम्स नामक एक व्यक्ति के साथ जो बहुत पहले कभी फौज में रह चुका था एक घटना घटित हुई। लड़ाई के दौरान तोपों की भयंकर गर्जना के कारण उसके कान के पर्दे फट गये और वह बहरा हो गया था। पेंशन पर आ जाने के बाद एक रात उसने स्वप्न में देखा कि वह लिवरपूल के पवित्र संट विनिफ्रेड कुएँ के पास खड़ा होकर उसमें से जल निकाल कर स्नान कर रहा है जैसे ही पानी शरीर पर पड़ा कि शीत की-सी कपकपी लगी और इसी क्षण उसकी नींद टूट गई। वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। पास में सो रहे उसके घर वालों ने पूछा—कौन ! यह शब्द सुनते ही उसके जीवन में नया प्रकाश आ गया उसने आश्चर्यपूर्वक बताया—मैं हूँ जेम्स पर यह क्या हुआ, कैसे हुआ—जिस बहरेपन को डाक्टर नहीं ठीक कर पाये वह एक स्वप्न ने ठीक कर दिया।

काल के अनन्त प्रवाह में बह रही जीवन धारा का प्रेत योनि एक नया मोड़ मात्र है। हमारे सीमित बोध जगत के लिए भले ही वह जीवन धारा खो गई प्रतीत होती हो, पर वह सर्वदा अविच्छिन्न रहती है और हमारा संस्कार क्षेत्र मरणोत्तर जीवन में भी सक्रिय रहता है, अन्तःकरण चतुष्टय मृत्यु के उपरान्त भी यथावत बना रहता है। अशान्त, विक्षुब्ध मनःस्थिति भी अपना स्वभाव उस रूप में ही बनाये रखती है। दुष्ट और दुरात्म जीवन क्रम की यह स्वाभाविक परिणति जीवात्मा को जिस अशान्त दशा में रहने को बाध्य करती है, उसका ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम प्रेत दशा है। अपनी दुर्दशा से सामान्यतः प्रेतों को दुःख ही होता है, पर अत्यन्त कलुषित अनाचारी व्यक्तियों की हिन्स्र मनोवृत्तियाँ प्रेत जीवन पाकर भी अपनी क्रूर आकांक्षाओं की पूर्ति करना चाहती हैं और लोगों को अनायास सताती रहती हैं पर अपना आतंक वे उन्हीं पर जमा पाती हैं, जिनका आत्मबल अविकसित हो। इसके विपरीत पितर शान्त सहयोग सतत देते रहते हैं।

डा० सी० डी० ब्रोड समेत अनेक वैज्ञानिक-मनोवैज्ञानिकों ने 'मीडियम' (प्रेत प्रभावित व्यक्ति) के बारे में एक सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि मस्तिष्क की संरचना जटिल है। वह शरीर के सम्मिलित संयोग का उत्पादन है, जिसमें एक अभौतिक तत्व भी सम्मिलित है, जिसे वे 'साइकिक फैक्टर" कहते हैं। जब व्यक्ति मरता है, तो उसका शरीर रूपी यह संयोग बिखर कर नष्ट हो जाता है। इस प्रकार उस शरीर में अवस्थित मस्तिष्क का भी अस्तित्व समाप्त हो जाता है। किन्तु "साइकिक फैक्टर" कोई भौतिक द्रव्य (मैटर) नहीं है, अतः वह विनष्ट नहीं हो सकता। यह अवशिष्ट "साइकिक फैक्टर" इधर-उधर भ्रमण करता रहता है। फिर ऐसे व्यक्ति के मस्तिष्क को पाते ही वह प्रविष्ट हो जाता है जो इन परिव्राजक साइकिक फैक्टर्स के प्रति ग्रहणशील हो। ऐसे ही व्यक्ति "मीडियम" प्रेत वाहन बना करते हैं। "साइकिक फैक्टर" कोई व्यक्ति तो होते नहीं, वे पूरे मस्तिष्क के भी प्रतिनिधि नहीं होते। अपितु मस्तिष्क के 'पदार्थ से परे एक अंश विशेष होते हैं। अतः 'साइकिक फैक्टर' एक पूर्ण मस्तिष्क की तरह काम नहीं कर सकते।

इस सन्दर्भ में एक नया पक्ष और भी है। वह यह है कि जीव सत्ता अपनी संकल्प शक्ति का एक स्वतन्त्र घेरा बनाकर खड़ा कर देती है और जीव को अन्य जन्म मिलने पर भी वह संकल्प सत्ता उसका कुछ प्राणांश लेकर अपनी एक स्वतन्त्र इकाई बना लेती है और इस प्रकार बनी रहती है। मानो कोई दीर्घजीवी प्रेत ही बनकर खड़ा हो गया हो। अति प्रचण्ड संकल्प वाली ऐसी कितनी ही आत्माओं का परिचय समय-समय पर मिलता रहता है। लोग इन्हें 'पितर' नाम से देवस्तर की संज्ञा देकर पूजते पाये जाते हैं।

पदार्थ का प्रेत 'प्रति पदार्थ' विश्व का प्रेत (प्रति विश्व' छाया पुरुष की तरह साथ-साथ विद्यमान रहता है। उसकी चर्चा विज्ञान जगत में इन दिनों प्रमुख चिन्तन का विषय बनी हुई है। मनुष्य का प्रेत होता है, यह भी जाना और माना जाता रहा है। अब यह नया तथ्य सामने आया है कि महत्वपूर्ण घटनाओं के—महत्वपूर्ण पदार्थों के और प्रचण्ड संकल्प सत्ताओं के भी प्रेत हो सकते हैं। स्थूल के नष्ट हो जाने पर भी सूक्ष्म का अस्तित्व बना रहता है।

सर ओलीवर लाज ब्रिटेन के माने हुए वैज्ञानिक रहे थे, उन्हें कई विश्व विद्यालयों की मूर्धन्य डिग्रियाँ और स्वर्ण पदक प्राप्त थे। वे ब्रिटिश एसोसियेशन के प्रधान थे। उनका पुत्र रेमण्ड प्रथम विश्व युद्ध में मारा गया था। मृतात्मा के साथ सम्पर्क बनाने और उसके माध्यम से अनेकों ऐसी अविज्ञात जानकारियाँ प्राप्त करने में सफल हुए जो परखने पर पूर्णतया सत्य सिद्ध हुईं। उनके एक समकालीन वैज्ञानिक सर विलियम कुकस ने अपने प्रेतात्माओं सम्बन्धी निष्कर्षों का विवरण 'रिचर्स इनटे-फेनोमिनम आफ स्प्रिचुअलिज्म' में प्रकाशित कराया है। उसमें सर ओलिवर लाज के शोध कार्यों का भी उल्लेख हुआ है।

महाकवि विलियम ब्लेक के बारे में कहा जाता है कि वे माइकेल एजिलो-मोजेज-क्लीओ पेट्रा की स्वर्गीय आत्माओं के साथ रात्रि के एकान्त में वार्तालाप करते थे। वे आत्माएँ आकर उनके साथ महत्वपूर्ण विषयों पर वार्त्तालाप करती थीं।

घठना १९५६ की है भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति जिमी कार्टर सपरिवार जार्जिया के एक पुराने मकान में रहने लगे थे। वह मकान पुराने ढंग का था और चारों ओर लम्बे वृक्ष लगे हुए थे। कहा जाता है कि उस मकान का निर्माण सौ वर्ष पहले १८६० में हुआ था। जिमी कार्टर सन १९५६ से १९६० तक इस मकान में रहे। एक रात्रि उन्होंने मकान के एक कमरे में किसी की चीख सुनी। कौन चीखा था? यह जानने के लिए कार्टर और उनकी पत्नी ने घर का कोना-कोना छान मारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु कहीं कुछ नहीं मिला। कुछ दिनों बाद उस मकान में और भी किरायेदार आये। एक दिन एक किरायेदार के कमरे से मध्य रात्रि में उसका बिस्तर ही गायब हो गया। वह तो सोया का सोया ही रहा किन्तु उसके नीचे का बिस्तर इस तरह गायब हो गया जैसे उसने बिस्तर बिछाया ही न हो। यह देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये। यदि कोई चोर आया भी था तो वह बिस्तर कैसे ले गया? और बिस्तर ही क्यों ले गया? जबकि अन्य कीमती सामान छुए तक नहीं गये थे। यह गुत्थी किसी तरह नहीं सुलझ सकी।

महाकवि विलियम ब्लैक के बारे में कहा जाता है कि वे माइकेल एंजिलो—मोजेज क्लीओ पेट्रा की स्वर्गीय आत्माओं के साथ रात्रि के एकान्त में वार्त्तालाप करते थे। वे आत्माएँ आकर उनके साथ महत्वपूर्ण विषयों पर वार्त्तालाप करती थीं।

कोई बीस वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड के पोर्टस् साउथ रोड इशर कस्बे के पास से जो भी मोटर गुज़रती उसमें बन्दूक की गोली इस तरह लगती कि शीशे, छत या दरवाजे पर एक इंच का छिद्र साफ, सीधा, गोल और व्यवस्थित होता मानो किसी मशीन से किया गया हो। ऐसी घटना लगातार होती रहीं। क्षेत्र में आतंक फैल गया।

पुलिस की छानबीन तथा स्काटलैण्ड यार्ड की वैज्ञानिक जाँच इस घटना का सुराग न लगा सकी। यहाँ तक कि नगरपालिका ने पुलिस के विरुद्ध प्रस्ताव पास किया कि पुलिस जाँच करने में असफल रही है। सुरक्षायें की गईं किन्तु वे बेकार रहीं। धीरे-धीरे आवागमन ठप्प होने लगा।

इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध मनोविज्ञानी और दार्शनिक सी० ई० एम० जोड ने बी० बी० सी० पर एक सम्वाद में भाग लेते हुए कहा था—मैं भूतों पर विश्वास नहीं करता था, पर एक दिन जब मेरे ऊपर प्रयोगशाला में बैठे-बैठे चारों ओर से साबुन की टिकिया बरसनी आरम्भ हो गईं और खोज करने पर उसका कोई आधार नहीं सूझ पड़ा तो मेरा विश्वास बदल गया और मैं अब भूतों के अस्तित्व को मानता हूँ।

केम्ब्रिज विश्व विद्यालय में प्रेतात्माओं सम्बन्धी शोध कार्य करने के लिए एक विशेष विभाग ही खुला हुआ है। अमेरिका की "साइकिकल रिसर्च फाउन्डेशन" द्वारा अनेक वैज्ञानिकों और बुद्धि जीवियों के सहयोग से सुनियोजित शोध कार्य चल रहा है। आशा है इसके परिणाम शीघ्र ही सामने आएँगे। अदृश्य जगत ऐसा विषय है जिसे स्थूल आयामों की परिधि में नहीं देखा जा सकता। उपकरण भी इसमें अधिक मदद नहीं कर सकते। दार्शनिक अनुसन्धान के इस क्षेत्र में किए जा रहे अमृत मंथन के परिणाम निश्चित ही शुभ होंगे।

बम्बई हाईकोर्ट के जज रानाडे उन दिनों कांग्रेस के नेता थे। उन्हें बँगला सीखनी थी। कोई पढ़ाने वाला नहीं रहा था।

जो नाई उनकी हजामत बनाने आता था वह बँगला जानता था। रानाडे ने उसी से पढ़ना आरम्भ कर दिया।

इस पर उनकी पत्नी ने कहा—नाई से न पढ़ें। कोई सुनेगा तो आपके सम्मान को धक्का लगेगा।

रानाडे हँसते हुये बोले, दत्तात्रय ने तो २४ गुरू बनाये थे। उनमें कीड़े-मकोड़े और पशु पक्षी तक थे। फिर हमें नाई को गुरु बनाने में क्यों आपत्ति होनी चाहिए। ज्ञान जहाँ से मिले ग्रहण किया जाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्न बहुधा सार्थक भी होते हैं

आदि कवि वाल्मीकि ने राम अवतार से पूर्व ही उस समूचे कथानक को आद्योपान्त लिखकर रख दिया था। भविष्य पुराण और कल्कि पुराण के सम्बन्ध में भी यही बात है। वे घटनाक्रम से पूर्व ही लिखे गये। यह पूर्वाभास सिद्धि का उच्चस्तरीय स्वरूप है। इसमें घटनाएँ या सम्भावनाएँ प्रधान नहीं होतीं वरन् किन्हीं तथ्यों का उच्च लोकों से मनुष्य पर अवतरण उतरता है। इस प्रयोजन में परिष्कृत ऋतम्भरा प्रज्ञा ही काम आती है। यह प्रयोजन दिव्यदर्शी ऋषियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा ही सम्पन्न करती है।

कभी-कभी सामान्य के बीच असामान्य का दर्शन इसी प्रकार सम्भव होता है। पेड़ों से फल नित्य ही गिरते टपकते रहे हैं। इसे सभी लोग सहज स्वभाव से देखते रहते हैं पर न्यूटन की दिव्य दृष्टि ने उसे विशेष दृष्टि से देखा और पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति होने का रहस्य ढूँढ़ निकाला।

दिव्य दर्शन की दिवास्वप्न जैसे घटिया शब्द के साथ तो संगति नहीं बैठती, पर है वह भी एक ऐसी ही विशेष स्थिति जिसमें मनुष्य सामान्य बुद्धि से ऊपर उठकर ऋतम्भरा प्रज्ञा का सहारा लेता है। न केवल उच्चस्तरीय सोचता है, पर जैसे ही निष्कर्षों पर पहुँचता है, इतना ही नहीं उस स्थिति में वह अदृश्य लोकों से दिव्य आभास, सन्देश भी उपलब्ध करता है।

वेदों को अपौरुषेय कहा जाता है। उनका अवतरण परमात्मा के अभिवचनों की तरह ऋषियों की पवित्र आत्मा में हुआ था। इस प्रकार वे अपौरुषेय माने गये। कागज स्याही, कलम, उपयोग से उन्हें लिपिबद्ध तो मनुष्यों ने ही किया होगा। कुरान के सम्बन्ध में भी ऐसी ही मान्यता है कि उसकी आयतें इलहाय—ईश्वरीय सन्देश की तरह हजरत पर उतरी थीं। अन्य धर्मों में उनके प्रमुख शास्त्रों के सम्बन्ध में इसा से मिलती-जुलती मान्यताएँ हैं।

अमेरिका का एक नागरिक एलन बेधन ने एक रात स्वप्न देखा कि तत्कालीन राष्ट्रपति रावर्ट कैनेडी एक भीड़ के साथ किसी पार्टी में जा रहे हैं। रास्ते में विरोधी दल का एक सदस्य उन्हें गोली मार देता है और राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाती है।

एलन ने अपना सपना "स्वप्न अनुसन्धान संस्था" के रजिस्टरों में नोट कर दिया और अनुरोध किया कि वे इस सपने की वात राष्ट्रपति तक पहुँचा दें. इसके ठीक एक सप्ताह बाद सचमुच यह सपना सत्य हो गया और राष्ट्रपति गोली से मारे गये।

प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता लुई ऐगासिज ने अपनी जीवाश्म सम्बन्धी खोजों की सफलता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि मुझे स्वप्नों के इशारे से अपनी खोजें आगे बढ़ाने की अक्सर प्रेरणा मिलती रही है।

नोबेल पुरस्कार विजेता डा० पार्लिंग ने भी यह बताया था कि उन्हें अनेक नये वैज्ञानिक विचारों की प्रेरणा सपनों में ही मिली है।

महान गणितज्ञ रामानुजम् ने गणित के गूढ़ मसले सपनों में ही हल किये थे। इलाहाबाद पुल की ठीक-ठीक बनावट एक अँग्रेज इन्जीनियर को सपने में ही दिखाई पड़ी थी।

पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) के प्राचार्य लेम्बटन एक वैज्ञानिक गुत्थी को सुलझाने में वर्षों से लगे थे। एक रात को उन्होंने स्वप्न देखा कि सामने की बड़ी दीवार पर उनके प्रश्न का उत्तर चमकदार अक्षरों में लिखा है। जागने पर उन्हें अत्यधिक आश्चर्य हुआ कि इतना सही उत्तर किस प्रकार उन्हें स्वप्न में प्राप्त हो गया।

डा० फ्राइड ने अपनी पुस्तक "इन्टर प्रिटेशन आफ ड्रीम में एक अनूठी घटना से सम्बन्धित स्वप्न के सम्बन्ध में लिखा कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे शहर में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के पुत्र का देहावसान हो गया। रात्रि में अन्त्येष्टि सम्भव न होने से प्रातःकाल करने का निर्णय कर शव के चारों ओर मोमबत्ती जलाकर, एक पहरेदार छोड़कर मृतक का पिता अपने कमरे में जा सोया। नींद लगे थोड़ा ही समय हुआ होगा कि स्वप्न में उनका लड़का उनके सामने खड़ा हो कह रहा है कि क्या मेरी लाश यहीं जल जाने दोगे। यह स्वप्न देखते ही उसकी नींद टूटी और उसने झाँककर देखा तो लाश वाले कमरे में प्रकाश हो रहा था। वह पहुँचा तो देखा कि पहरेदार सो गया है और मोमबत्ती गिर जाने से कफन में आग लगने से लाश ही क्या यदि विलम्ब हो जाता तो मकान ही जल जाता।

इस स्वप्न से फ्राइड को यह स्वीकार करना पड़ा कि स्वप्न जगत को दृश्य जगत एवं स्थूल वासनाजन्य कल्पनाओं तक सीमित करना भूल ही होगी। हाँ अक्षरशः सत्य निकलने वाले सपनों की तह तक हम अवश्य नहीं पहुँच पाते।

विश्व-विख्यात संगीतकार मोजार्ट को एक ललित संगीत धुन एक बग्घी में झपकी लेते समय सूझी। वायलिन वादक तारातिनी को 'द देविल्स सानेट' नामक धुन पूरी की पूरी स्वप्न में सुनाई पड़ी। चौपीन भी अपने संगीत सृजन की प्रेरणा सपनों से पाते थे। नृत्य-पारंगता प्रसिद्ध महिला मेरी विगमैन ने "पास्तोरेल" नामक एक नृत्य की कल्पना स्वप्न—दृश्य के आधार पर की। हेनरी मूर, पाब्लो पिकासो, एण्ड्रयू वेय, वान गाँग, साल्वाडोर डाली आदि शीर्षस्थ चित्रकारों की सृजन चेतना में स्वप्नों का बड़ा हाथ रहा है। साहित्यकारों का तो कहना ही क्या? पुश्किन, टाल्स्टाय, गेटे, शेक्सपीयर, वाण भट्ट, रवीन्द्रनाथ टैगोर, होमर, कालरिन, एडगर एलन पो, नीत्से, दान्ते, वैगनर, विलियम ब्लेक, विलियम बटलर, कीट्स, क्यूबिन आदि असंख्य साहित्यकारों को विभिन्न कृतियों की प्रेरणायें, संकेत सन्देश तथा परामर्श स्वप्नों के माध्यम से ही मिली थीं। हेनरी फारडेस कार्टिसडन पाइनकेयर जैसे गणितज्ञों का स्वप्नों से मार्ग निर्देशन पाने की घटनायें सर्वविदित हैं।

भगवान महावीर के जन्म से पूर्व रानी तिशला ने १४ मार्मिक स्वप्न देखे थे। प्रथम में हाथी, द्वितीय में बैल, तृतीय में सिंह, चतुर्थ में लक्ष्मी, पंचम में सुवासित पुष्पों की माला, षष्टम् में पूर्ण चन्द्र, सप्तम में सूर्य दर्शन, अष्टम में मंगल कलश, नवम् में नीले स्वच्छ जल वाला सरोवर, दशम लहलहाता सागर' एकादश सिंहासन, द्वादश देव विमान, त्रयोदश रत्नराशि और चतुर्दश तेजस्वी अग्नि।

स्वप्न का फलितार्थ मर्मज्ञों ने इस प्रकार किया—हाथी सहायक साथी धैर्य-मर्यादा और बड़प्पन का प्रतीक है। उसके पेट में प्रविष्ट होने का तात्पर्य प्रलम्ब बाहु पुत्र जन्म का द्योतक है। वह महान धर्मात्मा, अनन्त शक्ति का स्वामी, मोक्ष प्राप्त करने वाला, यशस्वी, अनासक्त, ज्ञानी, सुख-शान्ति का उपदेश, महान गुणों वाला, शान्त और गम्भीर, त्रिकालज्ञ, देवात्मा और महान् होगा। भगवान महावीर का जीवन इस स्वप्न का पर्याय था। इसमें सन्देह नहीं। उपरोक्त सभी प्रतीकों का अर्थ मर्मज्ञों ने उन-उन वस्तुओं के गुण प्रभाव आदि की दृष्टि से निकाला जो उपयुक्त ही सिद्ध हुआ।

बाणभट्ट की प्रसिद्ध पुस्तक कादम्बरी की रूपरेखा उन्हें स्वप्न में ही मिली। रवीन्द्रनाथ टैगोर को अपनी गीताञ्जलि पुस्तक की कई कविताओं का आभास स्वप्न में मिला था। होमर, कालरिन, एडगर एलन पो आदि ने अर्ध चेतन स्थिति में—स्वप्न लोक में विचरण कर, उन्हीं प्रेरणाओं के आधार पर अनेक रचनाओं का सृजन किया। नीत्से, दान्ते, वैगनर, विलियम ब्लेक, बिलियम बटलर, कीट्स, क्यूबिन आदि को विभिन्न कृतियों की प्रेरणायें स्वप्नों से मिली थीं।

अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० आट्टो लोवी यह जानने का प्रयास कर रहे थे कि भ्रूणावस्था में शारीरिक तन्तुओं की क्रियाविधि कैसी होती है? उनकी धारणा थी कि यह उत्तेजना स्नायुओं में होने वाले रासायनिक परिवर्त्तनों के कारण होती है। लेकिन इसकी परीक्षा किस प्रकार की जाय? इसी उधेड़ बुन में उनके सत्रह वर्ष गुजर गये और वे प्रयोग पर प्रयोग किये ही जा रहे थे। परन्तु यह धारणा प्रयोगों द्वारा प्रामाणित नहीं हो पा रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९२० की ईस्टर मई की पूर्व सन्ध्या को उन्होंने एक स्वप्न देखा जो विचित्र था और उनके ही प्रयोगों से सम्बन्धित था। नींद खुलने पर स्वप्न याद आया तो स्वप्न में देखे सभी तथ्यों को नोट कर लिया। गहराई से उन तथ्यों का विश्लेषण करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि वे सभी बातें उनके ही प्रयोगों से सम्बन्धित हैं। परन्तु जल्दी-जल्दी में नोट करने पर बहुत से तथ्यों को नोट करना भूल गये थे। स्वप्न की बातों को सोचते-सोचते दोपहर का भोजन कर वे पुनः सो गये तो दुबारा वही स्वप्न देखा। अब की बार उन्हें वह सपना हूबहू याद रहा। जगने पर उसे अक्षरशः नोट कर लिया। प्रयोगशाला में जाकर स्वप्न के आधार पर प्रयोग करना आरम्भ किया। यह प्रयोग एक मेंढ़क पर किया गया और प्रथम प्रयास में ही उनकी धारणा सत्य सिद्ध हुई। फिर तो उन्होंने इस प्रयोग को कई बार दोहराया और हर बार उनकी धारणा पुष्ट होती चली गई। इस प्रयोग से चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में एक ऐसा नया अध्याय जुड़ा जिसने हृदय रोगियों के उपचार की एक नयी दिशा ही खोल दी। इस खोज के लिए उन्हें सन् १९३६ में जीव विज्ञान का नोबुल पुरस्कार भी मिला।

पर जिन्हें एकाग्रता का अभ्यास है, जो मानसिक सन्तुलन ठीक बनाये रहे हैं उन शान्त चित्त व्यक्तियों और अविज्ञात चेतना द्वारा सार्थक स्वप्न भी प्रेरित किये जाते रहते हैं और वे उनके भविष्य निर्माण में बड़े सहायक भी होते हैं।

आवश्यक नहीं कि सब हर किसी को दीखने वाले अगणित स्वप्नों में से सभी को वे सार्थक रूप में ही दीखते हैं। अचेतन की कामनाएँ, भूतकाल की स्मृतियाँ, शरीरगत व्यथाएँ, उद्विग्नताएँ आकांक्षाएँ आदि मनोवृत्ति मिलकर स्वप्नों की सम्भावना किया करती हैं और वे कौतुक कौतूहल मात्र होती हैं।

कुछ विचारकों ने अपने अनुभवों में लिखा है कि उनकी जागृत अवस्था में न सूझने वाले उदात्त तथा प्रगल्भ विचार स्वप्नावस्था में उनके मन को सूझ पड़े और उनको मालूम हुआ कि मानो उनके मन ने अति सुन्दर यथा योग्य भाषा में सब विचार उनके सम्मुख रख दिये हैं। कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि प्रकृति के अत्यन्त गहन रहस्य का पता उन्हें स्वप्नावस्था के मन के व्यापार से लगा। इनके मतों को झुठलाया नहीं जा सकता।

★

एक व्यक्ति ने घर की रक्षा और सर्पों से बचने के लिए नेवला पाला। नेवला बड़ा स्वामिभक्त स्वभाव का था। पति-पत्नी दोनों ही किसी काम से बाहर निकल जाते, तो वह पूरी तरह घर की चौकीदारी करता।

एक दिन गृह स्वामिनी कुँए से जल भरने गयी। बच्चे को सोता छोड़ गयी। इतने में एक भयंकर काला नाग निकला, वह बच्चे को डसने ही वाला था, कि नेवले ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। बच्चा यथावत् जीवित बना रहा।

गृह स्वामिनी पानी लेकर लौटी, तो उसने घर के द्वार पर बैठे नेवले को देखा कि उसके मुँह से खून लिपटा हुआ है। बात की पूरी जाँच-पड़ताल किये बिना ही यह अनुमान लगा लिया कि इसने मेरे बच्चे को मार डाला। आवेश में उससे इतना भी न बन पड़ा कि वस्तुस्थिति को जाने और जाँचे। उसने जल से भरा घड़ा नेवले के ऊपर पटक दिया। वह तत्काल चूर-चूर हो गया।

घर में घुसकर देखा, बच्चा हंस-खेल रहा था। सर्प मरा पड़ा है। वस्तुस्थिति का अनुमान लगाया, तो उसने अपने आपको बहुत धिक्कारा और आवेश की आतुरता में होने वाले अनर्थ को समझा।

गृहस्थ जीवन में भी ऐसे कई अवसर आते हैं। उस समय मन को सन्तुलित बनाए रखना ही सच्ची साधना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भौतिक विज्ञान के अभिशाप और वरदान

विगत एक दो शताब्दियों में भौतिक विज्ञान की क्रमिक उन्नति हुई है। विशेषतया पिछले ५० वर्षों में प्रकृति के रहस्यों को खोज निकालने में आश्चर्यजनक सफलता हस्तगत हुई है। उस उत्साह में जो कदम वैज्ञानिकों, राजनेताओं और अर्थ शास्त्रियों के तालमेल से उठे हैं। उन्हें प्रारम्भिक दिनों में अत्यन्त उत्साहवर्धक माना गया था और समझा गया था कि इस आधार पर प्रगति के नये द्वार खुलने जा रहे हैं। किन्तु दूरदर्शी विवेकशीलता का समन्वय न होने से उस प्रगति की ऐसी खामियाँ सामने आ रही हैं जिनसे प्रतीत होता है कि उपलब्धियों का प्रयोग करने की दिशा में कहीं कोई भारी चूक हो गई है, अन्यथा चन्द दिनों में ही इतने संकट क्यों आ खड़े होते जिनका समाधान समझ से बाहर होता चला जा रहा है।

विज्ञान का प्रथम चरण औद्योगीकरण की दिशा में उठा। कम लागत में, अधिक मात्रा में,अधिक साफ-सुथरी चीजें बनाते समय सोचा यह गया था कि सर्वसाधारण को सस्ते मोल में सुविधाएँ उपलब्ध होंगी और निर्माताओं को अधिक लाभ कमाने का अवसर मिलेगा। इस मान्यता पर उन दिनों आम सहमति थी। उत्साह भी पूरा था। धन का विनियोग भी खुले हाथों हुआ। उत्पादन भी वैसा ही साफ सुथरा और सुन्दर सामने आया जैसा कि सोचा गया था। किन्तु उतावली में उठाये गये कदम नई समस्याएँ अविलम्ब उत्पन्न करने लगे। उलझनें ऐसी हैं जो सुलझने में नहीं आ रही और लगता है आरम्भ करते समय भविष्य में उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर समुचित विचार नहीं किया गया।

बड़ी मशीनों में थोड़े आदमी बहुत उत्पादन करते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि जिन उत्पादनों में बहुसंख्यक श्रमिकों की आवश्यकता होती थी, वह थोड़े ही लोगों द्वारा विनिर्मित होने लगा। फलतः बेकारी बेतहाशा बढ़ी और ठाली बैठे लोगों ने उचित अनुचित उपद्रव खड़े करने आरम्भ किये। आन्दोलनों ने—अपराधों ने गति पकड़ी और सार्वजनिक शान्ति में विक्षेप पड़ना आरम्भ हुआ।

बड़ी मशीनों ने अपने-अपने देश की खपत को ध्यान में न रखते हुए अत्यधिक माल बनाया। इसे खपाने के लिए मन्डियों की आवश्यकता पड़ी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये नये किस्म का आर्थिक उपनिवेशवाद खड़ा हुआ राजनैतिक उपनिवेशवाद तो समर्थों की आपसी प्रतिद्वन्द्विता के कारण हलका पड़ा, पर उसके स्थान पर नया आर्थिक उपनिवेशवाद खड़ा हुआ। इसके लिए शीत युद्धों का आश्रय लिया गया और कृत्रिम अभाव का सृजन किया गया। फलतः देशों की स्वाभाविक सुख-शान्ति में भारी व्यवधान खड़ा हो गया।

बड़े कारखानों से उत्पन्न होने वाला कचरा एक समस्या बना। कुछ को नदियों में बहाया गया, कुछ हवा में उड़ा, कुछ ने जमीन घेरी। चूँकि यह कचरा विषैला होता है इसलिए उसमें जलाशयों की विषाक्तता बढ़ी। साँस लेने की हवा में जहर घुला और ईंधन के लिए, फर्नीचर के लिए पेड़ कटे और जलावन आवश्यकताओं के लिए सर्वप्रथम पेड़ों पर हाथ साफ हुआ। यह विषाक्तता कितनी अधिक हानि पहुँचा रही है इसका अनुमान बढ़ती हुई बीमारियों की व्यथा और उनके इलाज पर होने वाले बढ़ते खर्च से लगाया जा सकता है।

बड़ी मशीनों ने अधिक मात्रा में ईंधन की माँग की। इसके लिए खनिज तेल और कोयले का सहारा लिया गया। यह भण्डार जमीन में एक सीमित मात्रा में ही है। गणितज्ञों ने बताया है कि जिस अनुपात में यह खर्च हो रहा है वही गति रही तो पचास वर्ष के भीतर तेल और कोयले का भण्डार चुक जायगा। बिजली उत्पादन के लिए भी ईंधन चाहिए। उसके बिना बिजली भी न बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकेगी। अणु भट्टियों के सम्बन्ध में भी यही संकट है। यूरेनियम, प्लेटेनियम जैसे पदार्थ भी थोड़ी ही मात्रा में है। इसलिए अणु भट्टियाँ भी अधिक दिन काम न दे सकेंगी। इनसे निकलने वाला कचरा और भी भयावह है उसे कहाँ पटका जाय, यह प्रश्न अभी अनिर्णीत ही पड़ा है।

पिछले पचास वर्षों में दो विश्व युद्ध हो चुके। तीसरे के लिए मुहूर्त ही टल रहा है। युद्ध के कारणों में उत्पादनों को खपाने के लिए क्षेत्रों की आवश्यकता ही प्रमुख कारण है। जो देश युद्ध सामग्री बनाते हैं उनकी बिक्री तभी हो सकती है, जब युद्ध हो। अन्यथा वे कारखाने बन्द होंगे। पूँजी जाम होगी और बेकारी फैलेगी। इसलिए युद्ध भले ही अणु बमों से हो या रासायनिक आयुधों से समय की एक आवश्यकता बन गया है।

इतनी सारी समस्याओं का एकमात्र कारण विज्ञान का वह चरण है जिसने बड़ी मशीनें लगाने का निश्चय किया। यह साँप छछून्दर जैसी गति है जो न निगलते बनती है न उगलते।

विज्ञान ने राजनेताओं को भड़काया है कि वे थोड़ा सा प्रयास करके चक्रवर्ती बन सकते हैं। युद्ध की तैयारी में जनता को अधिकाधिक टैक्स देने पड़ रहे हैं फलतः मँहगाई बढ़ रही है और मध्यवर्ती व्यक्ति का जीवन दुर्लभ हो रहा है। फिर हथियारों के जो पहाड़ बीसियों देशों ने खड़े कर लिये हैं उनका क्या हो? वे खाने पहनने के काम तो आते नहीं, इस उत्पादन का उपयोग जन संहार में ही होता है और उसका कष्ट मरने वालों से भी अधिक उन्हें भुगतना है जो अनाथ अपंग बनकर किसी प्रकार जीवित बच रहेंगे।

यदि विज्ञान ने सही कदम उठाया होता। बड़ी मशीनों का निर्माण न किया होता तो निश्चय ही उपरोक्त समस्याओं में से एक भी मुसीबत खड़ी न होती। नदियों में गिराया हुआ कचरा घुमा फिरा कर मनुष्य के ही पीने के काम आता है। जहरीली गैस जहाँ साँस द्वारा शरीर में जाती है वहाँ अब तेजाबी वर्षा का क्रम चल पड़ा है। उसके सहारे जो खाद्य उपजेगा वह भी जहरीला होगा। तीव्र विषों से कुछ ही समय में मृत्यु हो जाती है पर जहरीले अन्न जल में वायु के कारण बढ़ने वाली रुग्णता से मनुष्य को चित्र विचित्र बीमारियों का शिकार बनना, तड़पते हुए अकाल मृत्यु मरना पड़ता है। बढ़ते हुए विज्ञान के चरण भले ही अमीरों की अमीरी बढ़ा सकें पर सर्वसाधारण का उससे सब प्रकार अहित ही होगा।

उदीयमान विज्ञान ने एक और बौद्धिक एवं भावनात्मक संकट खड़ा किया है। चेतना को जड़ की उत्पत्ति बताया है। फलतः नैतिक आचरणों का कोई मूल्य नहीं रह गया। नास्तिकता 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' के सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है। उसने जहाँ मांसाहार का समर्थन किया है। वहाँ सामाजिक—नैतिक वर्जनाओं को व्यर्थ बताकर अपनी सुविधा को प्रधानता देने के लिए उकसाया है। इस दशा में त्याग, बलिदान, उदारता पुण्य, परमार्थ का कोई महत्व नहीं रह जाता। जब मनुष्य चलता-फिरता पेड़ पौधा बताया गया तो एक दूसरे को लाभ या हानि पहुँचाने के लिए गणितीय सिद्धान्त ही काम करेंगे। जब बूढ़े बैल को, न कमाने वाले बकरे को कसाई के यहाँ भेजा जा सकता है तो वृद्धों में बीमारों को अपंगों को भी मौत के घाट उतार देने में क्या झिझक होनी चाहिए? जब पशु पक्षियों में नर मादा भर का रिश्ता होता है। जब मनुष्य को जड़ पदार्थों की—पेड़ पौधों की, पशु पक्षियों की श्रेणी में गिन लिया गया तो फिर माँ, बहिन, बेटी आदि के पवित्र रिश्ते भी बेकार हो जाते हैं। इस ओर प्रवृत्तियाँ अब बढ़ ही गई हैं। घर, मुहल्ले, पड़ौस परिवार में ही व्यभिचार का प्रवाह बढ़ रहा है। विवाह व्यापार हो गया है। छोटे वर्गों में लड़की से पैसा वसूल किया जाता है और बड़े वर्गों में लड़के से दहेज वसूल किया जाता है। न देने या कम देने पर जला देने, निकाल देने आदि की घटनाएँ दिनों-दिन बढ़ती जाती हैं। यह परोक्ष रूप से भौतिकवादी चिन्तन का ही प्रतिफल है। बच्चों का अपहरण और माँगी रकम न देने पर उनका कतल यह अब अनहोनी घटना नहीं रही। कुछ समय पूर्व चोर डाकू भी स्त्री-बच्चों पर हाथ नहीं उठाते थे पर अब स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, लोक-परलोक, आत्मा-परमात्मा की मान्यताओं ने—भौतिकवादी दर्शन ने समाप्त कर दिया तो मनुष्य को और मछली को मारने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाने में अन्तर ही क्या रह गया। नागरिकता और समाज व्यवस्था के नाम पर मनुष्य की पशुता को दबाया नहीं जा सकता। उसके लिए दार्शनिक निष्ठा की आवश्यकता होती है। विज्ञान की बौद्धिक छलाँगों ने जब उसे समाप्त कर दिया जो मनुष्य को संयमी सदाचारी बनाने का कोई ठोस आधार रह ही नहीं गया। आदर्शवाद की जब जड़ ही कट गई तो दिखावटी ढिंढोरा पीटने भर से बात कुछ बनती नहीं है।

आर्थिक क्षेत्र में बेकारी, बीमारी, गरीबी, विषाक्तता और अगले दिनों ईंधन की समाप्ति से तथाकथित प्रगति का बंटाढार, यह विज्ञान के वे अनुदान हैं जिन्हें सर्वसाधारण को उपहार में दिया है। महायुद्ध की विभीषिका का नंगी तलवार की तरह संसार की गरदन पर लटकाने का श्रेय भी उन ऐटमी हथियारों को है जिन्हें विज्ञान की सबसे बड़ी उपलब्धि माना जाता है। शहरों की अन्धाधुन्ध बढ़ोत्तरी और देहातों से भगदड़ का कारण भी इसी वैज्ञानिक प्रगति का है। इसी ने हजारों को लखपति करोड़पति बनाया है और लाखों करोड़ों को एक तरफ रूखा-सूखा खाने के लिए विवश किया है। डॉक्टर बढ़े हैं पर उनके अनुपात में मरीजों की अत्यधिक वृद्धि हुई है। लोग जिन्दा तो हैं पर मुर्दों से गई-गुजरी परिस्थितियों में।

नैतिकता के आधार पर जब तक धर्म और अध्यात्म रहे तब तक बाँध का पानी इस प्रकार नहीं टूटा था जिसमें खेत खलिहान सभी डूब जायें। बुद्धिवाद नये युग का दर्शन है। दूसरे शब्दों में इसे विज्ञान का दर्शन कह सकते हैं। इसमें सुविधा संकलन करने के तर्कों की प्रमुखता हैं। फल यह हुआ है कि हम मछली निगलने वाले बगुले—अपने ही परिवार में कामोपयोग की छूट पाने वाले कुत्ते और अपनी बिरादरी को ही फाड़-चीरकर रख देने वाले भेड़िये की बिरादरी में सम्मिलित हो गये हैं। हम अर्थ प्रधान हैं, विलास और सुविधा के अतिरिक्त हमें और कुछ नहीं चाहिए। इन्हीं आकाँक्षाओं की जब जरूरत होती है समाज निष्ठा जैसी चादर उढ़ा देते हैं। विज्ञान ने जब मनुष्य को चलता-फिरता पौधा कहा है तो उसे क्यों न माना जाय। धर्म जब अफीम की गोली और ईश्वर अन्ध-विश्वास उसी मन्च से घोषणापूर्वक कहा गया है तो उस मान्यता से क्योंकर इनकार किया जाय?

इन अभिशापों से उद्विग्न मनुष्य मरना तो नहीं चाहता पर जीने की भी उसकी कोई इच्छा नहीं है। इसलिए नशेबाजी का आश्रय लिया गया है। बच्चे, बूढ़े, नर नारी, 'येन केन प्रकारेण' उन्हीं का आश्रय ले रहे हैं। तमाखू चाय का फैशन पुराना हो गया अब मझोले लोग शराब और बड़े लोग हीरोइन का सेवन करते हैं। जितनी देर उनमें डूबे रहते हैं उतनी देर गम गलत कर लेते हैं अन्यथा विज्ञान का अभिशाप उन्हें दशों दिशाओं से नोंच-नोंचकर खाता है।

*****

मैत्री आदर्शों की कीमत पर निभाई नहीं जा सकती। यदि किसी ने कोई परोपकार किया है तो उसके बदले में अनीति पूर्वक कोई माँग आए तो, आदर्शनिष्ठ व्यक्ति उसे ठुकरा देते हैं। चाहे उन्हें कृतघ्न ही क्यों न कहाना पड़े।

एक सज्जन त्रिवेणी नहा रहे थे। पैर फिसला और डूबने लगे। एक दूसरे शिक्षित व्यक्ति ने तैर कर निकाला। डूबने वाले ने अपना कलकत्ता का पता दिया। "कभी उधर आना हो तो, कोई काम बतावें।" जिन्हें बचाया गया था, वे प्रसिद्ध बंगाली पत्र प्रवासी के सम्पादक थे। वे सज्जन थोड़े पढ़े लिखे थे, एक कविता बनाकर लाये। अपना डूबने निकालने वाला परिचय देते हुये कहा--यह कविता "प्रवासी" में छाप दें कविता छपने काबिल न थी सो उनने कहा यह छप न सकेगी, भले ही आपने जहाँ से निकाला था पुन: मुझे वहीं उठाकर पटक दें। लेकिन अपने उपकार के बदले में ऐसी अपेक्षा मुझसे न रखें जिससे मुझे अपनी आत्मा से समझौता करना पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलिवैश्व हमारा दैनिक धर्म कर्त्तव्य

यज्ञ का अर्थ है—पुण्य, परमार्थ। उच्चकोटि का स्वार्थ ही परमार्थ है। उससे लोक कल्याण भी होता है और बदले में अपने को भी श्रेय सम्मान सहयोग आदि का लाभ होता है।

गीताकार ने जीवन में यज्ञीय तत्वज्ञान के समावेश करने पर बहुत जोर दिया है और कहा है कि यज्ञ विधा की उपेक्षा करने पर न लोक बनता है न पर लोक। जो यज्ञ से बचा हुआ खाते हैं। वे सब पापों से छूट जाते हैं और जो अपनी उपलब्धियों को अपने लिए ही खर्च कर लेते हैं वे पाप खाते हैं।'

जिस प्रकार नित्य कर्मों में भोजन, शयन, स्नान, मल विसर्जन आदि को आवश्यक माना गया है। उसी प्रकार लोक मंगल के लिए श्रमदान, अंशदान की भी आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में उपेक्षा बरती जाय तो समाज में दुष्प्रवृत्तियाँ बढ़ेंगी और उसका स्तर गिरेगा। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। जिस समाज में वह रहता है उसके प्रभाव से बच नहीं सकता। इसलिए आत्म-कल्याण का प्रयोजन पूरा करने के लिए भी अपनी जीवनचर्या में यज्ञ विद्या को सम्मिलित रखकर चलना चाहिए और उसे यदा-कदा नहीं नित्य नियमित रूप से करना चाहिए।

दैनिक बलिवैश्व प्रक्रिया के पाँच विभागों को पाँच 'महायज्ञ' कहा गया है। विशाल आकार-प्रकार से अग्निहोत्रों को जहाँ मात्र 'यज्ञ' नाम से पुकारा गया है वहाँ कुछ मिनटों में पूरी हो जाने वाली क्रिया को जरासी सामग्री लगने वाली क्रिया को महायज्ञ क्यों कहा गया? इसका सीधा-सा उत्तर है कि बलिवैश्व को मात्र कृत्य ही नहीं जीवन नीति का आवश्यक अंग माना गया है और उसे कभी भी न छोड़ने के लिए कहा गया है। जबकि विशाल यज्ञ जब कभी ही होते हैं और उनका प्रयोजन भी सामयिक समस्याओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होते हैं जब कि बलिवैश्व को आवश्यक कर्त्तव्यों की श्रेणी में गिना गया है और उन्हें कर लेने के उपरान्त तब भोजन ग्रहण करने का अनुशासन बनाया गया है। साथ ही उसकी परिणति का प्रतिफल भी बहुत आकर्षक बताया गया है।

यों बलिवैश्व का विधान कुछ बड़ा है और उसे पूरा करने के लिए संस्कृत भाषा के निर्धारित मन्त्रों को भी याद करना पड़ता है। पर उतना न बन पड़े तो उसे अति संक्षेप में रसोई पकाने वाली महिला भी बिना किसी कठिनाई के पूरा करती रह सकती है।

शांखायन, आश्वलायन, पराकर, गोभिल, खादिर आदि गृह्य सूत्रों में तथा शतपथ, गोपथ, आदि ब्राह्मणों में बलिवैश्व की उपयोगिता एवं विधि-व्यवस्था का निर्देश किया गया है। शांखायन, गृह्य सूत्र के अध्याय (२) काण्ड १७, सूत्र ४ में कहा गया है कि जो प्रायः-सायं वैश्व देव यज्ञ करते हैं वे लक्ष्मी, दीर्घजीवन, यश तथा सुमन्तति प्राप्त करते हैं।

इस कल्प की उपेक्षा करने वालों की भर्त्सना करते हुए कहा गया है कि—

वैश्व देव विहीना ये आतिथ्येन बहिष्कृतया।
सर्वे ते नरकं यान्ति काक योनि व्रजन्ति च ॥

—पाराशर स्मृति १।५७

जो बलि वैश्व नहीं करते। अतिथि सत्कार से विमुख रहते हैं। वे नरक में पड़ते और कौए की योनि में जन्म लेते हैं।

बलि वैश्व में सम्मिलित पाँच यज्ञ हैं। उनका परिचय इस प्रकार है।

(१) ब्रह्म-यज्ञ का अर्थ है—ब्रह्मज्ञान आत्मज्ञान की प्रेरणा। ईश्वर और जीव के बीच चलने वाला पारस्परिक आदान-प्रदान।

(२) देव ज्ञान का उद्देश्य है—पशु से मनुष्य तक पहुँचाने वाले प्रगति क्रम को आगे बढ़ाना। देवत्व के अनुरूप गुण, कर्म, स्वभाव का विकास, विस्तार, पवित्रता और उदारता का अधिकाधिक सम्वर्धन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) ऋषि यज्ञ का तात्पर्य है—पिछड़ों को उठाने में संलग्न करुणार्द्र जीवन-नीति। सदाशयता के सम्वर्धन की तपश्चर्या।

(४) नर यज्ञ की प्रेरणा है—मानवी गरिमा के अनुरूप वातावरण एवं समाज व्यवस्था का निर्माण। मानवी गरिमा का संरक्षण। नीति और व्यवस्था का परिपालन नर में नारायण का उत्पादन। विश्व मानव का श्रेय साधन।

(५) भूत यज्ञ की भावना है—प्राणि मात्र तक आत्मीयता का विस्तार अन्यान्य जीवधारियों के प्रति सद्भावना पूर्ण व्यवहार। वृक्ष वनस्पतियों तक के विकास का प्रयास।

चूँकि बलिवैश्व को भोजन से पूर्ण करने का विधान है इसलिए वे इसे आसानी से कर सकती हैं। चूल्हे में से पहली बनी रोटी के एक-एक टुकड़े को घी और शकर में मिला कर गायत्री मन्त्र बोलते हुए पाँच आहुतियों के रूप में होम देने की क्रिया जहाँ तनिक-सा समय और तनिक-सा शाकल्य लगने के कारण अत्यन्त सुगम है वहाँ घर का वातावरण धार्मिक बनने की दृष्टि से उसका महत्व असाधारण है।

बलिवैश्व में जिन पाँच आदर्शों का प्रतिपादन पाँच महायज्ञों के रूप में किया गया है उन्हें मानवी गरिमा को समुन्नत बनाने वाले 'पञ्चशील' कह सकते हैं बौद्ध धर्म में पंचशीलों का बहुत ही विस्तारपूर्वक वर्णन विवेचन किया गया है। उनका बहुत महत्व-माहात्म्य बताया गया है। इन पंचशीलों को जीवनचर्या एवं समाज व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों से वर्गीकृत भी किया गया है। इस प्रकार पंचशीलों के वर्ग उपवर्ग प्रकारान्तर से व्यक्ति एवं विश्व की समस्याओं को सुलझाने सर्वतोमुखी प्रगति का द्वार खोलने में महत्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करते हैं।

पारिवारिक पंचशीलों में (१) श्रमशीलता (२) सुव्यवस्था (३) मितव्ययता (४) शिष्टाचार और सहकारिता प्रधान हैं। जिन व्यक्तियों में यह गुण होंगे वे स्वयं सुखी रहेंगे और अपने सम्पर्क क्षेत्र को प्रसन्न तथा समुन्नत रखेंगे। जिन परिवारों में यह सत्प्रवृत्तियाँ व्यवहृद होती होंगी, उसके सदस्यों का समुन्नत सुसंस्कृत होना सुनिश्चित है।

इसलिए जब अवसर हो तब घर के लोगों को एकत्रित करके समझाते रहना चाहिए कि मनुष्य पेट भरने के लिए ही पैदा नहीं हुआ है। उसे दूसरों का भी ध्यान रखना चाहिए और पिछलापन दूर करने तथा सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने में योगदान देना आवश्यक कर्त्तव्य मानकर उनके लिए समय और साधन जुटाते ही रहने चाहिए।

साथ ही बलिवैश्व के पाँच महायज्ञों में जिन पंचशीलों की ओर संकेत है उन्हें अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में प्रमुख स्थान देना चाहिए। समग्र सुख शान्ति का यही मार्ग है।

—●—

कवीन्द्र रवीन्द्र ने एक बड़ा मार्मिक गीत रूपक लिखा है—मैं घर-घर भीख माँगने के लिए गाँवों में गया हुआ था। तभी तेरा स्वर्ण रथ मुझे दिखायी पड़ा और मुझे उम्मीद बँधी कि मेरे बुरे दिनों का अब अन्त होने वाला है। तेरा रथ पास आकर रुका और मैं बिना माँगे दान की प्रतीक्षा में तेरे सामने जाकर खड़ा हो गया। तेरी दृष्टि मुझ पर पड़ी और तू मुस्कराता हुआ रथ से उतर आया। मैंने समझा मेरा सौभाग्य मेरे पास आ गया, पर तूने ही मेरे सामने हाथ पसार दिया। कैसा परिहास किया तू ने भी—भिक्षुक से भिक्षा माँगी ! मैं बड़ी उलझन में पड़ गया दबे मन से मैंने झोली से एक अन्न का दाना निकाल कर तुझे दे दिया। वह दाना ले कर तू चला गया और मैं निराशा से भर उठा, पर सूर्यास्त के समय जब झोली खाली की, तो उसमें से सोने का एक दाना निकला। मैं जोर-जोर से रोने लगा—"काश, मैंने तुझे सर्वस्व अर्पित कर दिया होता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीत का प्राणियों और वनस्पतियों पर प्रभाव

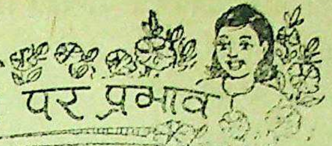

संगीत के माध्यम से इलेक्ट्रो मैग्नेटिक लहरें उत्पन्न होती हैं जो स्नायु प्रवाह पर वांछित प्रभाव डालकर उनकी सक्रियता ही नहीं बढ़ातीं—विकृत चिन्तन को रोकती व मनोविकार मिटाती हैं।

स्वर शक्ति की सृजनात्मक सामर्थ्य पर अब वैज्ञानिक धीरे-धीरे ध्यान देने लगे हैं। जहाँ एक ओर शब्द शक्ति चालित बम एवं रॉबॉट तैयार हो रहे हैं, वहाँ प्रदूषण निवारण, मनोविकार शमन, शरीर रोग निवारण में तरंगों का प्रयोग हो रहा है। पशुओं की प्रजनन शक्ति बढ़ाने, पौधों के बढ़ने की गति तीव्र करने तथा अधिक फसल उगा सकने में भी वैज्ञानिकों को मदद मिली है।

पराध्वनि (अल्ट्रासोनिक) तरंगों के ऊपर वैज्ञानिकों द्वारा अब तेजी से प्रयोग किये जा रहे हैं। इसकी सामर्थ्य को उन्होंने लेसर किरणों से भी अधिक शक्तिशाली पाया है। कर्णातीत—श्रवणातीत--अनसुनी ध्वनियों की सामर्थ्य के परिमाण को अभी पूरा जाना भी नहीं जा सका है। "सुपर सोनिक रेडियो मीटर" बना सकने में वैज्ञानक सफल अवश्य हो गए हैं जिसमें अन्तरिक्ष में संव्याप्त अगणित ध्वनि प्रवाहों को सुना-जाना जा सकता है। वैज्ञानिकों का ऐसा कथन है कि ध्वनि ऊर्जा की बहुमूल्य सम्पदा अन्तरिक्ष में बिखरी पड़ी है जिसका यदि सही उपयोग किया जा सके तो मनुष्य समुदाय की सारी आवश्यकताएँ पूरी की जा सकती हैं।

गायत्री महामन्त्र के समवेत स्वरित जप से उत्पन्न पराध्वनि में सारे वातावरण को कंपा देने की सामर्थ्य विद्यमान है, ऐसा विभिन्न स्वर वैज्ञानिकों का मत है।

मनुष्यों तक ही संगीत प्रभाव सीमित नहीं है वरन् उसे पशु पक्षी भी उसी चाव से पसन्द करते हैं और प्रभावित होते हैं। संगीत सुनकर प्रसन्नता व्यक्त करना और उसका आनन्द लेने के लिए ठहरे रहना यही सिद्ध करता है कि वह उन्हें रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होता है। अन्य जीवों की जन्मजात प्रवृत्ति यही होती है कि उनकी स्वाभाविक पसन्दगी उनके लिये लाभदायक ही सिद्ध होती है। पशु पक्षियों पर संगीत का अच्छा प्रभाव देखते हुए इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि वह मनुष्यों की तरह अन्य जीवों के लिये भी न केवल प्रिय वरन् उपयोगी भी है।

पशु मनोविज्ञानी डा० जार्जकेर विल्स ने छोटे जीव जन्तुओं की शारीरिक और मानसिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव का लम्बे समय तक अध्ययन किया है। घर में बजने वाले पियानो की आवाज सुनकर चूहों को अपने बिलों में शान्तिपूर्वक पड़े हुए उन्होंने कितनी ही बार देखा है। बेहिसाब उछल-कूद करने वाली चूहों की चाण्डाल चौकड़ी मधुर वाद्य यन्त्र सुनकर किस प्रकार मन्त्र-मुग्ध होकर चुप हो जाती है यह देखते ही बनता है।

फ्राँसीसी प्राणि शास्त्री वास्तोव आन्द्रे ने थलचरों, जलचरों और नभचरों पर विभिन्न ध्वनि प्रवाहों की,स्वर लहरियों की होने वाली प्रतिक्रियाओं का गहरा अन्वेषण किया है तद्नुसार वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि संगीत प्रायः प्रत्येक जीवधारी के मस्तिष्क एवं नाड़ी संस्थान पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालता है। उनकी प्रकृति और मनः स्थिति के अनुरूप यदि सङ्गीत बने तो उन्हें मानसिक प्रसन्नता और शारीरिक उत्साह प्राप्त होता है। किन्तु उनकी कर्णेन्द्रिय को कर्कश लगने वाली अरुचिकर ध्वनियाँ बजाई जायें तो उससे उन्हें अप्रसन्नता होती है और स्वास्थ्य सन्तुलन भी बिगड़ता है। किस प्राणी की किस स्थिति में किस प्रकार का संगीत क्या प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है, इसका अध्ययन करने वाले जर्मन प्राणि शास्त्री यह आशा करते हैं कि भविष्य में विभिन्न जीवधारियों की मनःस्थिति में आशाजनक परिवर्त्तन समय-समय पर किया जा सकेगा हिंस्र पशुओं को भी कुछ समय के लिये शान्त किया जा सकेगा और अवाँछनीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवों को उनके लिए अरुचिकर सिद्ध होने वाली ध्वनियाँ करके उन्हें दूर भगाया जा सकता है। इसी प्रकार उन्हें कई प्रवृत्तियों में संलग्न एवं उदासीन बनाने का कार्य भी संगीत के माध्यम से किया जा सकता है।

संगीत का प्रभाव पशु-पक्षियों पर गहरा पड़ता है। वेणु नाद सुनकर सर्प अपनी कुटिलता भूलकर लहराने लगता है। कई प्रान्तों में बहेलिये बीन बजाते हैं, उससे मुग्ध हुए हिरण, मृग निर्भय होकर पास चले आते हैं। हालैण्ड में गायें दुहते समय मधुर संगीत सुनाया जाता है। वहाँ की सरकार ने ऐसा प्रबन्ध किया है कि जब गायें दुहने का समय हो तब मधुर संगीत ब्राडकास्ट किया जाय, ग्वाले लोग रेडियो सैट दुहने के स्थानों पर रख देते हैं। संगीत को गायें बड़ी मुग्ध होकर सुनती हैं और उनके स्नायु संस्थान पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वे १५ से लेकर २० प्रतिशत तक अधिक दूध दे देती हैं। ये प्रयोग भारत में भी किए गये हैं।

दुधारू पशुओं को दुहते समय यदि संगीत ध्वनि होती रहे तो वे अपेक्षाकृत अधिक दूध देते हैं। ऐसा देखा गया है।

सील मछली का संगीत प्रेम प्रसिद्ध है। कुछ समय पूर्व पुर्तगाल के मछहारे अपनी नावों पर वायलिन बजाने की व्यवस्था बनाकर निकलते थे। समुद्र में दूर-दूर तक वह ध्वनि फैलती तो सील मछलियाँ सहज ही नाव के इर्द-गिर्द इकट्ठी हो जातीं और मछहारे उन्हें जाल में पकड़ लेते।

घरेलू कुत्ते संगीत को ध्यानपूर्वक सुनते और प्रसन्नता व्यक्त करते पाये जाते हैं। वन विशेषज्ञ जार्ज ह्वस्हे ने अफ्रीका के काँगो देश में चिपाँजी तथा गुरिल्ला वन मानुष को संगीत के प्रति सहज ही आकर्षित होने वाली प्रकृति का पाया है। उन्होंने इन वानरों से सम्पर्क बढ़ाने में मधुर ध्वनि वाले टैप रिकार्डरों का प्रयोग किया और उनमें से कितनों को ही पालतू जैसी स्थिति का अभ्यस्त बनाया। नार्वे के कीट विज्ञानी डा० हडसन शहद की मक्खियों को अधिक मात्रा में शहद उत्पन्न करने के लिए संगीत को अच्छा उपाय सिद्ध किया है। अन्य कीड़ों पर भी वाद्य यन्त्रों के भले-बुरे प्रभावों का उन्होंने विस्तृत अध्ययन किया है और बताया है कि कीड़े भी संगीत से बिना प्रभावित हुए नहीं रहते।

डा० सिंह ने दस वर्ष तक एक बाग का दो हिस्सों में परीक्षण किया। एक के पौधों को कु० स्टेला पुनैया वायलिन बजाकर गीत सुनाती दूसरे को खाद, पानी, धूप की सुविधायें तो समान रूप से दी गईं किन्तु उन्हें स्वर माधुर्य से वंचित रखकर दोनों का तुलनात्मक अध्ययन किया। जिस भाग को संगीत सुनने को मिला उनके फूल पौधे सीधे, घने, अधिक फूल, फलदार सुन्दर हुए। उनके फूल अधिक दिन तक रहे और बीज निर्माण द्रुत गति से हुआ। डा० सिंह ने बताया कि वृक्षों में प्रोटोप्लाज्मा गड्ढे भरे द्रव की तरह उथल-पुथल की स्थिति में रहता है संगीत की लहरियाँ उसे उस तरह लहरा देती हैं, जिस तरह वेणुनाद सुनकर सर्प प्रसन्नता से झूमने और लहराने लगता है। मनुष्य शरीर में भी ठीक वैसी ही प्रतिक्रिया होती है। गन्ना, चावल, शकरकन्द जैसे मोटे अनाजों पर जब संगीत अपना चिरस्थायी प्रभाव छोड़ सकता है तो मनुष्य के मन पर उसके प्रभाव का तो कहना ही क्या ?

गन्ना, धान, शकरकन्द, नारियल आदि के पौधों और पेड़ों के विकास पर क्रमवद्ध संगीत का उत्साहवर्धक प्रभाव पड़ता है यह प्रयोग भारत के एक कृषि विज्ञानी संगीतकार डा० टी० एन० सिंह ने कुछ समय पूर्व किया था। कोयम्बटूर के सरकारी कृषि कालेज के अन्वेषण ने पौधों पर संगीत के अनुकूल प्रभाव की रिपोर्ट दी है।

कनाड़ा के किसान अपने खेतों के चारों ओर लाउडस्पीकर लगाकर रखते हैं, उनका सम्बन्ध रेडियो से जोड़ दिया जाता है और संगीत कार्यक्रम प्रसारण प्रारम्भ कर दिया जाता है। विस्कानिसन के संगीत शक्ति के व्यापक शोधकर्त्ता श्री आर्थरलाकर का कहना है कि संगीत से जिस तरह पौधों को रोगाणुओं से बचाया जा सकता है, उसी प्रकार मनुष्यों की रोग-निरोधक शक्ति का विकास भी किया जा सकता है।

****

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुण्डलिनी महाशक्ति एक परिचय

कठोपनिषद् के यम नचिकेता सम्वाद में जिस पंचाग्नि विद्या की चर्चा हुई है। उसे कुण्डलिनी शक्ति की पंच विधि विवेचना कहा जा सकता है। श्वेताश्वर उपनिषद् में उसे 'योगाग्नि' कहा गया है—

नतस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्नि मयं शरीरम्।

चैनिक योग प्रदीपिका में उसे 'स्पिरिट फायर' नाम दिया गया है। जानबुडरफ सरीखे तन्त्रान्वेषी उसे सर्पवत् बलयान्विता सर्पेन्ट नाम देते रहे हैं।

ऋषि शिष्या मैडम ब्लैशेटस्की ने उसे विश्व-व्यापी बिद्यु त शक्ति—'कास्मिकी इलैक्ट्रिसिटी' नाम दिया है। वे उसकी बिवेचना बिश्व विद्यु त के समतुल्य चेतनात्मक प्रचण्ड प्रवाह के रूप में करती थीं। उन्होंने 'वायस आफ दि साइलेन्स' ग्रन्थ में अपना अभिप्रायः इस प्रकार व्यक्त किया है—सर्पवत् या बलयान्विता गति अपनाने के कारण इस दिव्य शक्ति को कुण्डलिनी कहते हैं। इस सामान्य गति को योग साधक अपने शरीर में चक्राकार बना लेता है इस अभ्यास से उसकी वैयक्तिक शक्ति बढ़ती है। कुण्डलिनी विद्यु तीय अग्नियुक्त गुप्त शक्ति है यह वह प्राकृत शक्ति है जो सेन्द्रिय निन्द्रिय प्राणियों एवं पदार्थों के मूल में विद्यमान है।

ब्रह्माण्ड में दो प्रकार की शक्तियाँ काम करती हैं—एक लौकिक (सेकुलर)दूसरी आध्यात्मिक(स्प्रिचुअल) इन्हें फिजीकल और मैटाफिजीकल भी कहते हैं। लोग प्रत्यक्ष शक्तियों का प्रमाण प्रत्यक्ष उपकरणों से प्राप्त कर लेते हैं, अस्तु उन्हीं की सत्ता स्वीकार करते हैं।

शरीर विज्ञानियों ने उसे नाड़ी संस्थान से उद्भूत—नर्बस् फोर्स कहा है। डा० रेले ने अपने बहुचर्चित ग्रन्थ 'मिस्ट्रीरियस कुण्डलिनी' में उसकी वेगस नर्व' के रूप में व्याख्या की है। मांस-पेशियों और नाड़ी संस्थान के संचालन में काम आने वाली सामर्थ्य को ही अध्यात्म प्रयोजनों में काम करने पर कुण्डलिनी संरक्षक बनने का वे प्रतिपादन करते हैं। उनके मतानुसार यह शक्ति जब नियन्त्रण में आ जाती है तो उसके सहारे शरीर की ऐच्छिक और अनैच्छिक गतिविधियों पर इच्छानुसार नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है। यह आत्म-नियन्त्रण बहुत बड़ी बात है। इसे प्रकारान्तर से व्यक्तित्व के अभीष्ट निर्माण की तद्नुसार भाग्य निर्माण की सामर्थ्य कह सकते हैं। वे [illegible]ी रूप में कुण्डलिनी का गुण-गान करते और उसकी उपयोगिता बताते हुए उसके जागरण का परामर्श देते हैं।

डाक्टर रेले की उपरोक्त पुस्तक 'रहस्यमयी कुण्डलिनी' की भूमिका तन्त्र मर्मज्ञ सर जानवुडरफ ने लिखी है। जिसमें उन्होंने रेले के इस अभिमत से असहमति प्रकट की है कि वह शरीर संस्थान की विद्यु तधारा मात्र है। उन्होंने लिखा है—"वह एक चेतन और महान सामर्थ्यवान शक्ति—'ग्रान्ड पोटेन्शियल' है जिसकी तुलना अन्य किसी पदार्थ या प्रवाह से नहीं की जा सकती। मेरी राय में नाड़ी शक्ति कुण्डलिनी का एक स्थूल रूप ही है, वह मूलतः नाड़ी संस्थान या उसका उत्पादन नहीं है। वह न कोई भौतिक पदार्थ है और न मानसिक शक्ति। वह स्वयं ही इन दोनों प्रवाहों को उत्पन्न करती है। स्थिर सत्य (स्टेटिक-रियल) गतिशील सत्य (फैनामिक रियल) एवं अवशेष शक्ति (रैजीडुअल पावर) के समन्वित प्रवाह की तरह इस सृष्टि में काम करती है। व्यक्ति की चेतना में वह प्रसुप्त पड़ी रहती है। इसे प्रयत्नपूर्वक जगाने वाला विशिष्ट सामर्थ्यवान् बन सकता है।"

विज्ञान की भाषा में कुण्डलिनी को जीवन शक्ति अथवा चुम्बकीय विद्यु त कहते हैं। इसका केन्द्र मस्तिष्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माना गया है तो भी यह रहस्य अभी स्पष्ट नहीं हुआ कि मस्तिष्क को अपनी गतिविधियों के संचालन की क्षमता कहाँ से मिलती है। योगशास्त्र इसका उत्तर उस काम शक्ति की ओर संकेत करते हुए देता है और बताता है कि अव्यक्त मानवी सत्ता को व्यक्त होने का अवसर इसी केन्द्र से मिलता है। वही कामतन्त्र के विभिन्न क्रिया-कलापों के लिए आवश्यक प्रेरणा भी देती है। यही वह चुम्बकीय 'क्रिस्टल' है जो काया के 'ट्रान्जिस्टर' को चलाने वाले आधार खड़े करता है।

कुण्डलिनी क्या है? इसके सम्बन्ध में शास्त्रों और तत्वदर्शियों ने अपने-अपने अनुभव के आधार पर कई अभिमत व्यक्त किये हैं। ज्ञानर्णव तन्त्र में कुण्डलिनी को विश्व जननी और सृष्टि संचालिनी शक्ति कहा गया है—"शक्तिः कुण्डलिनी विश्व जननी व्यापार वद्धोद्यता।" विश्व व्यापार एक घुमावदार उपक्रम के साथ चलता है। परमाणु से लेकर ग्रह-नक्षत्रों और आकाश गंगाओं तक की गति परिभ्रमण परक है। हमारे विचार और शब्द जिस स्थान से उद्भूत होते हैं—व्यापक परिभ्रमण करके वे अपने उद्गम केन्द्र पर ही लौट आते हैं। यही गतिचक्र भगवान के चार आयुधों में से एक है। महाकाल की परिवर्तन प्रक्रिया इसी को कहा जा सकता है। जीव को चक्रारूढ़ मृतिका पिण्ड की तरह यही घुमाती है और कुम्हार जैसे अपनी मिट्टी से तरह-तरह के पात्र उपकरण बनाता है, उसी प्रकार आत्मा की स्थिति को उठाने-गिराने की भूमिका भी वही निभाती है। कुण्डलिनी सृष्टि सन्दर्भ में समष्टि और जीव सन्दर्भ में—व्यष्टि शक्ति संचार करती है।

अध्यात्म ग्रन्थों में—विशेषतः उपनिषदों में कुण्डलिनी शक्ति की चर्चा हुई है। पर उतने को ही पूर्ण पक्ष नहीं मान लेना चाहिए। उतने से आगे एवं अधिक भी बहुत कुछ कहने, जानने और खोजने योग्य शेष रह जाता है। इन अपूर्ण घटकों को मिलाकर हमें वस्तुस्थिति समझने—अधिक जानने के लिए अपना मस्तिष्क खुला रखना चाहिए।

कुण्डलिनी आत्म शक्ति की प्रकट और प्रखर स्फुरणा है। यह जीव की ईश्वर प्रदत्त मौलिक शक्ति है। प्रसुप्त स्थिति में वह अविज्ञात बनी और मृत तुल्य पड़ी रहती है। वैसी स्थिति में उससे कोई लाभ उठाना सम्भव नहीं हो पाता। यदि उसकी स्थिति को समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि अपने ही भीतर वह भण्डार भरा पड़ा है जिसकी तलाश में जहाँ-तहाँ भटकना पड़ता है। वह ब्राह्मी शक्ति अपने ही अन्तराल में छिपी पड़ी है, जिसे कामधेनु कहा गया है। आत्मसत्ता में सन्निहित इस महाशक्ति का परिचय कराते हुए साधना शास्त्रों ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि अपने ही भीतर विद्यमान इस महती क्षमता का ज्ञान प्राप्त किया जाय और उससे सम्पर्क साधने का प्रयत्न किया जाय। कुण्डलिनी परिचय के कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं—

मल-मूत्र छिद्रों के मध्य मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी का निवास माना गया है। उसे प्रचण्ड शक्ति स्वरूप समझा जाय। यह विद्युतीय प्रकृति की है। ध्यान से वह कौंधती बिजली के समान प्रकाशवान दृष्टिगोचर होती है। कुण्डलाकार है उसका स्वरूप प्रसुप्त सर्पिणी के समान है।

ज्ञान कर्म का समन्वय देवासुर सहयोग है। सुमेरु पर्वत यह तिकोना परमाणु है, जिसके कारण मूलाधार चक्र की रचना हो सकी। प्रसिद्ध है कि सुमेरु पर्वत पर देवता रहते हैं और स्वर्ण का बना है। निस्सन्देह इस त्रिकोण में एक से एक अद्भुत दिव्य शक्तियों और स्वर्ण सम्पदाओं का समावेश है। सुमेरु की रई, शेषनाग की रस्सी बनाकर समुद्र मथा गया। यह सर्प रज्जु—ब्रह्म नाड़ी के अन्तर्गत इड़ा, पिंगला की विद्युत धाराओं से ओत-प्रोत है। शिव और विष्णु के प्रतीक ज्ञान और कर्म सुर और असुर जब समुद्र-मन्थन की—कुण्डलिनी जागरण की महासाधना में संलग्न हुए तो उसे सफल बनाने में प्रजापति ब्रह्मा ने कूर्म बनकर उसका बोझ अपने ऊपर उठा लिया। प्रयत्न असफल न हो जाय—सुमेरु नीचे न धँसक जाय—इस आशंका को निरस्त करने के लिए कूर्म भगवान् ने अवतार लिया और अपनी पीठ पर पर्वत जैसा भार उठा लिया। साधना पथ के पथिकों का उत्तरदायित्व भगवान् वहन करते हैं और सफलता का पथ पुरुषार्थ एवं निष्ठा के अनुरूप निरन्तर प्रशस्त होता चला जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। प्रथम चरण में ही चौदह रत्न नहीं निकल आये वरन् उसके लिए देर तक निष्ठापूर्वक मन्थन की प्रक्रिया जारी रखनी पड़ी। आध्यात्मिक साधनाओं में उतावली करने वाले अधीर व्यक्ति सफल नहीं होते, उसका लाभ तो धैर्यवान और श्रद्धा को मजबूती के साथ पकड़े रहकर विश्वासपूर्वक निर्दिष्ट मार्ग पर अग्रसर होते रहने वाले साधक--नैष्ठिक साधक ही उठा पाते हैं।

कुण्डलिनी जागरण से इस प्रकार की अनेकों शक्तियों, सिद्धियों और क्षमताओं का जागरण होता है, यह सच है, क्योंकि इस साधना द्वारा साधक की अन्तर्निहित बीज रूप शक्ति जागृत होकर उर्ध्वगामी बनती है। यह साधनाएँ आत्मसत्ता को परमात्म सत्ता से जोड़ने, उस स्तर पर पहुँचाने में समर्थ हैं। इनके लिए सामान्य साधना क्रम से ऊपर उठकर कुछ विशिष्ट साधना प्रक्रियायें अपनानी पड़ती हैं। प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति के अनुरूप उनका अलग-अलग विधान है, इसलिए उनका सार्वजनिक प्रकाशन करना न आवश्यक है और न उचित।

कुण्डलिनी जागरण की साधना पद्धति का प्रयोजन अपने भीतर के देव अंशों को विकसित और परिपुष्ट बनाना है। कैलाश पर्वत पर सर्पों का यज्ञोपवीत धारण करके विराजमान शिव और क्षीर सागर में शेषनाग पर सोये हुए विष्णु का बीजांश हमारे मस्तिष्क मध्य केन्द्र—ब्रह्मरन्ध्र में यथावत् विद्यमान है। इस स्थान को 'सहस्रार' कहते हैं। महाकाली—अग्नि जिह्वा चामुण्डा का बीजांश जननेन्द्रिय गह्वर—'मूलाधार'—में विद्यमान है। इन दो शक्तियों के असम्बद्ध बने रहने पर केवल उनकी उपस्थिति का आभास मात्र ही होता है, पर जब उन दोनों का संगम समागम हो जाता है तो अजस्र शक्ति की एक ऐसी धारा प्रवाहित हो उठती है जिसे अनुपम या अद्भुत ही कहा जा सकता है।

मस्तिष्क के मध्य भाग में अवस्थित सहस्रार कमल में शेषशायी विष्णु भगवान् अवस्थित हैं और अधःअवस्थित मूलाधार चक्र के अधिपति शिव हैं। शिव चरित्र में कामदेव द्वारा शिव को उद्दीप्त करने और उनके द्वारा तीसरा नेत्र खोलकर कामदेव को जला डालने वाली कथा प्रख्यात है। कुण्डलिनी जननेन्द्रिय केन्द्र के समीप होने से अपने निकटवर्ती क्षेत्र को प्रभावित करती है, तत्वदर्शी उस अपव्यय को ज्ञान नेत्र खोलकर नियन्त्रित कर लेते हैं। एक पौराणिक कथा इसी सन्दर्भ में यह भी है कि शिव के काम पीड़ित होने पर उनकी जननेन्द्रिय के १८ टुकड़े विष्णु ने कर डाले और वे जहाँ भी गिरे वहाँ ज्योतिर्लिंगों की स्थापना हुई। द्वादश ज्योतिर्लिंगों का उद्भव इसी प्रकार हुआ। वासना को ज्योति में बदला जा सकता है। इस कथानक का यही मर्म है।

शिवजी का प्रधान आभूषण सर्प है और उनके चित्रों में हर सर्प प्रायः ३।। फेरे लगाकर लिपटा हुआ दिखाई पड़ता है। शिवलिंग की मूर्ति पूजा में नर-नारी की जननेन्द्रियों की ही स्थापना है। शिव मन्दिरों की प्रतिमा में नर-नारी की जननेन्द्रियों को सम्मिलित करके प्रतिष्ठापित किया जाता है और उस पर जल चढ़ाने की—शीतल करने की प्रक्रिया जारी रहती है। अर्थात् इन अवयवों को यों अश्लील और गुह्य माना जाता है पर वे घृणित नहीं हैं। उनमें ऐश्वर्य के असाधारण रहस्य बीज विद्यमान हैं। प्रतीक रूप से सर्प जलहली और शिवलिंग की पाषाण प्रतिमा के बीच भी अवस्थित रहता है। इस स्थापना में इसी तथ्य का प्रतिपादन है कि कुण्डलिनी का अधिपति शिव प्रत्यक्ष एवं समर्थ परमेश्वर है। उनके निवास स्थान कैलाश पर्वत और मानसरोवर की तरह समझें जायें उन्हें नर-नारी की घृणित जननेन्द्रिय मात्र न मान लिया जाय। वरन् उनकी पवित्रता और महत्ता के प्रति अति उच्च भाव रखते हुए, सदुपयोग की आराधना में तत्पर रहा जाय। साहस और कलाकारिता के—पुरुषार्थ और लालित्य के—कर्म और भावना के इन केन्द्रों को प्रजनन मात्र से निरस्त न बना दिया जाय वरन् नर-नारी की जननेन्द्रियों के निकट मूलाधार चक्र की शिव शक्ति को उच्च आदर्शों के लिए प्रयुक्त किया जाय।

जर्मनी के मनःशास्त्री हेन्सावेन्डर ने अतीन्द्रिय क्षमता के अनेकों प्रमाण संग्रह करके यह सिद्ध किया है कि मन की व्याख्या पदार्थ विज्ञान के प्रचलित सिद्धान्तों के सहारे नहीं हो सकती।" कुण्डलिनी विज्ञान इस सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत हो आने वाली ऐसी विधा है जिसे मात्र अनुभूतियों से जाना जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनों से अपनी बात

वाल्मीकि, अंगुलिमाल, बिल्वमंगल जैसे पहले क्या थे और परिवर्तित स्थिति में क्या हो गये ? इसका लेखा-जोखा लेने पर जादू चमत्कार जैसा सम्भव हुआ प्रतीत होता है। पूर्वार्ध में वे कितने हेय थे और उत्तरार्ध में वे कितनों को प्रकाश देने और ऊँचा उठाने में समर्थ हो गये इसे कौन नहीं जानता। ऐसे महान परिवर्त्तन प्रस्तुत करने वाला एक ही वर्ग है जिसे गृहस्थ होने की स्थिति में ब्राह्मण और प्रव्रज्या पर निकल पड़ने से साधु कहा जाता है। दोनों की प्रत्यक्ष स्थिति में राई-रत्ती जितना अन्तर तो है पर उनके लक्ष्य और उपवास में तनिक भी भिन्नता नहीं होती। इसीलिए विविध प्रसंगों में 'साधु ब्राह्म' शब्द मिलाकर बोला जाता है और दोनों वर्गों को एक मानते हुए समान सम्मान दिया जाता है।

सामान्यतया मनुष्य भी अन्य प्राणियों की तरह एक हैं। यह नशे हैं लोभ, मोह और अहंकार। प्रत्यक्ष है कि कोई पेट भरने और तन ढकने से अधिक उपभोग नहीं कर सकता। जो उद्धत अपव्यय करता है वह अपने सौजन्य और भविष्य के साथ खिलवाड़ करता है। फिर लालची का अत्यधिक उपार्जन उसके साथ नहीं जाता जहाँ का तहाँ पड़ा रह जाता है और उसका उपयोग मुफ्तखोर करते हैं। भले ही उसका नाम कुटुम्बी सम्बन्धी ही क्यों न हो।

मोह में इसी प्रकार की भ्रान्ति है। हर जीवधारी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व लेकर आता है और अपने ही कर्मफल से जिस-तिस के साथ जुड़ता और बिछुड़ता रहता है। सगा मानने पर भी कोई किसी का स्वामी नहीं हो सकता। ईमानदार माली की तरह यदि परिवार के उद्यान को सन्तुलित रीति से सोचने की सूझ जग पड़े तो

"साधु ब्राह्मण परम्परा का पुनर्जीवन"

जीवधारी है और पशु वर्ग के अन्य प्राणियों की तरह उसका समय भी पेट भरने और प्रजनन का ताना-बाना बुनने में गुजर जाता है। पेट में भूख लगती है तो उसे भरने तथा ढकने का प्रयास करना पड़ता है। मस्तिष्क पर जवानी का उन्माद चढ़ता है तो समय-समय पर मदमस्त होते रहने वाले हाथी की तरह वह जोड़ा ढूँढ़ता और रति कर्म में प्रवृत्त होता है। इस प्रकार परिवार बनता है और उनके भरण-पोषण का भार सिर पर आता है। सामान्यतया इतने में ही वह मनुष्य जन्म खप जाता है जिसे भगवान की सर्वोपरि कलाकृति एवं आत्मा को सौंपी गई सबसे उच्चस्तर की धरोहर कहा गया है।

यह सामान्य क्रम हुआ। किसी प्रतिभावान से कुछ नये उन्माद उठ खड़े होते हैं और नशे में अर्ध विक्षिप्त स्तर के बेतुके क्रिया-कलाप करने के लिए बाधित करते मोह न उभरे और कर्त्तव्य ही स्मरण रहे। परिवार को विलासी और धन कुबेर बनाने की बात सोचना मूर्खता पूर्ण है। उस समुदाय के सदस्यों को स्वावलम्बी और सुसंस्कारी भर बनाने की बात ध्यान में रहे तो अनावश्यक जंजाल में न उलझना पड़े और मनुष्य जीवन की सार्थकता के लिए कुछ बड़े कदम उठाना बन पड़े।

बड़प्पन की—अहंकार की सनक उन दोनों से अधिक उपहासास्पद है। ठाट-बाट, सज-धज, आडम्बर बनाने में चाहे जितना समय लगाया जाय, धन खर्चा जाय पर इससे किसी की श्रद्धा, सद्भावना और आत्मीयता हस्तगत नहीं कर सकता। चापलूसों द्वारा की जाने वाली वाहवाही से मन भरना हो तो सस्ता तरीका यह है कि अपने आप ही अपनी प्रशंसा के पुल बाँधकर टेप रिकार्डर पर अंकित कर लिया जाय और जितनी बार जितनी देर तक उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनते रहा जाय। रूप यौवन पर इठलाने के लिए बड़ा-सा दर्पण दीवार पर टाँग लेना पर्याप्त है। उससे मन भर सकता है। दूसरों को अपने ही काम से फुरसत नहीं, अपनी ही समस्याओं से दिमाग खाली नहीं बचता फिर दूसरों पर ध्यान देने और उनका यश बखानने के लिये कोई क्यों दिलचस्पी ले।

संसार में प्रतिभाओं की कमी नहीं जो अपना और दूसरों का भला करते हुए सच्चे अर्थों में श्रेय पा सकती हैं। आत्म-सन्तोष,जन-सम्मान और दैवी अनुग्रहकी त्रिविधि विभूतियों को विपुल मात्रा में उपलब्ध कर सकती हैं। यदि दृष्टिकोण सुधरे तो कोई क्यों पाप अनाचार करे। आज जो त्रास दूसरों को दिया जा रहा है वही कर्मफल की सुनिश्चित व्यवस्था के आधार पर अपने ऊपर कल नहीं तो परसों बिजली बनकर टूटेगा। यह बात ध्यान में रहे तो संसार में से अनीति अत्याचार की जड़ ही कट जाय। सभी सन्मार्ग पर चलें और सुखी रहें।

किन्तु प्रचलन इससे ठीक उलटा है। मनुष्य अपने को बुद्धिमान होने का दम भरता है पर बारीकी से पर्यवेक्षण करने पर प्रतीत होता है कि वह दृष्टिकोण में विकृतियाँ और विडम्बनाएँ भर लेने के कारण ऐसे कृत्य करता है जिसके बदले आत्म प्रताड़ना और विज्ञ समाज की भर्त्सना लदती रहे। इस दयनीय दुर्दशा से यदि मनुष्य को बचाया जा सके और उत्कृष्ट चिन्तन आदर्श चरित्र और शालीन व्यवहार का पाठ पढ़ाया—अभ्यास कराया जा सके तो समझना चाहिए कि ऐसा सौभाग्य उदय हुआ जैसा पारसमणि हस्तगत होने पर हो सका है।

यह काया-कल्प कौन करे? इतनी दक्षता किसमें है? इसके उत्तर में एक ही केन्द्र बिन्दु की ओर संकेत किया जा सकता है, वह है—साधु ब्राह्मण। साधु अर्थात् लोक सेवा में पूरा समय लगाने वाला। ब्राह्मण अर्थात् निर्वाह व्यवस्था जुटाते हुए लोक मानस के परिष्कार में यथा-सम्भव अधिक से अधिक समय नियमित रूप से लगाना। मनुष्य जाति का उत्थान और पतन सुख और दुःख पूरी तरह इसी देव वर्ग पर अवलम्बित है।

प्राचीन भारत की महिमा गाते-गाते देशी और विदेशी इतिहासकार अघाते नहीं। विशाल भारत की तेतीस करोड़ जनसंख्या को उज्ज्वल चरित्र और भाव भरे सेवा साधन के कारण तेतीस कोटि देवता कहा जाता था। जिस भारत भूमि में यह देव मानव उभरते थे उसे 'स्वर्गादपि गरीयसी' माना जाता था। जगद्गुरु और चक्रवर्ती का दायित्व इसी देश ने निभाया था। यहाँ न सम्पदा की कमी थी, न विद्या की, न गौरव गरिमा की।

उन दिनों यह सब कैसे बन पड़ा था, और आज वह स्थिति क्यों उलट गई तो एक शब्द में यही कहना पड़ेगा कि गढ़ने और ढालने वाले वर्ग का तिरोधान हो गया। ब्राह्मण वंश का समापन हो गया। जाति वंश के नाम पर ब्राह्मण की संख्या कम नहीं। वे गणना में अन्य जातियों की तुलना में अधिक भी हो सकते हैं। वंश की विडम्बना भी कम नहीं ६० लाख सन्त महन्तों का भार इस देश की जनता भावुकता वश वहन करती है। किन्तु इन कागज के हाथियों से क्या प्रयोजन सिद्ध हो, इनके द्वारा शानदार यात्रा का मोर्चे पर तहलका मचा देने का उद्देश्य किस प्रकार पूरा हो?

मिट्टी की गाय बछड़े समेत पचास पैसे की खरीदी जा सकती है और उसे नाम रूप की दृष्टि से समता भी मिल सकती है। पर इस खिलौने से पाँच किलो दूध नित्य कैसे उपलब्ध हो। इसका बछड़ा कुछ दिन बाद खेती के काम आने वाला बैल कैसे बने? यह खिलौने तो शोभा बढ़ाने या मन बहलाने भर के काम आ सकते हैं।

यह कार्य तो साधु ब्राह्मण ही कर सकते हैं कि अपने अथक प्रयास से ऊसर को उद्यान में बदल दें। नर पशु को देव मानव में बदल दें। उपदेशों का प्रभाव इसलिए नहीं पड़ता कि उनकी कथनी और करनी में अन्तर रहता है। जो दूसरों से कराना चाहते हैं वह स्वयं नहीं करते। साँचे में खोट हो तो उसमें ढली हुई वस्तुएँ साफ सुथरी कैसे बनें? उदाहरण सामने है। गान्धी, विनोबा, बुद्ध, विवेकानन्द को साथियों की भी कमी नहीं रही और न अनुयायियों की ही। खरे का अनुकरण करने वाले भी मिलते ही हैं। न मिलते होते तो पुरातन काल में भारत को विश्व का मुकटमणि किनने बनाया था और आज भी प्रज्ञा परिवार का एक सूत्र संचालक अपने साथ चौबीस लाख देव मानवों को किस प्रकार लिये-लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिरता है। इस प्रत्यक्ष प्रमाण को कोई भी छद्म छोड़कर यथार्थता का अवलम्बन करते हुए अपने निज के प्रयोगों में इसी की पुनरावृत्ति होती हुई देख सकता है। सत्य में हजार हाथी के बराबर बल होता है इस तथ्य को पुरातन काल में भी खरा पाया जाता रहा है और हजार परीक्षाओं के बाद भी—आज भी, उसकी यथार्थता जाँची जा सकती है।

यों युग शिल्पियों की—प्रज्ञा पुत्रों की संख्या एक लाख के लगभग है। पर उनमें एक ही कमी है—संकल्प में सुनिश्चितता का—दृढ़ता का--अनवरतता का अभाव। अभी उत्साह उभरा तो उछलकर आकाश चूमने लगे और दूसरे दिन ठण्डे हुए तो झाग की तरह बैठ गये। यह बचकानापन तो गुब्बारों और पतंगों में भी देखा जाता है ऊपर उड़ने की और गति पकड़ने की उनकी क्रिया तत्काल दीख पड़ती है पर हवा का रुख बदलते ही वे पूरब से उलटकर पच्छिम को चल पड़ते हैं। उड़ाने वाले का हाथ थकते ही पतंग जमीन पर आ गिरती है और गुब्बारा फुलाव को घटाते-घटाते कहीं खाई खन्दक में जा गिरता है। इस अस्थिरता में लक्ष्यवेध नहीं हो सकता उसके लिए अर्जुन जैसी तन्मयता होनी चाहिए जो मछली की आँख भर ही देखे। इसके लिए एकलव्य जैसी निष्ठा चाहिए जो मिट्टी के पुतले को निष्णात अध्यापक बनाले।

कहाँ २४ लाख और एक लाख। कहाँ मात्र दस हजार। इस विसगति के पीछे रहस्य एक ही है कि जरूरत हीरकों की पड़ गई है। काँच के नगीने से तो विसातियों की दुकानें भरी रहती हैं और वे बीस-बीस पैसे के बिकते भी हैं। किन्तु हीरे तो जौहरियों की तिजोरियों में ही मिल सकते हैं और उनके बड़प्पन की परख होते ही मूल्य भी हजारों रुपये जितना मिलने लगता है। दस हजार साथी ऐसे चाहिए जो व्रतशील हों। प्रतिज्ञा करें तो निवाहें। परिस्थितियों की आड़ में अपने मन की दुर्बलता को न छिपायें। समुद्र के मध्य खड़े हुए प्रकाश स्तम्भ की तरह अकेले ही उधर से गुजरने वाले नाविकों का मार्गदर्शन करते रहें। न अकेलेपन की शिकायत करें न साथियों की तलाश। जिम्मेदारी अपनी अनवरतता की—निभायें। जिस व्रत को धारण करें उसे हर स्थिति में अन्त तक पालन ही करते रहें।

प्रसन्नता की बात है कि गुरुदेव की प्यास और तलाश आरण्यरोदन बनकर नहीं रह रही है। गत अंक में छपे अनुरोध का भावनाशील प्रज्ञा पुत्रों पर भारी प्रभाव पड़ा है और वह आकाँक्षा अपीलें गले से उतरकर अन्तराल की गहराई को मथ डालने में समर्थ हुई हैं। विचारशीलों ने गम्भीरता पूर्वक विचार किया है। निजी तृष्णा और युग देवता की याचना में से एक को चुनने की बेला में उनने स्वार्थ को ठुकराया और परमार्थ को वरण किया है।

इस एक महीने में परिजनों के जो भावभरे पत्र आये हैं। उनसे प्रतीत होता है कि न केवल स्वेच्छा से व्रत ग्रहण किया है वरन् उनके अभिभावकों आश्रितों ने भी अनुमति देकर वैसा ही साहस दिखाया है जैसा विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा के लिए राम लक्ष्मण के हाथ सौंपते हुए दशरथ ने दिखाया था। उर्मिला ने अपने पति और सुमित्रा ने अपने बेटे लक्ष्मण को बड़े भाई के साथ जाने के लिए प्रेरित किया था। लगता है वह परम्परा अभी भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। दीपक कहीं कहीं अधिक रात बीत जाने और आँधी चलने पर जहाँ-तहाँ टिमटिमा रहे हैं।

> ईश्वर निन्दा प्रशंसा से परे है। न उसे किसी के स्तवन सुनने में रूचि है न उपहार पाने की जरूरत। वह सिर्फ यह देखता है कि भक्त ने अनुशासन पाला या आडम्बरों के खेल खिलौनों से उसे फुसलाया।
>
> **

समर्पण पत्रों की विपुल संख्या और अभिव्यक्त दृढ़ता को देखते हुए प्रतीत होता है कि गुरुदेव की प्यास और तलाश अधूरी न रहेगी इतने विशालकाय उद्यान में से सीमित संख्या में खोजे गये सुरभित पुष्पों का चयन न तो असम्भव होगा और न कठिन पड़ेगा। इच्छित संख्या सन् ८६ में बसन्त पर्व तक पूरी हो जायेगी ऐसा विश्वास है।

****

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079523

गायत्री चालीसा पाठ अनुष्ठान

प्रातःकाल सूर्योदय के समय गायत्री मन्त्र की एक माला वातावरण संशोधन का अनुष्ठान पहले से ही चल रहा है। उसकी पूर्ति ठीक प्रकार से हो रही है। कुछ छोड़ बैठते हैं तो कुछ नये आ जाते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन २४ करोड़ जप करने का क्रम प्रज्ञा परिजनों द्वारा ठीक प्रकार चलाया जा रहा है। आशा की जानी चाहिए कि यह उपक्रम युग सन्धि के शेष १५ वर्षों में भी ठीक प्रकार चलता रहेगा। जिस संगठन के २४ लाख सदस्य हों और वे अपना न्यूनतम कर्त्तव्य निबाहें, उस निर्वाह का लेखा-जोखा ठीक तरह लिया जाता रहे, कमीबेशी को पूरा करते रहने का नियन्त्रण रहे तो व्यक्ति के लिए छोटी किन्तु समाज के लिए अतिशय उच्चस्तरीय प्रभाव उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया का सही रूप में चलते रहना कठिन क्यों होना चाहिए ?

हीरक जयन्ती में उपरोक्त अनुष्ठान के समतुल्य ही एक दूसरा अनुष्ठान प्रारम्भ किया जा रहा है वह है 'गायत्री चालीसा पाठ'। इसमें समय का भी बन्धन नहीं है। अनेकों भावनाशील ऐसे हैं जो साधना तो करना चाहते हैं, पर प्रातःकाल सूर्योदय के समय का निर्वाह नहीं कर पाते। जिन लोगों की नौकरी रात में ड्यूटी देने की है, ऐसे लोगों की कमी नहीं। वे काम पर से लौटते ही सो जाते हैं और नींद पूरी करके देर में उठते हैं।

जिन घरों में देर में रोटी खाने देर तक रेडियो सुनने, टी० वी० देखने का प्रचलन है वे भी सवेरे देर तक सोते हैं। बच्चों को नींद देर तक आती है और जगाने पर कुड़कुड़ाते हुए जगते हैं। जगने पर नित्य कर्म की बात पहली है। पूजापाठ की दूसरी।

ऐसे लोगों के लिए गायत्री चालीसा पाठ का क्रम सर्व सुलभ समझते हुए किया गया है। गायत्री मन्त्र का उच्चारण तो शुद्ध ही होना चाहिए। इसके लिए शिक्षित होना आवश्यक है। अपने देश में दो-तिहाई लोग बिना पढ़े हैं। वे गायत्री मन्त्र का जप कैसे कर पायें ? ऐसे लोगों को भी इस महान उपासना में साथ लेकर चलने की बात सोची गई है। वह माध्यम है--गायत्री चालीसा का पाठ। इसे किसी भी समय पढ़ा जा सकता है। यथा-सम्भव जितनी शुद्धि रखी जा सके उतनी उत्तम है, पर उसके लिए कोई अनिवार्य प्रतिबन्ध नहीं है।

जो नितान्त अशिक्षित हैं। उनके लिए यह तरीका उत्तम है कि एक शिक्षित व्यक्ति एक चौपाई पढ़े। दूसरे पास बैठे हुए बिना शिक्षित बालक, वृद्ध, महिलाएँ उसे दुहरायें। इस प्रकार शिक्षितों के साथ अशिक्षितों की साधना भी चल पड़ती है। कुछ दिनों में तो वह बिना शिक्षितों के भी मौखिक रूप से कण्ठस्थ हो जाता है।

यदि इसके साथ वाद्य यन्त्रों का भी समावेश किया जा सके तो अच्छा खासा कीर्तन, भजन संगीत हो जाता है और उससे सारे घर का वातावरण प्रतिध्वनित हो उठता है।

गायत्री चालीसा का महत्व इसलिए भी अधिक है कि उसके सहारे पाठ करने वाले को माहात्म्य विदित होता है और श्रद्धा बढ़ती है। श्रद्धा ही साधना का प्राण है। जो कार्य जप से नहीं हो पाता वह इस माध्यम से पूरा हो जाता है।

गायत्री चालीसा छपाई कागज के हिसाब से एक रुपये की पाँच पड़ती हैं। पर २४ लाख गायत्री चालीसा घर-घर पहुँचाने की दृष्टि से उन्हें एक रुपये के बीस प्रसाद रूप में केन्द्र से दिया जा रहा है। जहाँ भी कोई सम्मेलन आयोजन हो वहाँ धार्मिक प्रवृत्ति वालों को गायत्री चालीसा वितरण करके पुण्य लाभ करना चाहिए। इन्हें पाँच-पाँच पैसे से कम में भी बेचा जा सकता है। घाटा वितरण करने वाले उठायें। हीरक जयन्ती वर्ष से प्रतिदिन २४ लाख गायत्री चालीसा पाठ का नया प्रयोग आरम्भ हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल वार्षिक ग्राहकों के लिये

रजिस्टर्ड नं. एम-टी-आर-९८
रजि. नं. आर-एन-२१६२ / ५२

अखण्ड-ज्योति मासिक
लाइसेन्स संख्या एम-टी-आर-८
डाक व्यय की पहले अदायगी किए बिना
डाक मे डालने के लिये लाइसेन्स प्राप्त

07953

इतना प्यार बहाओ

इतना प्यार बहाओ जग में जैसे नवसूरज की लाली।
उसमें जो डूबे वह समझे—आत्म-सुधा—निधि मैंने पा ली॥

इतनी बाँटो कोमलता, कि सभी उपवन में जाना भूलें।
करुणामय उद्गार हमारे बढ़कर आसमान को छू लें॥
ईश्वर ने दी मानस बगिया, और मनुज है इसका माली॥

इतना बहे प्रकाश—किसी को ठोकर लगे न अपने आगे।
इतनी हो तत्परता—दामिनि भी अपनी पुकार पर जागे॥
राहगीर पूछें—किसने यह लाल-मशाल जगत हित बाली॥

इतना हो सान्निध्य सुखद, अपनापन परिभाषा पा जाये।
व्यथा किसी की सुनते-सुनते, अपना अन्तरतम भर आये॥
संवेदन के पुष्प भार से झुक जाये इस उर की डाली॥

इतना हो विश्वास अडिग जैसे नभ, धरती और सितारे।
आस्था की गहराई को लख सागर मरे शरम के मारे॥
हो न कहीं दीवार छद्म की, टूटे सन्देहों की जाली॥

मिलें न यदि स्वांतिकण—गम नहीं—आँसू से ढालेंगे मोती।
सूर्योदय तक कभी हमारी अन्तर्ममता रहे न सोती॥
अपने घर आकर भी झोली किसी व्यथित की रहे न खाली॥

ऐसा जीवन जिएँ सभी तो स्वर्ग उतर आये धरती पर।
सही अर्थ में बने 'मनुष्य'-आज का भूला और भ्रमित नर॥
मानव में देवत्व और जीवन में आ जाये खुशहाली॥

—माया वर्मा

सम्पादक - भगवती देवी शर्मा प्रकाशक मुद्रक - मृत्युंजय शर्मा, अखण्ड - ज्योति संस्थान द्वारा
[illegible] प्रेस मथुरा [illegible] में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri